



उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी

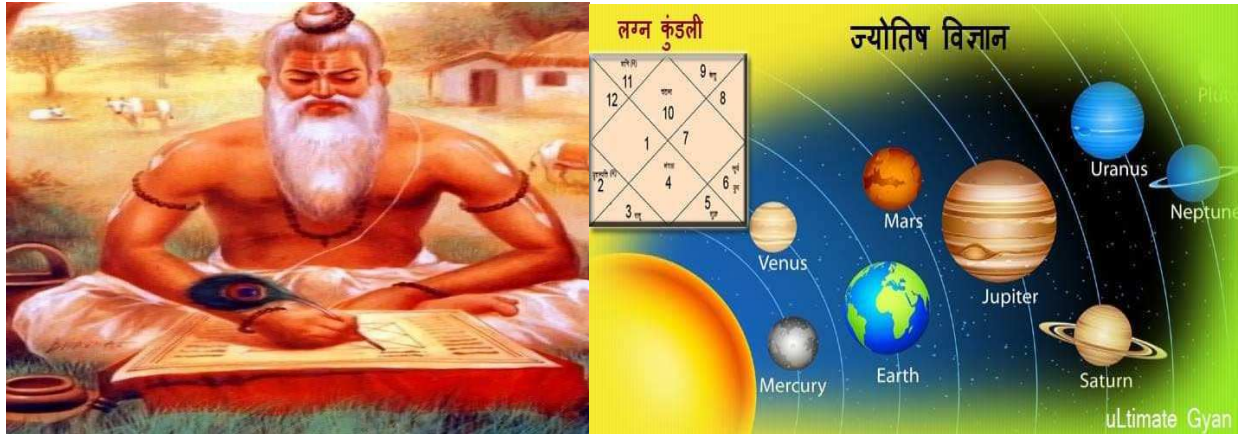
बी.ए. ज्योतिष (पंचम सेमेस्टर)

BAJY(N)-222

(MINOR VOCATIONAL COURSE)

त्रिस्कन्ध ज्योतिष

मानविकी विद्याशाखा
वैदिक ज्योतिष विभाग



ज्योतिषशास्त्र के तीन भाग

1. सिद्धान्त
2. संहिता
3. होरा



तीनपानी बाईपास रोड , ट्रॉन्सपोर्ट नगर के पीछे
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल - 263139
फोन नंं .05946- 261122 , 261123
टॉल फ्री न0 18001804025
Fax No.- 05946-264232, E-mail- info@uou.ac.in
<http://uou.ac.in>

विशेषज्ञ समिति एवं अध्ययन समिति

प्रोफेसर ओमप्रकाश सिंह नेगी – अध्यक्ष
कुलपति, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

प्रोफेसर रेनू प्रकाश – निदेशक
मानविकी विद्याशाखा
उ०मु०वि०वि०, हल्द्वानी

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी – समन्वयक
असिस्टेंट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

डॉ. प्रमोद जोशी, असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी),
ज्योतिष विभाग, उ०मु०वि०वि०, हल्द्वानी

प्रोफेसर विनय कुमार पाण्डेय
अध्यक्षचर, ज्योतिष विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी

प्रोफेसर श्याम देव मिश्र
अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग, केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय,
लखनऊ परिसर, लखनऊ

प्रोफेसर प्रेम कुमार शर्मा
अध्यक्षचर, ज्योतिष विभाग, श्रीलालबहादुरशास्त्री राष्ट्रीय
संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

डॉ. रत्न लाल शर्मा
अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग, उत्तराखण्ड संस्कृत
विश्वविद्यालय, हरिद्वार

डॉ. प्रभाकर पुरोहित, असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी)
ज्योतिष विभाग, उ०मु०वि०वि०, हल्द्वानी

पाठ्यक्रम संयोजन एवं सम्पादन

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी

असिस्टेंट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, वैदिक ज्योतिष-भारतीय कर्मकाण्ड विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखक

खण्ड

इकाई संख्या

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी
असिस्टेंट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, वैदिक ज्योतिष-भारतीय कर्मकाण्ड विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

1

1,2,3,4

डॉ. प्रवेश व्यास
असिस्टेंट प्रोफेसर, वास्तुशास्त्र विभाग,
श्रीलालबहादुरशास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

2

1,2,3

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी
असिस्टेंट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, वैदिक ज्योतिष-भारतीय कर्मकाण्ड विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

2 / 3

4/ 1,2,3,4

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

प्रथम संस्करण : 2025

ISBN No. -

प्रकाशक : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी मुद्रक :

नोट: - इस पुस्तक के समस्त इकाईयों के लेखन तथा कॉपीराइट संबंधी किसी भी मामले के लिये संबंधित इकाई लेखक जिम्मेदार होगा। किसी भी विवाद का निस्तारण नैनीताल स्थित उच्च न्यायालय अथवा हल्द्वानी स्थित सत्रीय न्यायालय में किया जायेगा।

बी.ए. (ज्योतिष) - पंचम सेमेस्टर

अनुक्रम

क्रम व इकाइयों के नाम	पृष्ठ संख्या
खण्ड 1 ज्योतिष शास्त्र का परिचय	2
इकाई 1 ज्योतिष शास्त्र की उत्पत्ति	3-14
इकाई 2 वेदांग ज्योतिष का परिचय	15-32
इकाई 3 ज्योतिष शास्त्र के प्रमुख प्रवर्तक	33-45
इकाई 4 कालक्रम के आधार पर ज्योतिष की ऐतिहासिकता	46-65
खण्ड 2 विविध स्कन्ध	66
इकाई 1 सिद्धान्त स्कन्ध	67-87
इकाई 2 होरा ज्योतिष	88-106
इकाई 3 संहिता ज्योतिष	107-126
इकाई 4 पंच-बहुस्कन्धात्मक ज्योतिष विवेचन	127-139
खण्ड 3 ज्योतिष शास्त्र की वैज्ञानिकता, उपादेयता एवं अन्य मानादि विचार	140
इकाई 1 ज्योतिष शास्त्र की वैज्ञानिकता	141-158
इकाई 2 ज्योतिष शास्त्र की उपादेयता	159-170
इकाई 3 व्यावहारिक ज्योतिष	171-184
इकाई 4 नवविधकाल मान परिचय	185-213

बी.ए. (ज्योतिष) - पंचम सेमेस्टर

कोर्स कोड - BAJY(N)-222

कोर्स शीर्षक – त्रिस्कन्ध ज्योतिष

MINOR VOCATIONAL COURSE

खण्ड - 1

ज्योतिष शास्त्र का परिचय

इकाई – 1 ज्योतिष शास्त्र की उत्पत्ति

इकाई की संरचना

- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 उद्देश्य
- 1.3 ज्योतिष शास्त्र : सामान्य परिचय
- 1.4 ज्योतिष शास्त्र की उत्पत्ति
- 1.5 सारांश
- 1.6 पारिभाषिक शब्दावली
- 1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 1.9 सहायक पाठ्यसामग्री
- 1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रिय शिक्षार्थियों! ज्योतिषशास्त्र के प्रति आकर्षण एवं जिज्ञासा का भाव होने के कारण ही आप इस शास्त्र के अध्ययन में प्रवृत्त हुए हैं, ऐसा मेरा विश्वास है। प्रस्तुत इकाई बी.ए. ज्योतिष पाठ्यक्रम के पंचम सेमेस्टर BAJY(N)-222 के प्रथम खण्ड की प्रथम इकाई ‘ज्योतिष शास्त्र की उत्पत्ति’ नामक शीर्षक से सम्बन्धित है। आप सब जानते ही होंगे कि आकाश में स्थित ग्रह, नक्षत्रादि पिण्डों की गति, स्थिति एवं उसके प्रभावादि निरूपण का अध्ययन हम जिस शास्त्र के अन्तर्गत करते हैं, उसे ‘ज्योतिषशास्त्र’ कहा जाता है।

भारतीय वैदिक सनातन परम्परा में ज्योतिषशास्त्र को सर्वविद्यामूलक वेद का अंग होने के कारण ‘वेदांग’ कहा गया है। वेद के छः अंग हैं – शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द एवं ज्योतिष। इन्हीं वेदांगों को ‘शास्त्र’ भी कहा जाता है। यह शास्त्र हमारे प्राचीन ऋषियों की देन हैं। कालनियामक होने के कारण इसे ‘कालशास्त्र’ भी कहा जाता है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप ज्योतिषशास्त्र से परिचित हो सकेंगे तथा उसके मूलभूत तथ्यों को समझने में समर्थ हो सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- ❖ बता सकेंगे कि ज्योतिष किसे कहते हैं।
- ❖ समझा सकेंगे कि ज्योतिषशास्त्र की उत्पत्ति कैसे हुई।
- ❖ ज्योतिषशास्त्र के प्रमुख स्कन्धों को समझ लेंगे।
- ❖ ज्योतिषशास्त्र के प्रवर्तकों का नाम जान लेंगे।
- ❖ ज्योतिषशास्त्र की उपयोगिता को समझा सकेंगे।

1.3 ज्योतिषशास्त्र : सामान्य परिचय

ज्योतिषशास्त्र का सम्बन्ध मनुष्य के जन्म-जन्मान्तर्ग से जुड़ा हुआ है। इसलिए ज्ञात-अज्ञात अवस्था में भी निरन्तर हमें ज्योतिषशास्त्र किसी न किसी रूप में प्रभावित करता रहता है। ज्योतिषशास्त्र का दूसरा नाम ‘कालविधान शास्त्र’ है। क्योंकि काल का निरूपण भी ज्योतिषशास्त्र द्वारा ही होता है। काल के प्रभाव के सम्बन्ध में ‘कालाधीनं जगत् सर्वम्’ तथा ‘कालः सृजति भूतानि

कालः संहरते प्रजाः' ये सूक्तियाँ ही पर्याप्त हैं। मानव जीवन काल तथा कर्म के अधीन होता है। जैसा कि आचार्य वराहमिहिर ने स्वग्रन्थ लघुजातक में लिखा है –

यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाऽशुभं तस्य कर्मणः पङ्क्तिम्।

व्यञ्जयति शास्त्रमेतत् तमसि द्रव्याणि दीप इव॥

अर्थात् पूर्वजन्म के कर्मानुसार ही मनुष्य का जन्म, उसकी प्रवृत्तियाँ तथा उसके भाग्य का निर्माण होता है। भारतीय ज्ञान – विज्ञान की परम्परा में 'वेद' को सर्वविद्या का मूल कहा गया है। उसी वेद के चक्षुरूपी अंग को मनीषीयों द्वारा ज्योतिषशास्त्र की संज्ञा प्रदान की गयी है। आचार्य भास्कराचार्य ने स्वग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणि में ज्योतिष को परिभाषित करते हुए लिखा है कि -

वेदस्य निर्मलं चक्षुः ज्योतिषशास्त्रमकल्मषम्।

विनैतदखिलं श्रौतं स्मार्तं कर्म न सिद्ध्यति॥

अर्थात् ज्योतिष वेद का निर्मल चक्षु है, जो अकल्मष (दोषरहित) है और इसके ज्ञानाभाव में समस्त वेदप्रतिपाद्य विषय यथा- श्रौत, स्मार्त यज्ञादि क्रिया की सिद्धि नहीं हो सकती। सर्वसाधारण को सृष्टि के अनेक चमत्कारों का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त होकर उनकी जिज्ञासा पूरी हो सके, इस हेतु हमारे देश के अलौकिक बुद्धिमान, महान तपस्वी व त्रिकालदर्शी महर्षियों ने अपने तपोबल के आधार पर आम जनमानस के लाभार्थ जो अनेक शास्त्र निर्माण किये, उनमें ज्योतिषशास्त्र का स्थान सर्वश्रेष्ठ व प्रथम है क्योंकि सृष्टि के प्रत्येक वस्तु की उत्पत्ति, प्रगति व लयादि कालाधीन है और उस काल का सम्पूर्ण वर्णन तथा शुभाशुभ परिणाम आकाशस्थ ग्रहों के उदय, अस्त, युति, प्रतियुति, गति व स्थिति पर निर्भर है। इन्हीं ग्रहों की शुभाशुभ स्थिति पर जगत के मानव प्राणी का सुख-दुःख, हानि-लाभ, जीवन-मरण पूर्णरूप से अवलम्बित है। अतः ज्योतिषशास्त्र का ज्ञान मानव के लिये अधिक महत्वपूर्ण है।

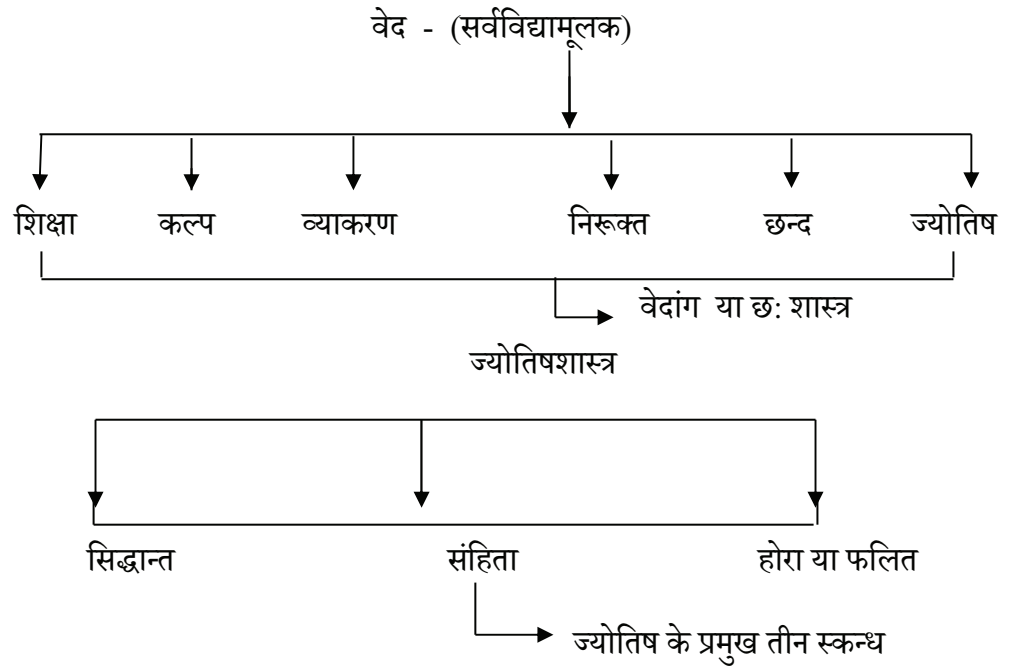
ज्योतिषशास्त्र में मूलतः ग्रह, नक्षत्र, तारा, उल्का आदि के विषय में सांगोपांग अध्ययन किया जाता है। इस ब्रह्माण्ड में जो भी चराचर जीव हैं उनमें पंचमहाभूत, तीनों गुण (सत्त्व, रज, तम) सात प्रकार की धातुएँ आदि ग्रहनक्षत्रादि के प्रभाव से रहते हैं। इनमें से किसी में पार्थिव तत्व अधिक पाया जाता है तो किसी में जल, किसी में अग्नितत्व कहीं वायु का अंश अधिक होता है तो कहीं आकाश का भाग अधिक होता है। किसी जातक में सत्त्वगुणी ग्रहों के प्रभाव से रजोगुण अधिक होता है। किसी का शरीर मांसल होता है, किसी में अस्थि की प्रधानता होती है तो किसी का केशाधिक्य होता है। इन सभी परिस्थितियों का कारण ग्रहयोगबल है। जिस जातक का जैसा प्राक्तन कर्म रहता है वह उस तरह के ग्रहयोग में उत्पन्न होकर जीवन भर कर्मानुसार शुभाशुभ फल का भोग करता रहता है। इन

विषयों से सम्बद्ध सिद्धान्तों का ऋषि- महर्षियों ने प्रवर्तन किया। इनकी परम्पराओं का कालक्रम में परवर्ती आचार्यों ने पोषण किया और विकास के क्रम में विषय की दृष्टि से ज्योतिष शास्त्र को तीन स्कन्धों सिद्धान्त, संहिता, होरा में विभाजित किया। आज भी इस शास्त्र के आचार्य एवं जिज्ञासु विद्वान इसके संवर्द्धन में सतत तत्पर हैं।

ज्योतिषशास्त्र के मुख्य रूप से तीन स्कन्ध है -

1. सिद्धान्त
2. संहिता
3. होरा या फलित

स्पष्टार्थ चक्रम् -



ज्योतिषशास्त्र के प्रमुख स्कन्ध -

यद्यपि विषयदृष्ट्यानुशीलन के आधार पर ज्योतिषशास्त्र के अनेक भेद हो सकते हैं, परन्तु मुख्य रूप से इसके तीन स्कन्ध प्रतिपादित हैं - सिद्धान्त, संहिता एवं होरा। आचार्य नारद ने भी कहा है कि -

सिद्धान्तसंहिताहोरारूपं स्कन्धत्रयात्मकम् ।

वेदस्य निर्मलं चक्षुर्ज्योतिः शास्त्रमनुत्तमम् ॥

आचार्य वराहमिहिर ने स्वग्रन्थ वृहत्संहिता में स्कन्धत्रय का उल्लेख करते हुये लिखा है – “ज्योतिषशास्त्रमनेकभेदविषयं स्कन्ध त्रयाधिष्ठितम्”। कुछ अन्य आचार्यों के मत में उक्त तीनों सिद्धान्तों के अतिरिक्त केरलि एवं शकुन को भी ज्योतिष के स्कन्धों में स्थान दिये गये हैं। उनके मतानुसार ज्योतिष के पंचस्कन्ध है। यथा –

पंचस्कन्धमिदं शास्त्रं होरागणितसंहिता।

केरलिः शकुनञ्चेति ज्योतिषशास्त्रमुदीरितम्॥

परन्तु यह मत सर्वस्वीकृत नहीं है। वस्तुतः शकुन – केरलीय – प्रश्न – मुहूर्त – अंगविद्या – स्वर – वास्तु – ताजिक – रमल इत्यादि विषय संहिता स्कन्ध के अन्तर्गत ही आते हैं। अन्यथा यदि प्रत्येक का अलग – अलग स्कन्ध माना जायेगा तो अनेक स्कन्ध हो सकते हैं। अतः ज्योतिषशास्त्र के मुख्यतः तीन ही स्कन्ध होते हैं।

1. **सिद्धान्त** - ज्योतिषशास्त्र के जिस स्कन्ध में त्रुटि से लेकर प्रलय काल पर्यन्त की गई काल गणना, मानव – दैव – जैव – पैत्र – नाक्षत्र – सौर – सावन – चान्द्र तथा ब्राह्मादि नवविध काल मानों का सांगोपांग कथन, ग्रहों के मध्य- मन्दस्फुटगति - स्थित्यादि का निरूपण, व्यक्ताव्यक्त गणित, त्रिकोणमितिय गणितोपपादन, तत्सम्बन्धी प्रश्नों का सोत्तर संकलन, वेधोपयुक्त यन्त्रादि विषयों का निरूपण हो उसे ‘सिद्धान्त’ कहते हैं। इसे श्लोकबद्ध रूप में आचार्य भास्कराचार्य जी ने स्वग्रन्थ ‘सिद्धान्तशिरोमणि’ में इस प्रकार प्रतिपादित किया है –

त्रुट्यादिप्रलयान्तकालकलना मानप्रभेदः क्रमा

च्चारश्च द्युसदां द्विधा च गणितं प्रश्नास्तथासोत्तराः।

भूधिष्ण्यग्रहसंस्थितेश्च कथनं यन्त्रादि यत्रोच्यते

सिद्धान्तः स उदाहृतोऽत्र गणितस्कन्धप्रबन्धे बुधैः॥

2. **संहिता** - ज्योतिषशास्त्र के जिस स्कन्ध में ग्रहचारवश ग्रह- नक्षत्रादि बिम्बों के शुभाशुभ लक्षण से पशु – पक्षी- कीटादियों का भूसापेक्ष सामूहिक विवेचन तथा प्राकृतिक – आकाशीय घटनाओं का ज्ञान किया जाता हो, उसे ‘संहिता शास्त्र’ कहते हैं। वृहत्संहिता में वराहमिहिर का कथन है – “तत्कात्सन्योपनयस्य नाममुनिभिः संकीर्त्यते संहिता”।

3. **होरा** – जिस स्कन्ध में मानव मात्र का उसके जन्म सम्बन्धित काल के आधार पर ग्रहों एवं नक्षत्रों की स्थिति वशात् उसके जीवन सम्बन्धित शुभाशुभ फलों का विवेचन किया जाता है, उसे ‘होरा’ कहते हैं।

1.4 ज्योतिष शास्त्र की उत्पत्ति

ज्योतिषशास्त्र की उत्पत्ति का मूल 'वेद' है। ज्योतिषशास्त्र वैदिककालीन ऋषि-महर्षियों की अलौकिक प्रतिभा की देन है। भारतीय विद्याओं में इसका स्थान अद्वितीय है। मनुष्य की संरचना और उसकी प्रकृति का इससे अभिन्न सम्बन्ध है। इसके अन्तर्गत पिण्ड और ब्रह्माण्ड, व्यष्टि और समष्टि के सम्बन्धों का अध्ययन समग्र रूप से किया जाता है। ग्रह, नक्षत्र, तारे, राशियाँ, मन्दाकिनियाँ, निहारिकाएं एवं चराचर प्राणी, वृक्ष, चट्टानें आदि विश्वब्रह्माण्डीय घटक प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से एक-दूसरे को प्रभावित-आकर्षित करते हैं। इन ग्रह-नक्षत्रों का मानव-जीवन पर सम्मिलित प्रभाव पड़ता है। वे कभी कष्ट दूर करते हैं, तो कभी कष्ट भी देते हैं। ये तत्व मनुष्य की सूक्ष्म संरचना एवं मनःसंस्थानों पर कार्य करते हैं और उसकी भावनाओं तथा मानसिक स्थितियों को अधिक प्रभावित करते हैं। ज्योतिषशास्त्र के अध्ययन और उपयोग से ज्योतिषी को मानव-जीवन के सभी क्षेत्रों में सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि प्राप्त हो जाती है।

प्रारम्भिक काल में ज्योतिष अध्यात्म-विज्ञान की ही एक शाखा थी। यह चतुर्दश विद्या में एक माना जाता है। जिसका स्वरूप स्पष्टतः धर्मविज्ञान पर आधारित था। अपने इसी रूप में इसने चाल्डियन एवं मिश्री धर्मों तथा प्राचीन भार, चीन एवं पश्चिमी यूरोप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। उस समय इसकी विश्वसनीयता असंदिग्ध मानी जाती थी और उसका प्रचार-प्रसार विश्व के समस्त भागों पर था, परन्तु मध्यकाल में ज्योतिष पर अनेकों आघात हुए और अल्पज्ञ तथा स्वार्थी लोगों के हाथों पहुँच जाने पर इस विद्या के जानने वालों की अवनति हुई। ज्योतिष की मूलभूत तत्वमीमांसा एवं उसके आध्यात्मिक तत्वदर्शन से उस समय के ज्योतिषी बहुत अंशों में अनभिज्ञ थे। उन्होंने ज्योतिर्विद्या के केवल उन सिद्धान्तों पर अमल किया, जिसका मेल नए यांत्रिक भौतिक विज्ञान के तथ्यों से बैठता था। उस समय केवल वहीं सिद्धान्त मान्य रहे जो दृश्य जगत की बाह्य भौतिक घटनाओं एवं तथ्यों पर आधारित थे। 'केपलर' के ज्योतिष विज्ञान को ग्रहों की चाल पर आधारित मानने के कारण भी ज्योतिष विज्ञान के अध्येताओं की दुर्गति हुई।

वास्तव में इस विद्या के सिद्धान्तों का सुदृढ़ आधार अभौतिक एवं आध्यात्मिक है। इसे भौतिक यंत्रवाद और मात्र ग्रहों-तारों-राशियों एवं भावों का निर्धारण करने वाले एवं व्यवस्था-क्रम दर्शन वाले खगोलीय विज्ञान के आधार पर नहीं समझा जा सकता। इस शास्त्र के आविष्कर्ता भारतीय महर्षि रहे हैं, जो अलौकिक आध्यात्मिक शक्तियों से सम्पन्न थे। वह अपने तपोबल के आधार पर नेत्र बन्द करते ही तीनों काल की स्थितियों को भली-भाँति समझ लेते थे। उनकी दूरदृष्टि अलौकिक हुआ करती थी।

योग-विज्ञान जो कि भारतीय आचार्यों की विभूति माना जाता है, इसका पृष्ठाधार है। यहाँ ऋषियों ने योगाभ्यास द्वारा अपनी सूक्ष्म प्रज्ञा से शरीर के भीतर ही सौरमण्डल के दर्शन किए और अपना निरीक्षण कर आकाशीय सौर मण्डल की व्यवस्था की। अंकविद्या जो इस शास्त्र का प्राण है, उसका आरम्भ भी भारत में ही हुआ। मध्यकालीन भारतीय संस्कृति नामक पुस्तक में श्री ओझा ने लिखा है, “भारत ने अन्य देशवासियों को जो अनेक बातें सीखायीं, उनमें सबसे अधिक महत्व अंकविद्या का है। संसार भर में गणित, ज्योतिष, विज्ञान आदि की आज जो उन्नति पायी जाती है, उसका मूल कारण वर्तमान अंक क्रम है। जिसमें १ से ९ तक के अंक और शून्य इन १० चिह्नों से अंक-विद्या का सारा काम चल रहा है। यह क्रम भारतवासियों ने ही निकाला और उसे सारे संसार ने अपनाया।”

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि प्राचीनतम काल में भारतीय ऋषि खगोल एवं ज्योतिषशास्त्र का ज्ञान रखते थे। कतिपय विद्वान भारतीय ज्योतिष में ग्रीक प्रभाव मानते हैं, परन्तु विचार करने पर वास्तविकता कुछ भिन्न नजर आती है। प्राचीन भारत में ग्रीस देश से अनेक विद्यार्थी विभिन्न शास्त्रों का अध्ययन करने के लिए आते थे और वर्षों रहकर भारतीय आचार्यों से भिन्न-भिन्न शास्त्रों का अध्ययन करते थे। जिससे अधिक सम्पर्क के कारण कुछ शब्द ई. पूर्व तीसरी शती में, कुछ छठी शती में, कुछ १५-१६ वीं शती में ज्योतिष में मिल गए। भारत के ज्योतिर्विद् ईसवी सन की चौथी और ५वीं शती में ग्रीस गए। इससे भी ५वीं और छठी शती के प्रारम्भ में अनेक ग्रीक शब्द भारतीय ज्योतिष में आ गए।

समस्त विश्व ने भारत से जो अगणित-अनगिनत अजस्र अनुदान पाए, उसमें ज्योतिष का स्थान अद्वितीय है। डब्ल्यू. डब्ल्यू. हण्टर ने इण्डियन गजेटियर में स्पष्ट रूप से लिखा है कि - ८वीं शती में अरबी विद्वानों ने भारत से ज्योतिष विद्या सीखी और भारतीय ज्योतिष ‘सिद्धान्तों’ का सिन्दहिन्द नाम से अरबी में अनुवाद किया। अरबी भाषा में लिखी गयी ‘आदन उल अम्बाफितल कालूली अतिब्बा’ नामक पुस्तक में लिखा है कि- ‘भारतीय विद्वानों ने अरबी के अंतर्गत बगदाद की राजसभा में जाकर ज्योतिष-चिकित्सा आदि शास्त्रों की शिक्षा दी थी।’ कर्क नामक एक विद्वान शक संवत् ६९४ में बादशाह अलमसूर के दरबार में ज्योतिष और चिकित्सा के ज्ञानदान के निमित्त गए थे।

भारतीय वाङ्मय के प्राचीनतम ग्रन्थों में आयी ज्योतिर्विज्ञान की शब्दावली भी यही प्रमाणित करती है कि इसकी जन्मस्थली भारत ही है। ऋग्वेद संहिता में चक्र शब्द आया है, जो राशिचक्र का द्योतक है। “द्वादशारं नहि तज्जराय (ऋक् १-१६४-११)” मंत्र में द्वादशारं शब्द १२ राशियों का बोधक है। प्रकरणगत विशेषताओं के ऊपर ध्यान देने से इस मंत्र में स्पष्टतया द्वादश

राशियों का निरूपण देखा जा सकता है। इसके अलावा ऋग्वेद के अन्य स्थलों एवं शतपथ ब्राह्मण आदि ग्रन्थों के अध्ययन से पता चलता है कि आज से-कम-से-कम २८००० वर्ष पहले भारतीयों ने खगोल और ज्योतिषशास्त्र का मन्थन किया था। वे आकाश में चमकते हुए नक्षत्र पुँज, आकाश-गंगा निहारिका आदि के नाम-रूप-रंग-आकृति आदि से पूर्णतया परिचित थे।

‘अलबेरुनीज इण्डिया’ के पृष्ठों में अलबेरुनी की स्पष्टोक्ति है कि ज्योतिष शास्त्र में हिन्दू लोग संसार की सभी जातियों से बढ़कर है। मैंने अनेक भाषाओं के अंकों के नाम सीखे हैं, पर किसी जाति में हजार के आगे की संख्या के लिए मुझे कोई नाम नहीं मिला। हिन्दुओं में अठारह अंकों तक की संख्या के लिए नाम है, जिनमें अन्तिम संख्या का नाम परार्द्ध बताया गया है। इण्डिया-ह्वाट इट केन टीच अस’ में प्रो. मैक्समूलर ने लिखा है, भारतवासी आकाशमण्डल और नक्षत्र मण्डल आदि के बारे में अन्य देशों के ऋणी नहीं हैं अपितु वे ही इनके मूल आविष्कर्ता हैं। फ्राँसीसी पर्यटक फ्राक्वीस वर्नियर भी भारतीय ज्योतिषज्ञान की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं कि भारतीय अपनी गणना द्वारा चन्द्र और सूर्यग्रहण की बिलकुल ठीक भविष्यवाणी करते हैं। इनका ज्योतिषज्ञान प्राचीनतम और मौलिक है।

‘टरवीनियरस ट्रेविल इन इण्डिया’ में फ्राँसीसी यात्री टरवीनियर ने भी भारतीय ज्योतिष की प्राचीनता और विशालता से प्रभावित होकर कहा है कि “भारतीय, ज्योतिष ज्ञान में प्राचीनकाल से ही निपुण हैं। वे व्यक्तिगत, राष्ट्रीय एवं वैश्विक जीवन के प्रत्येक पक्ष के संबन्ध में सटीक भविष्यवाणी करने की अद्भुत क्षमता रखते हैं।”

एनसाइक्लोपीडिया ऑफ बिट्रैनिका में लिखा है कि इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमारे वर्तमान अंक क्रम की उत्पत्ति भारत से है। सम्भवतः ज्योतिष सम्बन्धी उन सारणियों के साथ, जिनको एक भारतीय राजदूत सन् ७७३ ईसवी में बगदाद में लाया-इन अंकों का प्रवेश भारत से हुआ। फिर ईसवी सन् की ९वीं शती के प्रारम्भिक काल में प्रसिद्ध अबूजफर मोहम्मद अल खारिज्मी ने अरबी में उक्त क्रम का विवेचन किया और उसी समय से अरबों में उसका प्रचार बढ़ने लगा। यूरोप में शून्य सहित यह सम्पूर्ण अंक क्रम ईसवी सन् की १२वीं शती में अरबी से लिया गया है इस क्रम से बना हुआ अंकगणित ‘अल गोरिट्मस’ नाम से प्रसिद्ध हुआ।

‘थियोगोनी ऑफ द हिन्दूज’ में काण्ट आर्मस्ट्रेंज ने लिखा है कि वेलों द्वारा किए गये गणित से ही प्रतीत होता है कि ईसवी सन् ३००० वर्ष पूर्व ही भारतीयों ने ज्योतिष शास्त्र और भूमिति शास्त्र में अच्छी पारदर्शिता प्राप्त कर ली थी। कर्नल टाड ने अपने ‘राजस्थान’ नामक ग्रन्थ में लिखा है हम उन ज्योतिषियों को यहाँ (भारत में) पा सकते हैं, जिनका ग्रह-मण्डल सम्बन्धी ज्ञान अब भी

यूरोप में आश्चर्य उत्पन्न कर रहा है। मिस्टर मारिया ग्राहम लेटर्स ऑन इण्डिया में अपना मत व्यक्त करते हुए कहते हैं कि समस्त मानवीय परिष्कृत विज्ञानों में ज्योतिष मनुष्य ऊँचा उठा देता है। इसके प्रारम्भिक विकास का इतिहास मानवता के उत्थान का इतिहास है। भारत में इसके आदिम अस्तित्व के बहुत से प्रमाण मौजूद हैं।

मिस्टर सी.वी. क्लार्क एफ.जी. एफ. कहते हैं कि अभी बहुत वर्ष पीछे तक हम सुंदर स्थानों के अक्षांश के विषय में निश्चयात्मक रूप से ज्ञान नहीं रखते थे किन्तु प्राचीन भारतीयों ने ग्रहण ज्ञान के समय से ही इन्हें जान लिया था। इनकी यह अक्षांश-रेखाएँ वाली प्रणाली वैज्ञानिक ही नहीं अचूक है। 'एन्सिएंट एण्ड मेडिवल इण्डिया में प्रो. विलसन का मानना है कि भारतीय ज्योतिषियों को प्राचीन खलीफों विशेषकर हारून रशीद और अलमायन ने भली भाँति प्रोत्साहित किया। वे बगदाद आमंत्रित किए गए और वहाँ उनके ग्रन्थों का अनुवाद हुआ। डॉक्टर राबर्टसन का कथन है कि 12 राशियों का ज्ञान सबसे पहले भारतवासियों को ही हुआ था। भारत ने प्राचीनकाल में ज्योतिर्विद्या में अच्छी उन्नति की थी।

प्रो. कोलबुक और बेबर साहब ने लिखा है कि भारत को ही सबसे प्रथम चन्द्र नक्षत्रों का ज्ञान था। चीन और अरब के ज्योतिष का विकास भारत से ही हुआ है। उनका क्रान्तिमण्डल हिन्दुओं का ही है। निस्सन्देह उन्हीं से अरब वालों ने इसे लिया है। विख्यात चीनी विद्वान 'लियांग चिचाप' के शब्दों में "वर्तमान सभ्यजातियों ने जब हाथ-पैर हिलाना भी प्रारम्भ नहीं किया था, तभी हम दोनों भाइयों (भारत और चीन) ने मानव सम्बन्धी समस्याओं को ज्योतिष जैसे विज्ञान द्वारा सुलझाना आरम्भ कर दिया था।"

प्रो. वेलस महोदय ने प्लेफसर साहब की कुछ पंक्तियाँ मिल्स इण्डिया के खण्ड दो में उद्धृत की हैं, जिनका आशय है कि – 'ज्योतिष ज्ञान के बिना बीजगणित की रचना कठिन है।' विलसन कहते हैं कि भारत ने ज्योतिष और गणित के तत्वों का आविष्कार अति प्राचीनकाल में किया था। डी. मार्गन ने स्वीकार किया है कि भारतीयों का गणित और ज्योतिष यूनान के किसी भी गणित या ज्योतिष के सिद्धान्त की अपेक्षा महान है। इनके तत्व प्राचीन और मौलिक हैं।

डॉ. थोबो बहुत सोच-विचार और समालोचना के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि भारत ही रेखागणित के मूल सिद्धान्तों का आविष्कर्ता है। इसने नक्षत्र विद्या में भी पुरातनकाल में ही प्रवीणता प्राप्त कर ली थी। यह रेखागणित के सिद्धान्त का उपयोग इस विद्या को जानने के लिए करता था। वर्जिस महोदय ने सूर्य सिद्धान्त के अंग्रेजी अनुवाद के परिशिष्ट में अपना मत उद्धृत करते हुए बताया है कि भारत का ज्योतिष टालमी के सिद्धान्तों पर आधारित नहीं है, बल्कि इसने ईसवी सन के बहुत

पहले ही इस विषय का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया था।

अभ्यास प्रश्न – 1

बहुवैकल्पिक प्रश्न –

1. ज्योतिष शास्त्रोत्पत्ति का मूल है –
क. वेद ख. पुराण ग. उपनिषद घ. स्मृति
2. निम्नलिखित में 'अंक विद्या' किसकी देन है –
क. चीन ख. भारत ग. जापान घ. मिस्र
3. शतपथ ब्राह्मणोक्त 'द्वादशारं हि तज्जिराय' में द्वादशारं का अर्थ क्या है –
क. 12 चक्र ख. 12 राशियाँ ग. 12 नक्षत्र घ. 12 शार
4. एक कल्प में कितने वर्ष होते हैं?
क. 432000000 वर्ष ख. 430000 वर्ष ग. 4300000000 वर्ष घ. 432 वर्ष
5. त्रिस्कन्ध ज्योतिष का उद्भव कब हो चुका था –
क. प्रागवैदिक काल में ख. सिद्धान्त काल में ग. संहिता काल में घ. कोई नहीं
6. ग्रहों की गति व स्थिति का निर्धारण किस स्कन्ध में किया जाता है -
क. संहिता ख. सिद्धान्त ग. होरा घ. शकुन
7. 'भास्कर' का अर्थ है -
क. सूर्य ख. चन्द्रमा ग. दिवा घ. रात्रि

1.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि ज्योतिषशास्त्र की उत्पत्ति का मूल 'वेद' है। ज्योतिषशास्त्र वैदिककालीन ऋषि-महर्षियों की अलौकिक प्रतिभा की देन है। भारतीय विद्याओं में इसका स्थान अद्वितीय है। मनुष्य की संरचना और उसकी प्रकृति का इससे अभिन्न सम्बन्ध है। इसके अन्तर्गत पिण्ड और ब्रह्माण्ड, व्यष्टि और समष्टि के सम्बन्धों का अध्ययन समग्र रूप से किया जाता है। ग्रह, नक्षत्र, तारे, राशियाँ, मन्दाकिनियाँ, निहारिकाएं एवं चराचर प्राणी, वृक्ष, चट्टानें आदि विश्वब्रह्माण्डीय घटक प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से एक-दूसरे को प्रभावित-आकर्षित करते हैं। इन ग्रह-नक्षत्रों का मानव-जीवन पर सम्मिलित प्रभाव पड़ता है। वे कभी कष्ट दूर करते हैं, तो कभी कष्ट भी देते हैं। ये तत्त्व मनुष्य की सूक्ष्म संरचना एवं मनःसंस्थानों पर कार्य करते हैं और उसकी भावनाओं तथा मानसिक स्थितियों को अधिक प्रभावित करते हैं। ज्योतिषशास्त्र के अध्ययन और उपयोग से ज्योतिषी को मानव-जीवन के सभी क्षेत्रों में सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि प्राप्त हो जाती है।

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

ज्योतिष शास्त्र – वेदश्चक्षुः किलेदं स्मृतं ज्योतिषशास्त्रम्। वेद के चक्षु रूपी अंग होने के कारण इसे वेदांग भी कहा जाता है।

वैदिककालीन – वेदों के समय का

ग्रह- गच्छतीति ग्रह। अर्थात् वह आकाशीय पिण्ड में जिसमें गति हो, और जो चलायमान हो उसे ग्रह कहते हैं।

खगोल – आकाशीय पिण्डों का अध्ययन जिसके अन्तर्गत किया जाता है, उसे खगोल कहते हैं।

सिद्धान्त - ऋत्यादि से प्रलयकाल पर्यन्त की गई काल गणना जिस स्कन्ध में हो, उसे सिद्धान्त कहते हैं।

संहिता – ज्योतिषशास्त्र के जिस स्कन्ध में ग्रहचारवश ग्रह-नक्षत्रादि बिम्बों के शुभाशुभ लक्षण से पशु – पक्षी- कीटादियों का भूसापेक्ष सामूहिक विवेचन, प्राकृतिक – आकाशीय घटनाओं का ज्ञान किया जाता हो, उसे 'संहिता शास्त्र' कहते हैं।

होरा – जिस स्कन्ध में मानव मात्र का उसके जन्म सम्बन्धित काल के आधार पर ग्रहों एवं नक्षत्रों की स्थिति वशात् उसके जीवन सम्बन्धित शुभाशुभ फलों का विवेचन किया जाता है, उसे होरा कहते हैं।

नक्षत्र – न क्षरतीति नक्षत्रम्। आकाशस्थ वह पिण्ड जो चलता नहीं नक्षत्र कहलाता है। दूसरे शब्दों में तारों के समूह को भी नक्षत्र कहा जाता है।

वेदांग – वेद के अंग को वेदांग कहा जाता है। भारतीय ज्ञान – विज्ञान की परम्परा में षड् वेदांग कहे गये हैं। इन्हीं वेदांगों को शास्त्र भी कहा जाता है।

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – 1 की उत्तरमाला

1. क 2. ख 3. ख 4. ग 5. क 6. ख 7. क

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- (क) भारतीय ज्योतिष – आचार्य श्रीशंकरबालकृष्णदीक्षित
(ख) भारतीय ज्योतिष – आचार्य नेमिचन्द्र शास्त्री।
(ग) सिद्धान्त ज्योतिष मंजूषा – प्रोफेसर विनय कुमार पाण्डेय।
(घ) ज्योतिष शास्त्र – डॉ० कामेश्वर उपाध्याय।

1.9 सहायक पाठ्यसामग्री

- ज्योतिष शास्त्र का इतिहास – लोकमणि दहाल
भारतीय ज्योतिष – शंकरबालकृष्णदीक्षित / नेमिचन्द्र शास्त्री
सुलभ ज्योतिष ज्ञान – पं. वासुदेव सदाशिव खानखोजे
ज्योतिष शास्त्र – डॉ० कामेश्वर उपाध्याय।

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ज्योतिष शास्त्र को परिभाषित करते हुए उसके स्कन्धों का वर्णन कीजिये।
2. ज्योतिष शास्त्र के उत्पत्ति का विस्तृत विश्लेषण कीजिये।
3. ज्योतिष शास्त्र के विकास क्रम का वर्णन कीजिये।
4. ज्योतिष के उत्पत्ति के बारे में विभिन्न विद्वानों का मत उपस्थापित कीजिये।
5. ज्योतिष के विकास पर निबन्ध लिखिये।

इकाई - 2 वेदांग ज्योतिष का परिचय

इकाई की संरचना

- 2.1 प्रस्तावना
- 2.2 उद्देश्य
- 2.3 ज्योतिष शास्त्र की वेदाङ्गता
- 2.4 वेदाङ्ग ज्योतिष
 - 2.4.1 लगध प्रोक्त वेदाङ्ग ज्योतिष में प्रतिपाद्य मुख्य विषय
 - 2.4.2 वेदाङ्ग ज्योतिष में दिनमान
 - 2.4.3 वैदिक ज्योतिष और वेदाङ्ग ज्योतिष में अन्तर
 - 2.4.4 वैदिक ज्योतिष और वेदाङ्ग ज्योतिष का काल
- 2.5 सारांश
- 2.6 पारिभाषिक शब्द
- 2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 2.8 सहायक पाठ्यसामग्री
- 2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई BAJY(N)-222 के प्रथम खण्ड की द्वितीय इकाई से सम्बन्धित है। इसके पूर्व की इकाई में आप ज्योतिष शास्त्र के उत्पत्ति एवं विकास से परिचित हो चुके हैं। इस इकाई में आप वेदाङ्ग ज्योतिष के बारे में अध्ययन करने जा रहे हैं।

ज्योतिषशास्त्र मूलतः वेद का अंग है, अतः इसे 'वेदाङ्ग' भी कहा जाता है। इस शास्त्र की वेदाङ्गता स्वयंसिद्ध है। इस इकाई में आप तत्सम्बन्धित विषयों का अध्ययन करके इसे जान लेंगे। 'वेदाङ्ग ज्योतिष' महात्मा लगध की रचना है, जो कि सर्वप्रथम ज्योतिष शास्त्र को पृथक् रूप से स्थापित करने का कार्य करती है।

आइए इस इकाई में ज्योतिष शास्त्र की वेदाङ्गता और वेदाङ्ग ज्योतिष का विस्तृत अध्ययन करते हैं।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- ज्योतिष के मूलोत्पत्ति सम्बन्धित तत्वों को जान जायेंगे।
- ज्योतिष वेदाङ्ग है, इसका ज्ञान प्राप्त कर लेंगे।
- ज्योतिष शास्त्र के वेदाङ्गता को सिद्ध कर सकेंगे।
- वेदाङ्ग ज्योतिष को समझा सकेंगे।

2.3 ज्योतिष शास्त्र की वेदाङ्गता

ज्योतिष शास्त्र की वेदाङ्गता को समझने के पूर्व सर्वप्रथम अंग किसे कहते हैं? आइए इसे जानने का प्रयास करते हैं -

किसी भी वस्तु के स्वरूप को जिन अवयवों या उपकरणों के माध्यम से जाना जाता है, उसे अंग कहते हैं। अंग शब्द की व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ भी यही है – 'अंग्यन्ते ज्ञायन्ते अमीभिरिति अङ्गानि।'

यज्ञ, तप, दान आदि के द्वारा ईश्वर की उपासना वेद का परम लक्ष्य है। उपर्युक्त यज्ञादि कर्म काल पर आश्रित हैं और इस परम पवित्र कार्य के लिए काल का विधायक शास्त्र ज्योतिषशास्त्र है। अतः इसे वेदाङ्ग की संज्ञा दी गई है। शब्दशास्त्र, ज्योतिष, निरुक्त, कल्प, शिक्षा तथा छन्द इन छः शास्त्रों द्वारा वेद का सम्यग् ज्ञान सम्भव होता है। अतः छः शास्त्रों को 'वेदाङ्ग' कहा गया है। यद्यपि

इन शास्त्रों को वेदांग सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है, ये स्वतः सिद्ध वेद के अंग हैं। तथापि ज्योतिष शास्त्र की वेदांगता के प्रमाणों का उद्धरण आपके अध्ययनार्थ इस इकाई में प्रस्तुत है-

प्राचीनकाल से आज तक वेदों की जितनी प्रकार की व्याख्याएँ हुई हैं उनसे स्पष्ट होता है वेद को मुख्य दो धाराओं में अब तक जाना गया है। प्रथम धारा वेद की यज्ञपरक व्याख्या करती है। यज्ञ ही वेद का मुख्य प्रतिपाद्य है जैसा कि आचार्य लगध ने वेदांग ज्योतिष में लिखा है –

वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः

काला हि पूर्वा विहिताश्च यज्ञाः।

तस्मादिदं कालनविधानशास्त्रं

यो ज्योतिषं वेद से वेद यज्ञान् ॥

वेदों में यज्ञ के जो महत्व बतलाए गए हैं वे वेदविहित समय में ही करने पर फलीभूत होते हैं अन्यथा वे निष्फल या विपरीत फलदायक हो जाते हैं। श्रुति कहती है –

ते असुरा अयज्ञा अदक्षिणा अनक्षत्रा।

यच्च किंचाकुर्वत तां कृत्यामेवाकुर्वत॥

अर्थात् उपयुक्त नक्षत्र एवं उपयुक्त काल के अभाव में किया गया यज्ञ, कृत्या को समर्पित हो जाता है न कि देवताओं को। अतः यज्ञानुरूप काल का चयन यज्ञ से पूर्व आवश्यक होता है। प्रायः कार्यानुरूप काल का निर्देश भी स्थान- स्थान पर किया गया है। यथा –अग्न्याधान प्रसंग में कहा गया है –

वसन्ते ब्राह्मणोऽग्निमादधीत, ग्रीष्मे राजन्य आदधीत इत्यादि।

इसी प्रकार दीक्षा ग्रहण करने हेतु काल का निर्देश है –

एकाष्टम्यां दीक्षरेन्। फल्गुनी पूर्णमासे दीक्षरेन्॥

इससे स्पष्ट है कि यज्ञ से पूर्व के उपक्रम भी उचित काल में ही सम्पन्न होने चाहिए। आचार्य लगध ने पग-पग तिथि नक्षत्र, ऋतु एवं अयन आदि की आवश्यकता को देखते हुए काल का प्रतिपादन किया है। कालज्ञान को सर्वाधिक महत्व देते हुए आर्च ज्योतिष में काल की वन्दना की गई है।

प्रणम्य शिरसा कालमभिवाद्य सरस्वतीम्।

कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मनः॥

ऋग्वेद से लेकर ब्राह्मण आरण्यक तक ज्योतिष शास्त्र का विवेचन इस बात का परिचायक है कि यज्ञ के साथ-साथ ज्योतिष शास्त्र भी वेद का प्रतिपाद्य विषय है। अन्यथा संवत्सर से लेकर तिथि तक का उल्लेख वेदों में नहीं होता। इन्हीं आधारों पर ज्योतिष शास्त्र के प्रख्यात आचार्य भास्कर ने ज्योतिष शास्त्र के महत्व को प्रतिपादित करते हुए कहा है –

वेदास्तावद् यज्ञकर्मप्रवृत्ता यज्ञाः प्रोक्तास्ते तु कालाश्रयेण।

शास्त्रादस्मात् कालबोधो यतः स्याद् वेदांगत्वं ज्योतिषस्योक्तमस्मात् ॥

इतना ही नहीं भास्कर ने वेद पुरुष के सभी अंगों का उल्लेख करते हुए ज्योतिष शास्त्र को वेद का नेत्र बतलाया है। शब्दशास्त्र वेद का मुख है, ज्योतिष नेत्र, निरुक्त कर्ण, कल्प दोनों हस्त, शिक्षा नासिका, तथा छन्द वेद पुरुष के दोनों पैर हैं। इन अंगों में नेत्रों को विशेष महत्व दिया गया है इसी कारण ज्योतिष शास्त्र को शीर्षस्थ माना गया है। तद्वद् वेदांगशास्त्राणां ज्योतिषं मूर्ध्नि स्थितम्। वेदों की यज्ञपरक व्याख्या के अनुसार ज्योतिष शास्त्र की वेदांगता उक्त तथ्यों के आधार पर स्वयं सिद्ध है।

अब हम वेदों की व्याख्या की दूसरी धारा को लेते हैं जिसके अन्तर्गत हमारी जीवन पद्धति से जुड़ी हुई ऐतिहासिक एवं वैज्ञानिक व्याख्या की गई है। इस धारा के अन्तर्गत सृष्टि प्रक्रिया से लेकर मानव जीवन पद्धति तक का सूक्ष्म विवेचन किया गया है। हम यहाँ केवल उन्हीं अंशों का उल्लेख करते हैं जिसका सीधा सम्बन्ध ज्योतिषशास्त्र से है। ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति का उल्लेख करते हुए सूर्यसिद्धान्त का कथन है –

वासुदेवः परं ब्रह्म तन्मूर्तिः पुरुषः परः।

अव्यक्तो निर्गुणः शान्तः पंचविशात् परोऽव्ययः॥

प्रकृत्यन्तर्गतो देवः बहिरन्तश्च सर्वगः।

संकर्षणोऽपः सृष्टयादौ तासु वीर्यमसासृजत्॥

तदण्डमभवद् हैमं सर्वत्र तमसावृतम्।

तत्रानिरूद्धः प्रथमं व्यक्तीभूतः सनातनः॥

हिरण्यगर्भो भगवानेष छन्दसि पठ्यते। (सूर्यसिद्धान्त, अधिकार -12, श्लोक-12-14)

इस प्रकार हिरण्यगर्भ भगवान ने अहंकार मूर्ति ब्रह्मा के द्वारा सृष्टि का आरम्भ कराया। ब्रह्मा के मन से चन्द्रमा और नेत्रों से तेज स्वरूप सूर्य की उत्पत्ति हुई। तदनन्तर मन से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल तथा जल से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई है।

आचार्य भास्कर ने सांख्यमत को प्रतिपादित करते हुए कहा है कि –

यस्मात् क्षुब्ध प्रकृतिपुरुषाभ्यां महानस्य गर्भे

अहंकारोऽभूत् खकशिखिजलोर्व्यस्ततः संहतेश्च।

ब्रह्माण्डं यज्जठरगमहीपृष्ठनिष्ठाद् विरंचे

र्विश्वं शश्वज्जयति परमं ब्रह्म तत्तत्त्वमाद्यम्॥

अर्थात् प्रकृति और पुरुष के संघर्ष से महान् की उत्पत्ति हुई, महान से अहंकार तथा अहंकार से क्रमशः आकाश, वायु, अग्नि-जल एवं पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। इन दोनों सिद्धान्तों का मूल वेद ही है। ऋक् संहिता का मन्त्र ‘ऋतं च सत्यं चाभद्धातपसोऽध्यजायत.. इत्यादि। तैत्तरीय ब्राह्मण का मन्त्र ‘आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत्। इत्यादि तथा “नासदासीन्नोसदासीत्तदानीम् नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्” इत्यादि मन्त्र भी उसी सृष्टि प्रक्रिया को प्रतिपादित करते हैं।

इसी प्रकार पर्जन्य विद्या, सौरमण्डल, अन्तरिक्ष, भूगोल आदि का विस्तृत वर्णन तथा सूर्य चन्द्रमा की गति से सम्बन्धित तिथि एवं नक्षत्रों का विवेचन स्पष्ट रूप से ज्योतिषशास्त्र का ही प्रतिपाद्य है। वेदों में इनका महत्वपूर्ण स्थान ज्योतिषशास्त्र की महत्ता को व्यक्त करने के साथ-साथ वेद के साथ अभिन्नता का भी परिचायक है। वैदिक काल में ही समस्त आकाशीय पिण्डों की पारस्परिक भिन्नता ज्ञात थी। भूमि पर स्थित प्राणी आकाश में प्रकाशमान पिण्डों को एक समान ही देखता है किन्तु वास्तविकता यह नहीं है। समस्त प्रकाशमान पिण्डों में कुछ स्वयं प्रकाशित हैं तथा कुछ सूर्य से प्रकाशित हैं। स्वयं प्रकाशमान पिण्ड तारा एवं नक्षत्र वाचक हैं तथा सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित पिण्ड ग्रह एवं उपग्रह संज्ञक हैं। तारों में भी चन्द्र पथ या सौर पथ में आने वाले, तारे नक्षत्र संज्ञक है तथा उनसे भिन्न स्थिति में रहने वाले तारे तारा संज्ञक हैं। वेदों में तारक मण्डल या तारा को ऋक्ष शब्द से व्यवहृत किया गया है।

“अमीय ऋक्षा निहिता स उच्चा”

सदैव उत्तर दिशा में में दिखाई देने वाले सात तारों के समूह को ऋक्ष मण्डल कहा गया है जिसे हम सप्तर्षि मण्डल कहते हैं। ऋक्ष शब्द का अर्थ ‘भालू’ होता है। सम्भवतः ऋक्ष शब्द का भालू अर्थ लेकर ही पाश्चात्यों ने वृहद सप्तर्षि मण्डल को Great bear तथा लघु सप्तर्षि मण्डल को Small bear नाम से सम्बोधित किया है। वर्तमान समय में भी ज्योतिषशास्त्र में ऋक्ष शब्द नक्षत्रों के लिए प्रयुक्त हो रहा है।

लघु सप्तर्षि मण्डल को पुराणों में शिंशुमार कहा गया है। शिंशुमार के पुच्छ में स्थित तारा ध्रुव संज्ञक है। किन्तु यह स्थिर नहीं है। ध्रुव के सन्दर्भ में वैज्ञानिक भी लम्बे समय तक भ्रम में थे वे भी इसे स्थिर समझते थे। किन्तु पुराणों ने स्पष्ट शब्दों में कहा है –

योऽसौ चतुर्दिशं पुच्छे शिंशुमारे व्यवस्थितः।

उत्तानपादपुत्रोऽसौ मेढीभूतो ध्रुवो दिवि॥

स हि भ्रमन् भ्रामयते चन्द्रादित्यैः ग्रहैः सह।

भ्रमन्तमुपगच्छन्ति नक्षत्राणि च चक्रवत्॥

अर्थात् ध्रुव तारा शिंशुमार चक्र समस्त ग्रहमण्डल को भ्रमण कराता हुआ स्वयं भी भ्रमण करता है। प्रख्यात दैवज्ञ कमलाकरभट्ट ने भी कठोर शब्दों में कहा है –

ध्रुवतारां स्थिरां ग्रन्थे मन्यन्ते ते कुबुद्धयः।

नक्षत्रों के सम्बन्ध में भी वेद और ज्योतिष में अभेद सम्बन्ध है। आज भी नक्षत्रों के वही नाम प्रचलित है जो वैदिक काल में थे। अन्तर इतना ही है कि वैदिक काल में नक्षत्रों की गणना कृत्तिका से, वेदांगज्योतिष काल में धनिष्ठा से तथा आज अश्विनी से गणना प्रारम्भ होती है। दूसरा अन्तर यह है कि वेदों में क्रम से नक्षत्रों के नाम नहीं दिए गए हैं। संकेताक्षर द्वारा सभी नक्षत्रों का उल्लेख है। यथा

– जौ द्राघः खेश्वेहीरोषाचिन्मूषण्यः इत्यादि।

यहाँ जौ अर्थात् अश्वयुजौ (अश्विनी), द्रा = आर्द्रा इसी प्रकार नक्षत्रों का नाम ज्ञात हो पाता है। कहीं-कहीं तिष्य – भग- फल्गुनी नामों से भी व्यक्त किया गया है।

न केवल क्रान्तिवृत्त का सम्यग् ज्ञान उपलब्ध होता है अपितु नाड़ीवृत्तीय कालज्ञान भी पूर्णरूपेण व्यवहार में था। यद्यपि काल का विवेचन सभी वेदों में है। किन्तु अथर्ववेद में काल के सूक्ष्मतम अंश का उल्लेख है। अथर्व ज्योतिष से ज्ञात होता है कि उस समय वर्ष मान 366 दिनों का माना गया था, तथा मासों के नाम दो प्रकार से प्रचलित थे। कहीं –कहीं पर “मधुश्च माधवश्चैव शुक्रश्च शुचि रेव च” इत्यादि क्रमानुसार चैत्रादि मासों के नाम कहे गए हैं जो अपेक्षाकृत अधिक व्यवहार में थे। दूसरी विधि का उल्लेख तैत्तरीय ब्राह्मण में इस प्रकार है –

1. अरूण (चैत्र)
2. अरूणज (वैशाख)
3. पुण्डरीक (ज्येष्ठ)
4. विश्वजित् (आषाढ़)
5. अभिजित् (श्रावण)
6. आर्द्र (भाद्रपद)
7. पिन्वमान (आश्विन)
8. अन्तवान (कार्तिक)
9. रसवान (मार्गशीर्ष)
10. इरावान (पौष)
11. सर्वौषध (माघ)
12. सम्भर (फाल्गुन)

इतना ही नहीं काल के सूक्ष्म निरूपण प्रसंग में एक सेकेण्ड से भी छोटी इकाईयों की भी कल्पना वैदिक साहित्य में उपलब्ध है जो वैदिक काल के गहन अनुसन्धान की ओर इंगित करती है। आधुनिक कालमान घण्टा, मिनट तथा सेकेण्ड के साथ तुलनात्मक मान निम्नलिखित सारणी से स्पष्ट है। अथर्ववेद में सबसे छोटी कालमान की इकाई निमेष है जिसे सेकेण्ड में परिवर्तन करने से ०.००८ सेकेण्ड के तुल्य होता है। शेष इस प्रकार है –

वैदिक कालमान		वर्तमान कालमान
१२ निमेष = १ लव	=	०.१०६
३० लव = १ कला	=	३.२ सेकेण्ड
३० कला = १ त्रुटि	=	१.६ मिनट
३० त्रुटि = १ मुहूर्त	=	४८ मिनट
३० मुहूर्त = १ अहोरात्र	=	२४ घण्टा

इस प्रकार की सूक्ष्म कालगणना का इतिहास किसी भी प्राचीन संस्कृति के इतिहास में दृष्टिगत नहीं हुआ है। जब हम गणितीय दृष्टि से विचार करते हैं, तो आज की विवादास्पद स्थिति भी सुलझ जाती है। आधुनिक इतिहासकारों का अनुमान है कि रेखागणित का उद्भव भारत में नहीं हुआ है। यह सिद्धान्त मिश्र से भारत आया है किन्तु यह धारणा नितान्त भ्रामक है। आपस्तम्ब और बौधायन शुल्बसूत्र इसके साक्षी हैं। शुल्ब का अर्थ रज्जु होता है। रज्जु रेखा की प्रतीक है। रस्सी से ही मापकर वेदी और यज्ञ कुण्डों हेतु क्षेत्र विन्यास किया जाता था। यज्ञवेदी और कुण्डों के आकार, चतुर्भुज, वृत्त एवं त्रिकोण आदि विभिन्न स्वरूपों में होते हैं। इनकी निर्माण विधि का विस्तृत विवेचन स्पष्ट रूप से रेखागणित के सिद्धान्तों का ही प्रतिपादन करते हैं। आपस्तम्ब शुल्ब सूत्र के प्रथम पटल के ३ अध्यायों में शुद्ध रूप से रेखागणित का ही प्रतिपादन है। इनमें वृत्त और उनके परिधि-व्यास आदि अवयवों एवं उनके परस्पर सम्बन्धों का भी उल्लेख है। अतः रेखागणित का भी मूल वेद में होने से इसकी भारतीयता सिद्ध हो जाती है।

अभ्यास प्रश्न -1

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये –

1. किसी भी वस्तु के स्वरूप को जिन अवयवों या उपकरणों के माध्यम से जाना जाता है, उसे कहते हैं।
2. यज्ञ, तप, दान आदि के द्वारा ईश्वर की उपासना का परम लक्ष्य है।

3. शब्दशास्त्र वेद का है।
4. ३० त्रुटि के बराबर होता है।
5. १ अहोरात्र में घण्टे होते हैं।

रेखागणित के अत्यन्त समीपवर्ती छाया गणित है, जिसके अन्तर्गत छाया से समय ज्ञान की प्रक्रिया प्रतिपादित है। वस्तुतः यह सिद्धान्त वेध प्रक्रिया का प्रथम चरण है जो वैदिक काल में ही आरम्भ हो गया था। दिन में 15 मुहूर्तों की कल्पना उस समय भी प्रचलित थी किन्तु उस समय के मुहूर्तों के नाम भिन्न थे। उन मुहूर्तों का ज्ञान छाया वेध द्वारा होता था। 12 अंगुल शंकु की छाया द्वारा मुहूर्तों का निर्धारण होता था। मूलतः मुहूर्तों की संख्या 8 है। आठवां अभिजित् मुहूर्त स्थिर होता है शेष रौद्र आदि सात मुहूर्त सूर्योदय से क्रमानुसार आरम्भ होकर अभिजित पर्यन्त जाते हैं। पुनः अभिजित के पश्चात् उत्क्रम से सूर्यास्त के समय रौद्र तक जाते हैं। छाया के हास एवं वृद्धि के अनुसार मुहूर्तों का निर्धारण होता है। जो निम्नलिखित सारणी से स्पष्ट है –

छायामान	मुहूर्त	संख्या
०० - ९६ अंगुल तक	रौद्र	१
९६- ६० ..	श्वेत	२
६०-१२ ..	मैत्र	३
१२-६ ..	सारभट	४
६-५ ..	सावित्र	५
५-४ ..	वैराज	६
४-३ ..	विश्वावसु	७
स्थिर ३-३ ..	अभिजित्	८
३-४ ..	विश्वावसु	९
४-५ ..	वैराज	१०
५-६ ..	सावित्र	११
६-१२ ..	सारभट	१२
१२-६० ..	मैत्र	१३
६०-९६ ..	श्वेत	१४
९६ -०० ..	रौद्र	१५

इसी प्रकार रात्रि में भी पन्द्रह मुहूर्त होते हैं किन्तु उनका साधन कठिनाई से होगा। इनके अतिरिक्त ‘पर्जन्य विद्या’ जिसका विवेचन ज्योतिष शास्त्र के संहिता स्कन्ध में किया गया है, का विभिन्न प्रकार का उल्लेख है। इन्द्र और वृत्त की कथा पूर्णरूप से पर्जन्य विद्या का ही प्रतिपादन करती है। श्री लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने इन्द्र को सूर्य तथा वृत्त को हिम का प्रतीक माना है। इन्द्र और वृत्त के युद्ध को तिलक ने ध्रुव प्रदेशीय विप्लव बतलाया है। यास्क ने भी वृत्त को मेघ मानकर ही व्याख्या की है। वैदिक देवताओं में सूर्य का महत्वपूर्ण स्थान है। सूर्य ही ज्योतिष शास्त्र के नियामक देवता है। सूर्य की सुषुम्ना रश्मि का सोम से प्रगाढ़ सम्बन्ध बतलाया है। सोमलता चन्द्रमा की कला के अनुसार बढ़ती है तथा कला के अनुसार घटती है। इसका यह भी अभिप्राय है कि सूर्य की सुषुम्ना नामक रश्मि चन्द्रमा को तथा सोमलता दोनों को ही विकसित करती है। सूर्य की प्रमुख सात रश्मियाँ भिन्न-भिन्न गुणों से युक्त हैं। एक-एक रश्मि एक-एक ग्रह को प्रभावित करती है। यथा-

सूर्य की सुषुम्ना नामक रश्मि चन्द्रमा को		
हरिकेश	नक्षत्रों को	
विश्वकर्मा	बुध को	
विश्वव्याचा	शुक्र को	
संयदवसु	भौम को	
अर्वावसु	गुरु को	
स्वराट्	शनि को प्रभावित करती हैं।	

इन्हीं सात रश्मियों के कारण सूर्य को ‘सप्त रश्मि’ कहा जाता है। इन्हीं रश्मियों का विश्लेषण कर आधुनिक वैज्ञानिकों ने इनके रंगों के आधार पर BIVGYOR (Blue, Indigo, Violet, Green, Yellow, Orange and Red) नाम से विभक्त किया है। यह स्थूल विवेचन है। सूक्ष्म विवेचन में सूर्य की संज्ञा सहस्र रश्मि हो जाती है। सूर्य की प्रत्येक रश्मियों में उक्त सात रश्मियाँ होती हैं तथा प्रत्येक रश्मियों सहस्र उप रश्मियाँ होती हैं। प्रत्येक रश्मि के गुण एवं कार्य भिन्न-भिन्न होते हैं।

इन सभी आधारों को देखते हुए तथा ज्योतिष शास्त्र के ऐतिहासिक तथ्यों को ध्यान में रखते हुए इसे वेद से भिन्न मानने के लिए स्थान ही नहीं रहता। अतः ज्योतिष शास्त्र की सर्वांगीण वेदांगता स्वतः सिद्ध हो जाती है। इसके लिए स्वयं वेद ही प्रमाण है। प्रमाणान्तर की आवश्यकता ही नहीं है। आचार्य भास्कर की उक्ति “वेदांगत्वं ज्योतिषस्योक्तमस्मात्” सर्वथा सिद्ध है।

2.4 वेदांग ज्योतिष –

वेदांग ज्योतिष कहने से ज्योतिष के उस भाग का बोध होता है, जो वैदिक ज्योतिष और मानव ज्योतिष से भिन्न है। वेदांग कहते ही वेद के छः अंगों का नाम सामने आ जाता है। ये हैं – व्याकरण, ज्योतिष, निरुक्त, कल्प, शिक्षा और छन्दा। इन्हें षडंग भी कहा जाता है। अंगी वेद है और अंग वेदांग है।

आचार्य बलदेव उपाध्याय ने अपने वैदिक साहित्य एवं संस्कृति ग्रन्थ में लिखा है कि – वेद एक स्वयं दुरुह विषय ठहरा, भाषा तथा भाव दोनों की दृष्टि से। अतएव वेद का अर्थ जानने में, उसके कर्मकाण्ड के प्रतिपादान में तथा इस प्रकार की सहायता देने में जो उपयोगी शास्त्र हैं उन्हें वेदांग के नाम से पुकारते हैं।

षड् वेदांगों में से चार वेदांग भाषा से सम्बन्धित हैं – व्याकरण, निरुक्त, शिक्षा, छन्दा। इन चार वेदांगों से वेद का यथार्थ बोध होता है। कल्प के चार विभाग हैं। श्रौत, गृह्य, धर्म और शुल्बा। इनमें से केवल शुल्ब ही वैज्ञानिक शाखा का प्रतिनिधित्व करता है। षष्ठ अंग है ज्योतिष। यह वेदांग पूर्णतः वैज्ञानिक, कालविधान कारक तथा वैदिक धारान्तर्गत भारतीय मनीषा की सर्वोच्च उपलब्धि है।

वेद किसी एक विषय पर केन्द्रित रचना नहीं है। विविध विषय और अनेक अर्थ को द्योतित करने वाली मन्त्र राशि वेदों में समाहित है। केवल ज्योतिष, व्याकरण, छन्द, धर्म, दर्शन या किसी अन्य विषय का ग्रन्थ नहीं है वेद। अतः वेदों में किसी भी विषय का तारतम्य बद्ध अध्ययन नहीं है। इसीलिए वेदों को उत्स, मूल या आदि तो कह सकते हैं, पर विषय नहीं। भारतीय ज्ञान परम्परा की पुष्टि वेद में निहित है। कोई भी विषय मान्य और भारतीय दृष्टि से संवलित तभी मान जायेगा जब उसकी जड़े वेदचतुष्टय में कहीं न कहीं समाहित हों। अतः ज्योतिष भी वेदों में बीजरूप में दिखलाई पड़ता है। इसी बीज विषय को 'वैदिक ज्योतिष' कहते हैं।

वेदांग ज्योतिष की रचना महात्मा लगध ने की थी। उन्होंने ही इसकी रचना करके सर्वप्रथम ज्योतिषशास्त्र को स्वतन्त्र रूप से स्थापित किया था। भारतवर्ष के गौरवास्पद विषयों में वेद-वेदांग वाङ्मय का प्रमुख स्थान है। वेदांग ज्योतिषविद्या में और कलगणनापद्धति में अतीव महत्वपूर्ण स्थान रखने वाले आचार्य लगध को और उन के पंचसंवत्सरमयम् इत्यादि वेदांगज्योतिषग्रन्थ को बहुत कम लोग जानते हैं। किन्तु वैदिकधर्मकृत्यों के कालों के निरूपण में यह ग्रन्थ अत्यन्त प्रामाणिक और अनुल्लंघनीय माना गया है। अयनचलन के विचार के लिए अत्यन्त

उपयोगी करीब ३४०० वर्ष प्राचीन आलेख, जो भूमण्डल के अन्य देशों के ज्योतिषवांगमय में सर्वथा अनुपलब्ध है, इस ग्रन्थ में उपलब्ध होने से कालगणनापद्धति के विषय में इस ग्रन्थ का लौकिक महत्व भी विलक्षण और अद्वितीय है।

2.4.1 लगधप्रोक्त वेदांगज्योतिष में प्रतिपाद्य मुख्य विषय –

लगधप्रोक्त वेदांगज्योतिष ग्रन्थ में पाँच वर्षों का युग, माघशुक्लादि वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि, पर्व, विषुवत्तिथि, नक्षत्र, अधिमास ये विषय प्रतिपादित हैं। श्रौतस्मार्तधर्मकृत्यों में इन की ही अपेक्षा होने से इस वेदांग ज्योतिष ग्रन्थ में इन विषयों का मुख्यतया प्रतिपादन किया गया है।

वैदिक ज्योतिष का जो स्वरूप हमें संहिता ग्रन्थों में उपलब्ध है, उसमें नक्षत्रों, तिथियों, चान्द्रमासों, दोनों विषुवत् और दोनों अयनों का वर्णन उपलब्ध है और नक्षत्र गणना कृत्तिका नक्षत्र से की गई है जो उस समय वसन्त सम्पात का नक्षत्र था। उपरोक्त विषयों का गणितीय स्वरूप हमें वेदांग ज्योतिष में उपलब्ध होता है जो गणना के द्वारा तिथियों, नक्षत्रों के मान को प्रस्तुत करता है। वेदांग ज्योतिष की गणना के अनुसार ५ वर्षों का एक युग माना गया है जो चान्द्रयुगचक्र कहा जा सकता है। एक सौर वर्ष ३६६ दिनों का माना गया है, इसलिए ५ सौर वर्षों में $366 \times 5 = 1830$ सावन दिन होते हैं। एक युग में ६२ चान्द्रमास और ६० सौर मास होते हैं इस प्रकार ५ वर्ष में २ अधिमास होते हैं। इन २ अधिमासों में ३० तिथियाँ होती हैं। युग में ६७ नाक्षत्रमास होते हैं। इसमें चन्द्रमा $67 \times 27 = 1809$ नक्षत्रों को पार करता है। युग का आरम्भ उत्तरायण अथवा दक्षिणायनान्त से होता है, जब चन्द्रमा और सूर्य दोनों धनिष्ठा नक्षत्र पर होते हैं और माघमास का आरम्भ होता है। जैसे –

स्वराक्रमेते सोमार्को यदा साकं सवासवौ।

स्यात् तदादियुगं माघस्तपः शुक्लोऽयनंह्युदक्।।

अर्थात् जब चन्द्रमा और सूर्य एक साथ धनिष्ठा नक्षत्र पर आकाश में होते हैं तभी युग का आदि माघ और उत्तरायण का आरम्भ होता है, जो शुक्लपक्ष का आदि और तपमास होता है।

वेदांग ज्योतिष में स्पष्ट है कि तिथि नक्षत्रों के मान केवल चन्द्रमा, सूर्य के मध्यम गतियों की गणना के आधार पर बनाये गये गणितीय नियमों के अनुसार हैं। इससे स्पष्ट है कि नक्षत्रों और तिथियों के अंशात्मक विभाग उस समय तक नहीं किए गये थे। क्योंकि ५ वर्ष के सावन दिनों की संख्या और तिथियों की संख्या का अन्तर करके उसमें पक्ष संख्या से भाग देकर पाक्षिक तिथियाँ प्राप्त की गई हैं, और इसी प्रकार चन्द्रमा के नक्षत्र भोग दिनों में नक्षत्र संख्या से भाग देकर नक्षत्रों का मान उपलब्ध किया हुआ प्रतीत होता है। इससे सिद्ध है कि नक्षत्रों के कोणीय मान का कोई निर्देश नहीं है। इस ग्रन्थ

में बारह राशियों, सप्ताहों के दिन और ग्रहों के गतियों का कोई उल्लेख नहीं है। नीचे दिए गए तालिका में सौर वर्षों के वास्तविक दिन से वेदांग में पठित चान्द्रमासों और नाक्षत्रमासों के मानों से तुलना करते हैं:-

$$५ \text{ सौर वर्ष} = ३६.५२५६३६२ \times ५ = १८२६.२८१८१० \text{ दिन}$$

$$६२ \text{ चान्द्र मास} = २९.५३०५९ \times ६२ = १८३०.८९६५ \text{ दिन}$$

$$६७ \text{ नाक्षत्रमास} = २७.३२१६६ \times ६७ = १८३०.५५१२ \text{ दिन}$$

महामहोपाध्याय श्री सुधारकर द्विवेदी जी ने वेदांग ज्योतिष के अनुसार निम्नांकित तालिका दी हैं –

१ युग में रविवर्ष = ५	= रविभगण
सौर मास = ६०	सौर दिन = १८००
चान्द्रमास = ६२	चान्द्र दिन = १८६०
क्षय दिन	= ३०
सावनदिन	= १८३०
नक्षत्रोदय	= १८३५
चन्द्रभगण	= ६७
चन्द्रसावन दिन	= १७६८
एक सौर वर्ष में सावन दिन	= ३६६
एक सौर वर्ष में चान्द्र दिन	= ३७२
एक सौर वर्ष में नक्षत्रोदय	= ३६७
एक से द्वितीय अयन पर्यन्त सौर दिन	= १८०

उपर्युक्त चान्द्र और पंचांगीय व्यवस्था के लिए माने हुए पंचवर्षीय युग में ६२ चान्द्रमासों और वास्तविक पाँच वर्ष के सौर दिवसों में ४.६०९७ का अन्तर है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि उत्तरायणारम्भ के दिन जब चन्द्रमा सूर्य एकत्रित हों वहाँ से आरम्भ कर गणना करने पर पाँच वर्ष के अन्त में उत्तरायणारम्भ का दिन ४.६०९७ के पीछे ही होगा और ६ युगों के अन्तर पर यह अन्तर लगभग एक चान्द्रमास तुल्य अर्थात् $४.६०९७ \times ६ = २७.६५८२$ हो जायेगा। इसलिए ६ वें युग के अन्त में एक अधिमास हो जायेगा, जो पंचांगीय योजना के लिए व्यर्थ होगा। भारतीय ज्योतिष के यशस्वी लेखक पं० शंकर बालकृष्ण दीक्षित के मतानुसार ९५ वर्षों में $९५.२/५ = ३८$ अधिमास प्राप्त होंगे। इसलिए वेदांग ज्योतिष के अनुसार ९५ वर्षों में अपेक्षित मासों के अतिरिक्त ३ अधिमास और जुड़ते हैं, जिनको हटा देने पर ही पंचांगीय व्यवस्था शुद्ध हो सकती है। अतः ३२ वर्ष के काल में

६ युग में यदि हम १२ अधिमास कल्पना करें तो कुल ३६ अधिमास हो जायेगा, इसलिए अन्तिम १५ वें वर्ष में एक अधिमास और कम कर देने से ३५ अधिमास होंगे इस व्यवस्था में जिन अधिमासों को ग्रहण करते थे उन्हें संसर्प और जिन अधिमासों का त्याग करते थे उन्हें अंहस्पत्य (क्षयमास) कहते थे। दीक्षित जी का यह भी मत है कि अधिमास तभी जोड़े जाते थे जब उनकी आवश्यकता होती थी। अतः यह कल्पना उचित ही जान पड़ती है।

2.4.2 वेदांग ज्योतिष में दिनमान –

वेदांग ज्योतिष में उत्तरायणारम्भ के दिनमान से दक्षिणायनारम्भ के दिन तक की गणना करके सबसे बड़े दिन (दक्षिणायनारम्भ के दिन) में सबसे छोटे दिन (उत्तरायणारम्भ के दिन) को घटाकर उसमें वर्ष के आधे दिन की संख्या में १८३ से भाग देकर लब्धितुल्य दैनिक वृद्धि से मध्यवर्ती दिनों का कालमान लाया गया है। किन्तु दिनमानों का अनुपात २/३ का है, अर्थात् सबसे छोटे दिन का डेढ़ा सबसे बड़ा दिन है, उससे जो चर घटी आती है वह ३५ अंश अक्षांश की होती है। खाल्दिया का अक्षांश भी यही है। इसलिए कुछ यूरोपियन यह मानते हैं कि वेदांग ज्योतिष के समय आर्यों का निवास उत्तर-पंजाब सीमा प्रान्त और कश्मीर तथा अफगानिस्तान में था। यहाँ का अक्षांश ३२ अंश है और किरणवक्त्री भवनसंस्कार से भी ९ मिनट दिनमान बढ़ सकता है, तथा जल घड़ी के द्वारा कालमापन विधि के व्यवहार से भी कुछ अन्तर सम्भव है। इस प्रकार वेदांग ज्योतिष का विषय शुद्ध भारतीय है उसके लिए दूसरा प्रमाण नक्षत्रों में लग्न की गणना है वेदांग ज्योतिष में कहा गया है कि –

श्रविष्ठाभ्यो गणाभ्यस्तान् प्राग्विलग्नान् विनिर्दिशेत् (आर्च ज्योतिष १९)

अर्थात् धनिष्ठा से गणना कर पूर्व क्षितिज में लगे हुए नक्षत्रों के लग्नों का फल उसमें नहीं दिया गया है, किन्तु आगे चलकर अथर्व ज्योतिष में हम नक्षत्रों का फल देखते हैं और जन्म, सम्पत्ति, विपत्ति, क्षेम, प्रत्यारि, साधक, वध, मैत्र और अतिमैत्र ये नौ संज्ञायें जन्म नक्षत्र से आरम्भ कर बतलाई गयी हैं तथा उनके फल भी नाम के तुल्य ही कहे गए हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि वेदांग ज्योतिष काल में गणित एवं फलित ज्योतिष की सच्ची नींव पड़ चुकी थी।

बार्हस्पत्य संवत्सर का, क्षयमास का, मेष वृष इत्यादि राशियों का, सौर संक्रान्तियों का, आदित्यवार सोमवार इत्यादि वारों का, सूर्य-चन्द्र ग्रहणों का, मंगल-बुधादि ग्रहों का, वृहस्पति के और शुक्र के उदय और अस्त का भी वेद मन्त्रों में ब्राह्मणग्रन्थों में श्रौतसूत्रों में गृह्यसूत्रों में और धर्मसूत्रों में भी अपेक्षा न होने से लगधप्रोक्त वेदांगज्योतिषग्रन्थ में भी इन विषयों का प्रतिपादन नहीं किया गया है।

वैदिक परम्परा में संवत्सर का अत्यधिक महत्व है। शतपथब्राह्मण में अनेक स्थलों में संवत्सर को प्रजापति बताया गया है। शतपथब्राह्मण में संवत्सर को प्रजापति की प्रतिमा भी कहा गया है। वैदिक, चयनयाग संवत्सर के ही अनुकरण में आधृत दिखाई देता है। अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु सभी संवत्सर में ही आधृत माने गये हैं। वेद की इसी मान्यता को ध्यान में रखकर ही ज्योतिषी गर्गाचार्य ने भी संवत्सर का स्वरूप निश्चित होने पर ही अयन, ऋतु, मास, पक्ष, नक्षत्र, तिथि और दिन निश्चित हो सकने की और अयनादि कालों में विहित धर्मकृत्य भी ठीक- ठीक समय में हो सकने की बात बताई है। उन का वचन है –

अयनान्यृतवो मासाः पक्षासत्त्वृक्षं तिथिर दिनम्।

तत्त्वतो नाऽधिगम्यन्ते यदाऽब्दो नाऽधिगम्यते॥

यदा तु तत्त्वतोऽब्दस्य क्रियतेऽधिगमो बुधैः।

तदैवैषाममोहः स्यात् क्रियाणां चाऽपि सर्वशः॥

इस स्थिति में वैदिक मूल परम्परा के संवत्सर के वास्तविक स्वरूप का विवेचनात्मक ज्ञान प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है।

महात्मा लगध द्वारा रचित वेदांग ज्योतिष की चर्चा अर्वाचीन काल में पाश्चात्य संस्कृतविद् कोलब्रूक, मैक्समूलर, याकोबि, वेबर, थिबो इत्यादि लोगों ने भी की है। भारतीय लोगों में शंकर बालकृष्णदीक्षित, लाला छोटेलाल (बार्हस्पत्य), सुधाकर द्विवेदी, बालगंगाधर तिलक, योगेश चन्द्र राय, शामशास्त्री, गोरखप्रसाद, सत्यप्रकाश इत्यादि लोगों ने भी इस ग्रन्थ की चर्चा की है। इस ग्रन्थ का वर्तमान काल में भी वैदिक धर्म के अग्न्याधान- दर्शपूर्णमासादि यज्ञों में और नामकरण – उपनयन विवाहादि संस्कारों में अपेक्षित कालज्ञान के उपयोगी साधन के रूप में प्रयोग हो सकने के विषय में उन लोगों ने सम्यक् विचार नहीं किया है।

2.4.3 वैदिक ज्योतिष और वेदांग ज्योतिष में अन्तर –

प्रायशः विद्वान् वेदांग ज्योतिष को ही वैदिक ज्योतिष भी समझ लेने की भूल करते हैं। ऋषियों के अन्तःकरण में दृष्ट मन्त्र ज्योतिष के तत्त्व को धारण किये हुए हैं तो उसे वैदिक ज्योतिष कहा जाता है, जबकि वेदांग ज्योतिष विषयों को तारतम्य बद्ध तरीके से प्रस्तुत करता है। वेदांग ज्योतिष का कर्ता ऋषि बीज तो वेद से लेता है पर उसका पल्लवन अपनी बुद्धि और प्रयोग के अनुभव के आधार पर करता है। यही कारण है कि वेदांग ज्योतिष में बहुत कुछ तारतम्यबद्ध लिखा

मिलता है। ऋचायें ऋषि हृदय में अवतरित होती हैं। अतः वेद अपौरुषेय हैं। वेदांग ऋषि बुद्धि से प्रायोगिक या अनुभव के स्तर पर रचित होने के कारण अपौरुषेय हैं। आधुनिक रूपकों से स्पष्ट करना हो तो इसे प्रातिभस्फुरण कह सकते हैं।

2.4.4 वैदिक ज्योतिष और वेदांग ज्योतिष का काल –

अब तक जितने स्वनामधन्य मनीषियों ने वेदों के काल का अनुमान लगाया है वह सारा का सारा अनुमान खण्डित होता नजर आ रहा है। उपग्रहों के द्वारा कृष्ण की द्वारकापुरी समुद्र में ढूँढ ली गयी है। सेतुबन्ध रामेश्वरम का अस्तित्व विज्ञान की नजरों में समा चुका है। अतः ५१०० वर्ष का काल तो महाभारत को ही समर्पित हो जायेगा। कोई ऐसा कारण भी नहीं है हम वेद काल या वेदांग काल को ईसा पूर्व १४०० वर्ष का मानें। अतः कालविभाजन की वे सारी मेड़ें स्वयं ध्वस्त होती चली जा रही हैं जिनसे सारी सृष्टि को ईसा पूर्व चार हजार वर्ष के अंदर धकेलने का प्रयास किया गया था। यूरोपियन एकेडमी का चश्मा अपनी प्रासंगिकता खो चुका है और स्वयं वहीं के वैज्ञानिकों ने बाइबिल की उस मान्यता को निरस्त कर दिया है जिसमें सृष्टि को मात्र छः हजार वर्ष प्राचीन कहा गया है। यानी ईसा पूर्व का चार हजार वर्ष का समय और ईसा पश्चात् का दो हजार वर्ष का समय। प्रस्तुत शीर्षक में वेदांग या वेद का कालनिर्धारण करना शक्य नहीं है। ध्येय केवल इतना है कि अंग्रेजों द्वारा निर्धारित काल गणना का पुरातात्विक प्रमाणभूत मानदण्ड ईसा पूर्व ३२० वर्ष अन्य प्रमाणों के उपलब्ध हो जाने के कारण ध्वस्त हो चुका है। अब कालगणना का मानदण्ड महाभारत है। महाभारत को मिथक या काल्पनिक ग्रन्थ कह कर पल्ला झाड़ने वाले क्रूर भाषावैज्ञानिक ही हो सकते हैं। महाभारत में विद्यमान ज्योतिष और वेदांग ज्योतिष का भी अन्तर स्पष्ट है।

श्रुति परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। उसके जन्म का अनुमान लिपि परम्परा के माध्यम से नहीं किया जा सकता। अतः सर्वप्रथम काल गणना का मानदण्ड महाभारत पूर्व महाभारत पश्चात् निश्चित करना होगा। यदि काल गणना का मानदण्ड ए.डी. या बी.सी. होगा तो उससे बेहतर है कि हम संस्कृत और वैदिक वांगमय का इतिहास निर्धारित ही न करें। हमें कलियुगाब्द को ऐतिहासिक मानना ही होगा। इस दिशा में हमारे पास तत्कालीन राजाओं को सौ –सौ वर्षीय परम्परायें भी प्राप्त हैं। अश्वत्थामा को श्रीकृष्ण प्रदत्त शाप कि महाभारत समाप्ति के पश्चात् तीन हजार वर्षों तक तुम पृथ्वी पर विकल घूमते रहोगे यह सिद्ध करता है कि ईसामसीह से पूर्व का तीन हजार वर्ष का समय भारतीय मनीषियों की दृष्टि से फिसल नहीं सकता। हमारे पंचांगों में जो सृष्ट्यादि काल गणना है वह १ अरब, ९५ करोड़, ५८ लाख ८५ हजार, एक सौ वर्ष से आगे बढ़ रही है। इसी का अंतिम चार अंक

कल्यब्द है जो ५१०७ या निरन्तर एकोत्तर वर्ष अधिक है। इसी पूरी गणना से आज भी ग्रहगणित होता है।

कुछ ऐसे भी ऋषि हैं, जिन्होंने मन्त्रों के दर्शन किये हैं और अलग से अपनी ज्योतिष संहितायें भी लिखी हैं। ऐसे ऋषियों में भारद्वाज, अगस्त्य, वसिष्ठ आदि प्रमुख हैं। इन ऋषियों ने वेद की ऋचाओं या मंत्रों को पृथक् रखा और स्वकृत रचना को संहिता (ज्योतिष) कहा। एक ही ऋषि का विषयगत यह पार्थक्य अपूर्व है। ज्योतिष संहिताओं की भाषा शैली वेद मंत्रों से सर्वथा पृथक् है। ऋचाओं में दृष्ट तत्व क्यों और कैसे की व्याख्या नहीं करता, जबकि संहिता ग्रन्थों में वर्णित विषय गणित और सूत्रात्मक प्रक्रिया से आबद्ध हैं। इस विषय को और अधिक स्पष्टता से समझने के लिए कहा जा सकता है कि ब्रह्माण्ड में विद्यमान अरबों प्रकाशवर्ष दूर स्थित किसी पिण्ड को टेलिस्कोप से देखा तो जा सकता है, पर गणितीय प्रक्रिया में उसे ढालने के लिए गणितीय सूत्रात्मक व्यवस्था देनी होती है। यह गणितीय प्रक्रिया मन्त्र आविर्भाव से मनुष्य रचित विषय का अन्तर प्रकट करती है। गणितज्योतिष का ज्ञाता स्नातक अच्छी तरह से जानता है कि यन्त्र दृष्ट और गणितसिद्ध में यथाकाल अन्तर आने लगता है।

अभ्यास प्रश्न – 2

बहुवैकल्पिक प्रश्न –

1. षड् वेदांगों में एक नहीं है -

क. शिक्षा ख. ज्योतिष ग. व्याकरण घ. उपनिषद

2. ब्रह्मा के मन से किसकी उत्पत्ति हुई है –

क. सूर्य ख. चन्द्रमा ग. ग्रहों की घ. वायु

3. सूर्यसिद्धान्तानुसार पृथ्वी की उत्पत्ति किससे हुई है –

क. जल ख. अग्नि ग. वायु घ. आकाश

4. 'ऋक्ष' शब्द का अर्थ है –

क. वानर ख. भालू ग. नक्षत्र घ. ग्रह

5. विश्वजित् किस मास का पर्याय है –

क. चैत्र ख. वैशाख ग. ज्येष्ठ घ. आषाढ़

6. ३० लव = ?

क. १ विकला ख. १ कला ग. १ निमेष घ. कोई नहीं

2.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि किसी भी वस्तु के स्वरूप को जिन अवयवों या उपकरणों के माध्यम से जाना जाता है। उसे अंग कहते हैं। अंग शब्द की व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ भी यही है – अंग्यन्ते ज्ञायन्ते अमीभिरिति अङ्गानि। यज्ञ, तप, दान आदि के द्वारा ईश्वर की उपासना वेद का परम लक्ष्य है। उपर्युक्त यज्ञादि कर्म काल पर आश्रित हैं और इस परम पवित्र कार्य के लिए काल का विधायक शास्त्र ज्योतिषशास्त्र है। अतः इसे वेदांग की संज्ञा दी गई है। शब्दशास्त्र, ज्योतिष, निरुक्त, कल्प, शिक्षा तथा छन्द इन छः शास्त्रों द्वारा वेद का सम्यग् ज्ञान सम्भव होता है। अतः छः शास्त्रों को वेदांग कहा गया है। यद्यपि इन शास्त्रों को वेदांग सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है, ये स्वतः सिद्ध वेद के अंग हैं। तथापि ज्योतिष शास्त्र की वेदांगता के प्रमाणों का उद्धरण इस इकाई में निहित है। प्राचीनकाल से आज तक वेदों की जितनी प्रकार की व्याख्याएँ हुई हैं उनसे स्पष्ट होता है वेद को मुख्य दो धाराओं में अब तक जाना गया है। प्रथम धारा वेद की यज्ञपरक व्याख्या करती है और दूसरी कर्मपरक।

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

वैदिक ज्योतिष – ऋक, साम, यजु एवं अथर्व ज्योतिष से सम्बन्धित ज्योतिष को वैदिक ज्योतिष कहा जाता है।

वेदाङ्ग ज्योतिष – वेदाङ्ग ज्योतिष महात्मा लगध की कृति है।

अंग - किसी भी वस्तु के स्वरूप को जिन अवयवों या उपकरणों के माध्यम से जाना जाता है। उसे अंग कहते हैं। अंग शब्द की व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ भी यही है – अंग्यन्ते ज्ञायन्ते अमीभिरिति अङ्गानि।

पंचांग – तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण। इन पाँच अंगों से जो मिलकर बनता है, उसे पंचांग कहते हैं।

दिनमान – दिन सम्बन्धि मान को दिनमान कहते हैं। सम्पूर्ण दिनमान (दिन और रात्रि मिलाकर) ६० घटी का होता है।

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – 1 की उत्तरमाला

1. अंग 2. वेद 3. मुख 4. मुहूर्त 5. 24

अभ्यास प्रश्न – 2 की उत्तरमाला

1. घ 2. ख 3. क 4. ख 5. घ 6. ख

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- (क) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक- भास्कराचार्य, टिकाकार- आचार्य सत्यदेव शर्मा, प्रकाशक – चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी।
 (ख) वेदांग ज्योतिष – मूल लेखक – महात्मा लगध, टिकाकार- आचार्य कौण्डिन्यायन, प्रकाशक स्थान – चौखम्भा वाराणसी।
 (ग) सूर्यसिद्धान्त – टिका – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय, आचार्य कपीलेश्वर शास्त्री, प्रकाशक – चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी।
 (घ) तैत्तिरीय ब्राह्मण
 (ङ.) भारतीय ज्योतिष – आचार्य शंकरबालकृष्ण दीक्षित।

2.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1. प्राच्यविद्यानुशीलनम् - लेखक - प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय, प्रकाशक – नैसर्गिकी शोध संस्थान वाराणसी।
 2. भारतीय ज्योतिष – शंकरबालकृष्णदीक्षित / नेमिचन्द्र शास्त्री
 3. वेदांग ज्योतिष – आचार्य कौण्डिन्यायन
 4. ज्योतिष शास्त्र – लेखक – डॉ० कामेश्वर उपाध्याय।
 5. सुलभ ज्योतिष ज्ञान – पं. वासुदेव सदाशिव खानखोजे।

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ज्योतिष की वेदांगता पर प्रकाश डालिये।
 2. वेदांग ज्योतिष से क्या तात्पर्य है? स्पष्ट कीजिये।
 3. वैदिक ज्योतिष एवं वेदांग ज्योतिष में अन्तर स्पष्ट कीजिये।
 4. वेदांग ज्योतिष पर निबन्ध लिखिये।
 5. लगधप्रोक्त वेदांग ज्योतिष में प्रतिपाद्य मुख्य विषयों का उल्लेख कीजिये।

इकाई - 3 ज्योतिष शास्त्र के प्रमुख प्रवर्तक

इकाई की संरचना

- 3.1 प्रस्तावना
- 3.2 उद्देश्य
- 3.3 ज्योतिष शास्त्र के प्रमुख प्रवर्तक
- 3.4 ज्योतिष शास्त्रीय आचार्य परम्परा
- 3.5 सारांश
- 3.6 पारिभाषिक शब्द
- 3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 3.8 सहायक पाठ्यसामग्री
- 3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई BAJY(N)-222 के प्रथम खण्ड की तीसरी इकाई से सम्बन्धित है। इसके पूर्व की इकाई में आप ज्योतिष शास्त्र की वेदांगता एवं वेदांग ज्योतिष से परिचित हो चुके हैं। इस इकाई में आप ज्योतिष शास्त्र के प्रवर्तक एवं आचार्य के बारे में अध्ययन करने जा रहे हैं।

प्रवर्तक का अर्थ है – प्राचीन ऋषि, जिन्होंने ज्योतिष शास्त्र का प्रतिपादन किया। आचार्य से तात्पर्य ज्योतिष शास्त्र की परम्परा को निर्वहन करने वाले तथा उसकी अक्षुण्णता को बनाये रखने वालों से है।

आइए इस इकाई में हम ज्योतिष के प्रवर्तकों एवं आचार्यों का बारे में जानने का प्रयास करते हैं।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- ज्योतिष शास्त्र के मूल प्रवर्तक कौन-कौन हैं, जान लेंगे।
- प्रवर्तक और आचार्य में अन्तर समझ लेंगे।
- ज्योतिष शास्त्र के आचार्यों से परिचित हो जायेंगे।
- प्रवर्तकों एवं आचार्यों की परम्परा से अवगत हो जायेंगे।
- ज्योतिषशास्त्र के ऋषियों एवं आचार्यों की महत्ता समझ लेंगे।

3.3 ज्योतिष शास्त्र के प्रमुख प्रवर्तक

वेद किसी शास्त्र विशेष का ग्रन्थ नहीं है। अतः वहाँ किसी भी शास्त्र विशेष का सांगोपांग वर्णन एकत्र नहीं देखा जाता है। किन्तु प्रसंगवश सभी शास्त्रों का दिग्दर्शन अवश्य होता है। ज्योतिष तो वेदांग ही है। इसलिए इस का वर्णन स्वाभाविक है। इस प्रकार इस शास्त्र का प्रवर्तक तो वेद है। कालक्रम में इस शास्त्र के प्रवर्तन का श्रेय उन्हें मिला है और इतिहास में उल्लेख भी उनमें सर्वप्रमुख है –

सूर्यः पितामहो व्यासः वशिष्ठोऽत्रि पराशरः।

कश्यपो नारदो गर्गो मरीचि मनुर्गिरा ॥

लोमशः पौलिशश्चैव च्यवनो यवनो भृगोः।

शौनकोऽष्टदशाश्चैते ज्योतिषशास्त्रप्रवर्तकाः॥

उक्त श्लोक के अनुसार क्रमशः 1. सूर्य 2. पितामह 3. व्यास 4. वशिष्ठ 5. अत्रि 6. पराशर 7. कश्यप 8. नारद 9. गर्ग 10. मरीचि 11. मनु 12. अंगिरा 13. लोमश 14. पौलिश 15. च्यवन 16. यवन 17. भृगु 18. शौनकादि ज्योतिषशास्त्र के प्रमुख प्रवर्तक अर्थात् ऋषि हुए।

सूर्य – वराहमिहिर ने अपनी पंचसिद्धान्तिका में सूर्यसिद्धान्त का वर्णन किया है। इससे पृथक् भी एक स्वतन्त्र सूर्यसिद्धान्त नाम का ग्रन्थ उपलब्ध होता है। इसमें कहा गया है कि कृतयुग (सत्ययुग) के अन्त में मय दानव ने भगवान सूर्य की तपस्या की थी और उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान सूर्य ने अपने अंश पुरुष द्वारा मय दानव को ग्रहगणित का सम्पूर्ण विषय ज्ञान करवाया था।

पितामह – पितामह द्वारा लिखित कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ इस समय उपलब्ध नहीं है। वराहमिहिर द्वारा लिखित पंचसिद्धान्तिका में पितामहसिद्धान्त भी है। सम्प्रति ब्रह्मसिद्धान्त के नाम से तीन ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। ब्रह्मगुप्त का ब्रह्मसिद्धान्त, शाकल्योक्त ब्रह्मसिद्धान्त और तीसरा विष्णुधर्मोत्तरपुराण के अन्तर्गत वर्णित ब्रह्मसिद्धान्त।

व्यास – पौराणिक वर्णनों से प्रतीत होता है कि व्यास किसी व्यक्ति विशेष का नाम नहीं है अपितु उपाधि है। प्रत्येक युग के आदि में ईश्वरीय प्रेरणा से पुराणों का सविस्तर व्याख्यान करने वाले को व्यास कहा जाता है। कृष्णद्वैपायन ऋषि जो सत्यवती का पुत्र माना जाता है इस युग में व्यास के नाम से जाने जाते हैं। व्यास लिखित कोई स्वतन्त्र ज्योतिषग्रन्थ तो उपलब्ध नहीं है किन्तु विभिन्न पुराणों में ज्योतिषशास्त्र का पर्याप्त वर्णन मिलता है।

वशिष्ठ – कतिपय उल्लेखों के आधार पर यह तथ्य उजागर होता है कि वशिष्ठ के सिद्धान्त, संहिता और होरा इन तीनों स्कन्धों के ग्रन्थ थे किन्तु आजकल केवल वशिष्ठ संहिता और वृद्ध वशिष्ठ संहिता नामक ग्रन्थ उपलब्ध हैं। वशिष्ठ सिद्धान्त का उल्लेख तो मिलता है किन्तु पंचसिद्धान्तिका के अतिरिक्त ग्रन्थ देखने को नहीं मिले हैं।

अत्रि – प्रसंगवश अनेक स्थानों पर अत्रि का नामोल्लेख मिलता है किन्तु स्वतन्त्र ग्रन्थ इस समय उपलब्ध नहीं है। प्रमाणों के आधार पर ऐसा लगता है कि अत्रि को ग्रहणादि साधन में विशेष दक्षता प्राप्त थी।

पराशर – पराशर द्वारा लिखित लघुपराशरी, मध्यपराशरी, वृहत्पराशरहोराशास्त्र नाम के तीनों होराशास्त्रीय ग्रन्थ आज भी उपलब्ध हैं और सुप्रसिद्ध हैं। यद्यपि मध्यपराशरी के विषय में मतान्तर भी है।

नारद – नारदसंहिता के नाम से कुछ मातृकाएँ उपलब्ध हैं। अनेक स्थलों से इसका प्रकाशन भी हुआ है। अलग-अलग प्रतियों में पाठान्तर कुछ अधिक ही देखने को मिलते हैं। नारदपुराण में भी अनेकों अध्याय ज्योतिषशास्त्र विषयक हैं।

गर्ग – गर्ग संहिता नाम का ग्रन्थ सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से प्रकाशित है। इसके अतिरिक्त भट्टोत्पलटीका में अनेक स्थलों पर गर्ग के वचनों का उल्लेख मिलता है, जो अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

मनु – मनु विरचित मनुस्मृति धर्मशास्त्र से सम्बद्ध ग्रन्थ है। किन्तु उसमें ज्योतिष सम्बन्धी बहुत सारी बातें मिलती हैं। स्वतन्त्र रूप से भी इनका ज्योतिषशास्त्रीय ग्रन्थ रहा हो यह सम्भव तो है किन्तु इस समय उपलब्ध नहीं है। प्राचीनग्रन्थों में मनु विरचित स्वतन्त्र ज्योतिषग्रन्थ का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है।

भृगु – भृगुसंहिता के अनेक संस्करण मिलते हैं। प्रशस्ति के अनुसार कोई भी संस्करण नहीं है। अनेक स्थानों पर खण्डित मातृकाएँ हैं भी, तो वे प्रामाणिक नहीं प्रतीत होती हैं।

मरीचि – मरीचि का स्वतन्त्र ग्रन्थ तो उपलब्ध नहीं है किन्तु उद्धरण बहुत प्राप्त होते हैं।

लोमश – रोमक सिद्धान्त को कुछ लोग लोमश सिद्धान्त मानते हैं। यह पंचसिद्धान्तिका के पाँच सिद्धान्तों से एक है। इसके अतिरिक्त इसका कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है।

पौलिश – पंचसिद्धान्तिका में यह सिद्धान्त समाहित है। पृथक् तया पौलिश सिद्धान्त नहीं है। कुछ विद्वानों का मत है कि यह पुलस्त्य ऋषि द्वारा विरचित है।

कश्यप, अंगिरा एवं च्यवन का उल्लेख प्रवर्तक के रूप में तो है किन्तु कृतियों का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि अध्यापन, वेध और अन्य प्रकार के प्रयोग में दक्षता होने के कारण ये आचार्य प्रवर्तक के रूप में प्रसिद्ध हुए होंगे।

यवन – यवन जातक, वृद्धयवन जातक आदि ग्रन्थ इस समय उपलब्ध हैं। हो सकता है ये ग्रन्थ इसी परम्परा के हों।

शौनक – यह प्रसिद्ध ऋषि तो हैं किन्तु इनकी ज्योतिषशास्त्रीय कृति नहीं मिलती है। इतिहास में भी कृति का उल्लेख नहीं है। ऐसा लगता है कि शौनक की भी प्रसिद्धि कश्यप, अंगिरा एवं च्यवन की तरह अध्यापन की विशिष्टता, शिष्यपरम्परा, वेध और अन्य ज्योतिषीय प्रयोग की दक्षता के लिए ही रही है।

3.4 ज्योतिष शास्त्रीय आचार्य परम्परा

वैदिक काल –

इस समय अन्य शास्त्रों की तरह ज्योतिषशास्त्र की भी स्थिति थी। विभिन्न वेदों, ब्राह्मणों, आरण्यकों, उपनिषदों, स्मृतियों आदि में प्रसंगवश ज्योतिषशास्त्र के सभी स्कन्धों के विषयों के उल्लेख मिलते हैं।

वेदांग काल – इस समय वेदांग ज्योतिष का प्रचार-प्रसार था। जिसके रचयिता महात्मा लगध माने जाते हैं। प्रतीत होता है कि इस समय अध्ययन – अध्यापन की परम्परा अधिक सुदृढ़ थी। लेखन पर बहुत ध्यान नहीं दिया गया। वेदांग ज्योतिष भी वैदिकोंको पाठ करने में सुविधा की दृष्टि से अत्यन्त संक्षेप में लिखा गया, ताकि वेदपाठी आचार्य वेद के साथ वेदांग का भी पाठ कर सकें। उस समय इसके अतिरिक्त अन्य रचनायें अवश्य रही होंगी। किन्तु आज क्रमबद्ध इतिहास उपलब्ध नहीं है।

अभ्यास प्रश्न –

1. निम्नलिखित में ज्योतिष शास्त्र है –
क. वेद ख. वेदांग ग. उपनिषद घ. साहित्य
2. शास्त्रों का मूल प्रवर्तक कौन है –
क. पुराण ख. उपनिषद ग. वेद घ. वेदांग
3. पंचसिद्धान्तिका किसकी रचना है –
क. आर्यभट्ट ख. वराहमिहिर ग. कमलाकर घ. गणेश
4. लघुपराशरी किसकी कृति है –
क. आचार्य पराशर ख. वराहमिहिर ग. कमलाकर घ. गणेश
5. वेदांग काल के सुप्रसिद्ध आचार्य है –
क. लगध ख. गणेश दैवज्ञ ग. कमलाकर घ. भास्कर

सिद्धान्त काल –

इस समय अनेक विशिष्ट आचार्य हुए, जिन्होंने ज्योतिषशास्त्र के विभिन्न स्कन्धों में या कुछ एक स्कन्ध में अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किए। कुछ आचार्यों की कृतियाँ उपलब्ध भी हैं। ऐसा नहीं कहा जा सकता है कि जिनकी कृतियाँ उपलब्ध हैं सिर्फ उतने ही आचार्य उस समय हुए। अधिकांश विद्वानों की तो अध्ययन- अध्यापन की ही परम्परा रही है। सम्भवतः कुछ ही लोग लेखन परम्परा में अधिक रुचि रखते थे। अध्ययन – अध्यापन की परम्परा में असंख्य आचार्य रहे होंगे जिनका नाम

इतिहास में देखने को नहीं मिलता है। जिन आचार्यों की कृतियाँ उपलब्ध हैं या इतिहास में उल्लेख है, उनमें प्रमुख हैं –

क्रम संख	आचार्य	काल
१.	आर्यभट्ट	ई.स. ४७६
२.	लल्ल	४८९ ई.
३.	वराहमिहिर	५०५ ई.
४.	कल्याणवर्मा	५७८ ई.
५.	ब्रह्मगुप्त	५९८ ई.
६.	मुञ्जाल	६६२ ई.
७.	वित्तेश्वर	८१९ ई.
८.	महावीर	८५३ ई.
९.	मुञ्जाल	९३५ ई.
१०.	द्वितीय आर्यभट्ट	९५३ ई.
११.	उत्पल भट्टोत्पल	९६६ ई. शक ८८८
१२.	विजयनन्दि	९६६ ई.
१३.	बलभद्र	९६६ ई.
१४.	श्रीधराचार्य	९९१ ई. शक ९१३
१५.	पद्मनाभ मिश्र	-
१६.	महेश्वर	१०१८ ई.
१७.	श्रीपति	१०३९ ई.
१८.	पृथुदक्स्वामी	१०४० ई.
१९.	भानुभट्ट	१०४० ई.
२०.	भोजराज	१०४२ ई.
२१.	राज्यमृगांक	१०४२ ई.
२२.	बल्लालसेन	१०६० ई.
२३.	शतानन्द	१०९१ ई.
२४.	ब्रह्मदेव	१०९२ ई.

२५.	भास्कर	१११४ ई.
२६.	वरूण	११५० ई.
२७.	अनन्तदेव	१२२२ ई.
२८.	केशवार्क	१२४२ ई. (शक ११६४)
२९.	कालिदास	१२४२ ई. (शक ११६४)
३०.	माधव	१२६३ ई.
३१.	महादेव	१२७८ ई.
३२.	महेन्द्रसूरि	१३२० ई.
३३.	महादेव द्वितीय	१३५७ ई. (शक १२७९)
३४.	मकरन्द	१४३८ ई. शक १३६०
३५.	केशव	१४५६ ई.
३६.	लक्ष्मीदास	१५०० ई. शक १४२२
३७.	ज्ञानराज	१५०३ ई.
३८.	गणेश	१५०७ ई.
३९.	अनन्तदैवज्ञ	१५२५ ई.
४०.	अनन्तदैवज्ञ द्वितीय	१५३७ ई.
४१.	सूर्य	१५४१ ई.
४२.	ढुण्ढिराज	१५४१ ई.
४३.	विष्णुदैवज्ञ	१५६६ ई.
४४.	कृष्णदैवज्ञ	१५६५ ई.
४५.	नीलकण्ठ	१५५७ ई.
४६.	रघुनाथ शर्मा	१५६५ ई.
४७.	रामदैवज्ञ (रामाचार्य)	१५६५ ई० शक १४८७
४८.	गोविन्द दैवज्ञ	१५६९ ई० शक १४९१
४९.	मल्लारि	१५७१ ई० शक १४९३
५०.	नारायण	१५७१ ई० शक १४९३
५१.	रंगनाथ	१५७३ ई० शक १४९५

५२	गणेश	१५७८ ई० शक १५००
५३	विश्वनाथ	१५७८ ई० शक १५००
५४	नृसिंहदैवज्ञ	१५८६ ई० शक १५०८
५५	विठ्ठल दीक्षित	१५८७ ई० शक १५०९
५६	नारायण	१५८८ ई० शक १५१०
५७	शिवदैवज्ञ	१५९१ ई० शक १५१३
५८	बलभद्र मिश्र	१५९२ ई० शक १५१४
५९	सोमदैवज्ञ	१६०२ ई० शक १५२४
६०	मुनीश्वर	१६०३ ई० शक १५२५
६१	दिवाकर	१६०६ ई० शक १५२८
६२	कमलाकर	१६१६ ई० शक १५३८
६३	नित्यानन्द	१६३९ ई० शक १५६१
६४	रंगनाथ	१६४० ई० शक १५६२
६५	जगन्नाथ सम्राट	१६५२ ई० शक १५७४
६६	जयसिंह	१६९३ ई०
६७	दादाभट्ट	१७१९ ई०
६८	शंकर	१७२६ ई० शक १६४८
६९	शिवलाल पाठक	१७३४ ई० शक १६५६
७०	गंगाधर	१७३४ ई० शक १६५६
७१	चिन्तामणि दीक्षित	१७३६ ई० शक १६५८
७२	परमानन्द पाठक	१७४८ ई० शक १६७०
७३	लक्ष्मीपति	१७४८ ई० शक १६७०
७४	बबुआ ज्योतिषी	१७५६ ई० शक १६७८
७५	मथुरानाथ शुक्ल	१७५८ ई० शक १६८०
७६	परमसुखोपाध्याय	१७६८ ई० शक १६९०
७७	बालकृष्ण ज्योतिषी	१७७० ई० शक १६९२
७८	मणिराम	१७७४ ई० शक १६९६

७९	कृष्णदेव	१७७५ ई० शक १६९७
८०	शिवदैवज्ञ	१७७८ ई० शक १७००
८१	भुला	१७८१ ई० शक १७०३
८२	गोविन्दाचारी	१७८४ ई० शक १७१६
८३	दुर्गाशंकर पाठक	१७८७ ई० शक १७०९
८४	जयराम ज्योतिषी	१७९५ ई० शक १७१७
८५	सेवाराम शर्मा	१७९५ ई० शक १७१७

आधुनिक काल

आधुनिक काल में ज्योतिषशास्त्र के अनेक विशिष्ट आचार्य हुए। अध्ययन-अध्यापन की दृष्टि से परम्परा अत्यन्त सुदृढ़ रही। आचार्यों ने अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे और पूर्ववर्ती ग्रन्थों की टीकाएँ लिखी। इन ग्रन्थों और टीकाओं से प्रतीत होता है कि वे इस शास्त्र के प्रौढ़ विद्वान रहे होंगे। कुछ मूलग्रन्थ आज भी विश्वप्रसिद्ध हैं। अध्ययन-अध्यापन की परम्परा में जिन आचार्यों ने योगदान किया उनका नामोल्लेख सम्भव नहीं हो पा रहा है क्योंकि लिखित या मौखिक साक्ष्य नहीं मिल पा रहा है। फिर भी परम्परा से जितने विद्वानों का पता चल पाया है प्रयास किया है उनके नामों का स्मरण करने का। जिनकी टीका, टिप्पणी या मूलग्रन्थ आदि उपलब्ध हैं या इतिहास में प्रामाणिक उद्धरण प्राप्त है या प्रसंगवश नाम आए है और लेखक या सम्पादक की दृष्टि वहाँ तक पहुँच पायी है, उनका नामोल्लेख करने का यहाँ प्रयास किया गया है-

1. लज्जाशंकर शर्मा १८०४ ई. शक १७२६
2. नन्दलाल शर्मा १८०४ ई. शक १७२६
3. राघव १८१० ई. शक १७३२
4. शिव १८१५ ई. शक १७३७
5. देवकृष्ण शर्मा १८१८ ई. शक १७४०
6. नृसिंहदेव शास्त्री या बापूदेव शास्त्री १८२१ ई. शक १७४०
7. नीलाम्बर शर्मा १८२३ ई. शक १७४५
8. केरो लक्ष्मण १८२४ ई. शक १७४६

-
9. विशाजी रघुनाथ लेले १८२७ ई. शक १७४९
 10. रघुनाथ आचार्य १८२८ ई. शक १७५०
 11. गोविन्द देव शास्त्री १८३४ ई. शक १७५६
 12. कृष्णशास्त्री गोडबोले १८५३ ई. शक १७७५
 13. वेंकटेश बापूजी केतकर १८५३ ई. शक १७७५
 14. बालगंगाधर तिलक १८५६ ई. शक १७७८
 15. विनायक पाण्डुरंग खाना पुरकर १८५८ ई. शक १७८०
 16. सुधाकर द्विवेदी १८६० ई. शक १७८२
 17. दिनकर १८८१ ई. शक १८०३
 18. यज्ञेश्वर (बाबा जोशी राडे) १७७८ ई. शक १७०० के आसपास
 19. सामन्त चन्द्रशेखर १८६६ ई.
 20. नीलकण्ठ
 21. आचार्य पद्माकर द्विवेदी
 22. आचार्य बलदेव पाठक
 23. आचार्य अनुप मिश्र
 24. आचार्य डी. अर्किसोमयाजि
 25. आचार्य गंगाधर मिश्र
 26. आचार्य चन्द्रशेखर झा
 27. आचार्य गेंदालाल चौधरी
 28. आचार्य सीताराम झा
 29. आचार्य बलदेव मिश्र
 30. आचार्य मुरलीधर मिश्र
 31. आचार्य अच्युतानन्द झा
 32. आचार्य नीलाम्बर झा

वर्तमान काल

वर्तमान काल में ज्योतिषशास्त्र का अध्ययन-अध्यापन एवं शोध देश के विभिन्न संस्कृत विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों में संचालित हैं। जिसमें काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,

संस्कृत की सबसे बड़ी संस्था राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थान (मानित विश्वविद्यालय), श्री लालबहादुरशास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ (तिरुपति), उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय, कविकुलगुरु कालिदास संस्कृत विश्वविद्यालय, कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय, जगद्गुरु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय आदि प्रमुख हैं। सम्प्रति उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय भारतवर्ष की एकमात्र ऐसी शिक्षण संस्था है जिसके द्वारा दूरस्थ माध्यम से ज्योतिष विषय की समस्त पाठ्यक्रम संचालित की जा रही है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सामान्य विश्वविद्यालयों में भी विगत 2- 3 वर्षों से इस शास्त्र का अध्ययन-अध्यापन कार्य चलाया जा रहा है। इस समय ज्योतिष शास्त्र के तीनों स्कन्धों में अच्छे विद्वान् हुए हैं। सिद्धान्त और संहिता स्कन्ध में प्रायोगिक रूप से कम काम हो रहे है। अध्ययन – अध्यापन या लेखन में जिनका योगदान रहा है और इस कार्य में लगे हुए लोगों की वहाँ तक पहुँच पायी है। उनमें प्रमुख हैं –

1. आचार्य अवध बिहारी त्रिपाठी 2. आचार्य संकटा प्रसाद उपाध्याय 3. आचार्य कपिलेश्वर चौधरी 4. आचार्य देवचन्द्र झा 5. आचार्य केदार दत्त जोशी 6. आचार्य राजमोहन उपाध्याय 7. आचार्य सुवंश झा 8. आचार्य गणेश दत्त पाठक 9. आचार्य गणपति देव शास्त्री 10. आचार्य विन्ध्येश्वरी प्रसाद पाण्डेय 11. आचार्य मुनीलाल झा 12. आचार्य गणेश ज्योतिषी 13. आचार्य रामयत्न ओझा 14. आचार्य अयोध्या नाथ शर्मा 15. आचार्य रामव्यास पाण्डेय 16. आचार्य मीठालाल ओझा 17. आचार्य मुरारि लाल शर्मा 18. आचार्य पिडपति सुब्रह्मण्यम शास्त्री 19. आचार्य पिडपति कृष्णमूर्ति शास्त्री 20. आचार्य हनुमान शास्त्री 21. आचार्य मधुरकृष्णमूर्ति शास्त्री 22. आचार्य श्रीचन्द्र पाण्डेय 23. आचार्य श्रीब्रजकिशोर झा 24. आचार्य कल्याणदत्त शर्मा 25. आचार्य कृष्णचन्द्र द्विवेदी 26. आचार्य रामचन्द्र पाण्डेय 27. आचार्य रामचन्द्र झा 28. आचार्य शुकदेव चतुर्वेदी 29. आचार्य शिवाकान्त झा 30. आचार्य उमाशंकर शुक्ल 31. आचार्य ओंकारनाथ चतुर्वेदी 32. आचार्य हृषीकेश उपाध्याय 33. आचार्य हीरालाल मिश्र 34. आचार्य रामपाल शर्मा 35. आचार्य नागेश उपाध्याय 36. आचार्य रामभरोसे मिश्र 37. आचार्य माताभीख शुक्ल 38. आचार्य दुर्गादत्त मिश्र 39. आचार्य राममूर्ति शुक्ल और 40. आचार्य के.बी.शर्मा 41. आचार्य सच्चिदानन्द मिश्र

इनके अतिरिक्त भी ज्योतिष शास्त्र के अनेकों विद्वान शास्त्र की रक्षा में अपना जीवन निरन्तर समर्पित किये हैं, और कर रहे हैं। सभी का नाम यहाँ उल्लिखित करना असंभव है। अतः प्रमुखता और स्व जानकारी के अनुसार ही उक्त विद्वानों के नाम यहाँ दिए गये हैं।

अभ्यास प्रश्न – 2

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये –

1. आर्यभट्ट का काल है।
2. बृहत्संहिता के रचयिता है।
3. ब्रह्मगुप्त का काल.....है।
4. सूर्यसिद्धान्त सूर्याश पुरुष और की संवाद रूपी ग्रन्थ है।

3.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि वेद किसी शास्त्र विशेष का ग्रन्थ नहीं है। अतः वहाँ किसी भी शास्त्र विशेष का सांगोपांग वर्णन एकत्र नहीं देखा जाता है। किन्तु प्रसंगवश सभी शास्त्रों का दिग्दर्शन अवश्य होता है। ज्योतिष तो वेदांग ही है। इसलिए इस का वर्णन स्वाभाविक है। इस प्रकार इस शास्त्र का प्रवर्तक तो वेद है। कालक्रम में इस शास्त्र के प्रवर्तन का श्रेय उन्हें मिला है और इतिहास में उल्लेख भी उनमें सर्वप्रमुख है। प्रवर्तक का अर्थ ऋषि एवं आचार्य वह होता है, जो परम्परा की रक्षा के लिए कार्य करता है। साथ ही उनमें नवीनपरक अनुसन्धान करने का कार्य भी वह करने के लिए तटस्थ रहता है।

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

प्रवर्तक – प्रवर्तक का अर्थ है – ऋषि। ऋषि द्रष्टा होता है, जो अपने तपोबल से भावी घटनाओं को सरल रूप से देख लेता है।

आचार्य – आचार्य परम्परा का पोषक होता है। वह प्रचलित परम्परा की रक्षा अपने ज्ञान के आधार पर करने के साथ-साथ उसको सरल बनाने का कार्य करता है।

सिद्धान्त – सिद्धः अन्ते यस्य सः सिद्धान्तः।

वेद – सर्वविद्या का मूल वेद है। चूँकि ऋचायें ऋषि हृदय में अवतरित होती हैं, इसीलिए वेद को अपौरुषेय भी कहा है।

वेदांग – वेद के अंग को वेदांग कहा जाता है। इन्हीं को शास्त्र भी कहा जाता है।

स्कन्ध – विभाग।

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – 1 की उत्तरमाला

1. ख 2. ग 3. ख 4. क 5. क

अभ्यास प्रश्न – 2 की उत्तरमाला

1. ४७६ ई. 2. वराहमिहिर 3. ५९८ ई० 4. दानवराज मय

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- (क) भारतीय ज्योतिष – श्री शंकरबालकृष्ण दीक्षित
(ख) कश्यप संहिता
(ग) भारतीय ज्योतिष – नेमिचन्द्र शास्त्री।
(घ) नारद संहिता
(ङ.) भारतीय फलित ज्योतिष – राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली।

3.9 सहायक पाठ्यसामग्री

- ज्योतिष शास्त्र का इतिहास – लोकमणि दहाल
भारतीय ज्योतिष – शंकरबालकृष्णदीक्षित / नेमिचन्द्र शास्त्री
सुलभ ज्योतिष ज्ञान – पं. वासुदेव सदाशिव खानखोजे

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ज्योतिष शास्त्र के प्रवर्तकों का उल्लेख कीजिये।
2. प्रवर्तक एवं आचार्य में अन्तर स्पष्ट कीजिये।
3. ज्योतिष के प्रमुख आचार्यों का उल्लेख कीजिये।
4. शास्त्रों में प्रवर्तक एवं आचार्यों की भूमिका पर निबन्ध लिखिये।

इकाई – 4 कालक्रम के आधार पर ज्योतिष शास्त्र का ऐतिहासिकता

इकाई की संरचना

- 4.1 प्रस्तावना
- 4.2 उद्देश्य
- 4.3 ज्योतिषशास्त्र का ऐतिहासिक विवेचन
 - 4.3.1 प्राग्वैदिक काल
 - 4.3.2 वैदिक काल
 - 4.3.3 वेदांग काल
 - 4.3.4 सिद्धान्त काल
 - 4.3.5 आधुनिक काल
- 4.4 सारांश
- 4.5 पारिभाषिक शब्द
- 4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 4.7 सहायक पाठ्यसामग्री
- 4.8 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई BAJY(N)-222 के प्रथम खण्ड की चौथी इकाई से सम्बन्धित है। इसके पूर्व की इकाई में आपने ज्योतिष शास्त्र के प्रवर्तकों एवं आचार्यों का अध्ययन कर लिया है। अब आप ज्योतिषशास्त्र के ऐतिहासिक पक्ष का अध्ययन करने जा रहे हैं।

ज्योतिष शास्त्र की उत्पत्ति कहाँ से हुई? कब हुई? कालक्रम के आधार पर हम ज्योतिषशास्त्र को कैसे समझ सकते हैं? इन सभी प्रश्नों से जुड़े समाधानों का हम प्रस्तुत इकाई में अध्ययन करने जा रहे हैं।

आइए इस इकाई में कालक्रम के आधार पर ज्योतिषशास्त्र के ऐतिहासिक विवेचन का अध्ययन करते हैं।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- ज्योतिषशास्त्र के आरम्भिक तथ्यों को समझ लेंगे।
- काल क्रम के आधार पर ज्योतिष शास्त्र के ऐतिहासिक पक्षों को जान लेंगे।
- प्राग्वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल पर्यन्त ज्योतिष की स्थितियों को समझने में समर्थ हो सकेंगे।
- ऐतिहासिक विवेचना के आधार पर ज्योतिषशास्त्र के विभिन्न पहलुओं का बोध कर लेंगे।

4.3 ज्योतिषशास्त्र का ऐतिहासिक परिचय

किसी भी शास्त्र या विषय का सम्यक् अध्ययन करने के लिए उसका इतिहास जानना आवश्यक होता है; क्योंकि उस शास्त्र के इतिहास द्वारा तद्विषयक ज्ञान समझ में आ जाता है। ज्योतिषशास्त्र सृष्टि और प्रकृति के रहस्य को व्यक्त करने वाला है। मानव प्रकृति की पाठशाला में सर्वदा से इस शास्त्र का अध्ययन करता चला आ रहा है। गुरुपरम्परा से इस शास्त्र की अनवरतता लोक में प्रसिद्ध है, अतः इस शास्त्र के उद्भव स्थान और काल का निश्चित रूप से पता लगाना कठिन है। चाहे अन्य ज्ञानों की निर्झरिणी के आदि स्रोत का पता लगाना सम्भव हो, पर प्रकृति के अनन्यतम अंग इस शास्त्र का ओर-छोर ढूँढ़ना मानव-शक्ति से परे की बात है। अथवा दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है जिस दिन से मानव ने होश संभाला, उसी दिन से उसने ज्योतिष के आवश्यक तत्वों का अध्ययन करना शुरू कर दिया। भले ही वह इन तत्वों को अभिव्यक्त करने की योग्यता के

अभाव में दूसरों को न बता सका हो, पर उसका जीवन निर्वाह इन तत्वों के बिना हो नहीं सकता था; फलतः मानव- जीवन के विकास के साथ- साथ ज्योतिष का भी विकास हुआ।

काल वर्गीकरण की दृष्टि से इस शास्त्र के इतिहास को निम्न युगों में विभक्त किया जा सकता है : -

प्रागवैदिक काल - सृष्ट्यारम्भ काल से वैदिक काल के पूर्व तक का समय

ई.पू. १०००० वर्ष के पहले का समय (आधुनिक मतानुसारेण)

वैदिक काल – ई.पू. १०००१ से ५०० तक (ऋक्, याजुष, अथर्व ज्योतिष का काल)

वेदांग काल – महात्मा लगध का काल

आदिकाल – ई० पू० ५०१ ई. से ५०० ई. तक

सिद्धान्त काल (पूर्वमध्यकाल) – ५०१ ई० से १००० तक

उत्तरमध्यकाल – १००१ ई० से १६०० ई० तक

आधुनिक काल – १६०१ ई. से वर्तमान समय तक

4.3.1 प्रागवैदिक काल –

ज्योतिषशास्त्र ‘वेदांग’ होने के कारण वेद की भाँति यह भी अपौरुषेयता को प्राप्त है। ऋषि हृदय में अवतरित होने के कारण इस शास्त्र की भी अपनी एक अलग महिमा है। सहस्रों वर्षों के तपोबल के आधार पर ऋषि अपनी दिव्य चक्षुओं से काल के विभिन्न स्वरूपों को देख व जान लेता था, तभी तो उसे ‘त्रिकालज्ञ’ की संज्ञा दी गयी। वह दैववशात् होने वाले शुभाशुभ फलों का विवेचन अपने ज्योतिष रूपी गूढ़ ज्ञान से सहज ही कर लेता था। इसीलिए उसे ‘दैवज्ञ’ भी कहा गया।

वैदिक काल के पूर्व अर्थात् प्रागवैदिक काल में इस शास्त्र की स्थिति अपनी दिव्यता के साथ लोक में व्याप्त थी। मानव को वह कितनी मात्रा में सर्वसुलभता के साथ प्राप्त थी? इसका लिखित विवरण ज्योतिषशास्त्र के किसी ग्रन्थ में अप्राप्त है। शायद इसीलिए कुछेक आचार्यों ने अन्धकार काल की बात की है। किन्तु मेरा मानना है कि ज्योतिष अपने ज्ञान से अन्धकार को प्रकाश में बदल देता है, इसीलिए ज्योतिषशास्त्र का कोई भी कालखण्ड कथमपि अन्धकारकाल के रूप में नहीं हो सकता। हाँ उसे प्रागवैदिक काल के रूप में हम अवश्य जान सकते हैं।

यह पूर्व में कहा जा चुका है कि ज्योतिषशास्त्र के उद्भव काल का ज्ञान मानव शक्तिगम्य नहीं है; क्योंकि सृष्टि के उत्पत्ति काल से जब इसका उद्भव माना जाता है तो उस काल का वर्णन मानवीय ज्ञान से कथमपि सम्भव नहीं है। अतः यह मानव सृष्टि के समान अनादि है। ज्योतिष का सिद्धान्त है कि एक कल्पकाल में ४३२००००००० वर्ष होते हैं, सृष्टि के प्रारम्भ होते ही सभी ग्रह अपनी-अपनी कक्षा में नियमित रूप से भ्रमण करने लगते हैं। सृष्टि में लिपि का प्रादुर्भाव कब हुआ

अथवा वर्णों की उत्पत्ति सर्वप्रथम कहाँ से हुई? इन सभी प्रश्नों के उत्तर मानवीय सीमा के बाहर है। यदि सर्वविद्यामूलक वेद की बात करें अथवा पुराण या उपनिषदों के आधार पर भगवान शिव को समस्त विद्याओं का मूल स्रोत कहा जाता है। दुर्गासप्तशती के 'कीलक' पाठ में जैसा कि हमें प्राप्त होता है – “विशुद्ध ज्ञान देहाय त्रिवेदी दिव्यचक्षुषे। श्रेयः प्राप्त निमित्ताय नमः सोमार्द्धधारिणे॥” जिनका शरीर ही विशुद्ध ज्ञान है ऐसे शिव की बात की गई है। अतः तभी सृष्टि के आदि काव्य रामायण में भी शिव द्वारा कथा कहने की बात की गई है। समस्त विद्याओं को सर्वप्रथम शिव ने ही शक्ति को प्रदान किया तत्पश्चात् ऋषियों को। पुनः ऋषि परम्परा से विद्याओं की लोक में व्याप्ति हुई। ज्योतिषशास्त्र की भी उत्पत्ति उसी क्रम में ब्रह्मादि द्वारा नारद तथा वसिष्ठादि ऋषियों की परम्परा से चली आ रही है। काश्यप संहिता के अनुसार भगवान सूर्य को ज्योतिषशास्त्र का अधिपति बतलाया गया है।

मानवीय धरातल पर मानव की स्वाभाविक प्रवृत्तियों का विश्लेषण करने पर अवगत होगा कि 'क्यों', और 'कैसे' ये दो जिज्ञासाएँ उसकी प्रधान हैं। वह प्रत्येक वस्तु के आदि कारण की खोज करता है और उसके सम्बन्ध में सभी अद्भुत बातों को जानने के लिए लालायित रहता है। जब तक उसकी यह ज्ञानपिपासा शान्त नहीं होती, उसे मनःशान्ति नहीं मिलती। फलतः आदि मानव के मस्तिष्क में भी यत्किंचित् विकास के अनन्तर ही समय, दिशा और स्थान जिनके बिना उसका काम चलना कठिन ही नहीं, बल्कि असम्भव था; के सम्बन्ध में क्यों और कैसे ये प्रश्न अवश्य उत्पन्न हुए होंगे तथा इन प्रश्नों के उत्तर पाने की भी चेष्टा की होगी। यह निश्चित है कि किसी भी प्रकार के ज्ञान का स्रोत समय, दिशा, और स्थान के बिना प्रवाहित नहीं हो सकता है। इसीलिए उक्त तीनों विषयों का ज्ञान ज्योतिष के द्वारा सम्पन्न होने पर ही अन्य विषयों का ज्ञान मानव को हुआ होगा।

भारतवर्ष की अपनी निजी विशेषता आध्यात्मिक ज्ञान की है और इसका सम्पादन योग-क्रिया द्वारा प्राचीनकाल से होता चला आ रहा है। इस सिद्धान्त के अनुसार 'महाकुण्डलिनी' नाम की शक्ति समस्त सृष्टि में परिव्याप्त रहती है और व्यक्ति में यही शक्ति कुण्डलिनी के रूप में व्यक्त होती है।

अनुभव भी यह बतलाता है कि मानव ने अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए सबसे प्रथम स्थान, दिक् और काल – इन तीन के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की होगी। क्योंकि किसी से भी पूछा जाये कि अमुक वस्तु कहाँ स्थित है? तो वह यही उत्तर देगा कि अमुक दिशा में है। अमुक घटना कब घटेगा? तो वह यही कहेगा कि अमुक समय में। अभिप्राय यह है कि अमुक स्थान से इतना पूर्व, अमुक से इतना दक्षिण, इतने बजकर इतने मिनट पर अमुक कार्य हुआ, इतना बदला देने पर उस

कार्य-विषयक स्वाभाविक जिज्ञासा शान्त हो जाती है। ज्योतिष द्वारा उक्त विषयों का ज्ञान प्राप्त करना ही साध्य माना गया है। इसलिए प्रागवैदिक काल में जब ज्योतिष के सिद्धान्त लिपिबद्ध किये जा रहे थे, इसकी बड़ी प्रशंसा की गयी है। स्थान एवं कालबोधक शास्त्र होने के कारण इसे जीवन का अभिन्न अंग बतलाया गया है।

नेमिचन्द्र शास्त्री द्वारा लिखित 'भारतीय ज्योतिष' में ज्योतिषीय काल वर्गीकरण के अन्तर्गत उन्होंने अन्धकार युग की बात कही है, जो मेरी दृष्टि (इकाई लेखक) में सर्वथा अनुपयुक्त है, मैं इसका खण्डन करता हूँ। ज्योतिष शास्त्र का कोई भी कालखण्ड अन्धकारमय नहीं रहा, यह किसी की कपोल कल्पना ही हो सकती है। जिस शास्त्र का उद्भव सृष्ट्योत्पत्ति के साथ हुआ है, उसके अस्तित्व का कोई भी कालखण्ड अन्धकारमय नहीं हो सकता। ज्योतिषशास्त्र ब्रह्माण्डोत्पत्ति के साथ सम्प्रत्यपि अविच्छिन्न रूप से गतिमान है।

4.3.2 वैदिक काल –

वैदिक सनातन परम्परा में विदित है कि यज्ञ, तप, दान आदि के द्वारा ईश्वर की उपासना वेद का परम लक्ष्य है। उपर्युक्त यज्ञादि कर्म काल पर आश्रित हैं और इस परम पवित्र कार्य के लिए काल का विधायक शास्त्र ज्योतिषशास्त्र है। अतः इसे 'वेदांग' की संज्ञा दी गई है। वेद किसी एक विषय पर केन्द्रित रचना नहीं है। वेद सर्वविद्या का मूल है। विविध विषय और अनेक अर्थ को द्योतित करने वाली मन्त्र राशि वेदों में समाहित है। केवल ज्योतिष, व्याकरण, छन्द, धर्म, दर्शन या किसी अन्य विषय का ग्रन्थ नहीं है - वेद। अतः वेदों में किसी भी विषय का तारतम्य बद्ध अध्ययन नहीं है। इसीलिए वेदों को उत्स, मूल या आदि तो कह सकते हैं, पर विषय नहीं। भारतीय ज्ञान परम्परा की पुष्टि वेद में निहित है। कोई भी विषय मान्य और भारतीय दृष्टि से संवलित तभी माना जायेगा जब उसकी जड़े वेदचतुष्टय में कहीं न कहीं समाहित हों। अतः ज्योतिष भी वेदों में बीजरूप में दिखलाई पड़ता है। इसी बीज विषय को 'वैदिक ज्योतिष' कहते हैं।

वैदिक काल में मानव ज्योतिष को भी धर्म मानता था, उस युग में व्यक्ति और समाज के समस्त कार्य एक ही नियम पर चलते थे, अतः धर्म, दर्शन और ज्योतिष – ये भेद साहित्य में प्रस्फुटित नहीं हुए थे तथा समस्त विषयों का साहित्य एक साथ ही रहता था।

कुछ आचार्यों का मत है कि उदयकाल के पूर्व आर्य लोग भारत में उत्तरी ध्रुव से आये थे और यहाँ बस जाने के पश्चात् उन्होंने वेद, वेदांग आदि साहित्य की रचना की। लेकिन विचारकरने पर अवगत होगा कि उस कालखण्ड में उत्तरी ध्रुव उस स्थान पर था, जिसे आज बिहार और उड़ीसा कहते हैं। वह भारत के बाहर नहीं था। अतः आर्य भारत के ही थे अथवा पूर्व समय में भारत के लोगों

को आर्य कहकर सम्बोधित किया जाता था। आर्यों ने उदयकाल में अपने वैदिक साहित्य को जन्म दिया। यद्यपि वेद, आरण्यक, ब्राह्मण, द्वादशांश, प्रकीर्णक और उपनिषद् आदि धार्मिक रचनाएँ मानी जाती हैं, पर इनमें ज्योतिष, आयुर्वेद, शिल्प आदि विद्याओं की चर्चाएँ पर्याप्त मात्रा में हैं। वैदिक काल के साहित्य में मास, ऋतु, अयन, वर्ष, युग, ग्रह, ग्रहण, ग्रहकक्षा, नक्षत्र, विषुव, नक्षत्र- लग्न, दिन-रात का मान और उसकी वृद्धि-हानि आदि विषयों पर विचार ज्योतिष की दृष्टि से किया जाने लगा था। वेदों में प्रतिपादित ज्योतिष चर्चा की अपेक्षा शतपथ ब्राह्मण, बृहदारण्यक, तैत्तिरीय ब्राह्मण, ऐतरेय ब्राह्मण आदि ग्रन्थों में विकसित रूप से उपलब्ध है। इन ग्रन्थों में ज्योतिष के सिद्धान्तों का व्यावहारिक और शास्त्रीय इन दोनों दृष्टिकोणों से प्रतिपादन किया है। ऋग्वेद के समय में दिन को केवल काम निकालने वाला समय के रूप में माना जाता था, पर ब्राह्मण और आरण्यकों के समय में उसका ज्योतिष की दृष्टि से विवेचन होने लग गया था। दिन की वृद्धि कैसे और कब होती है तथा वह कितना बड़ा होता है आदि बातों की शास्त्रीय मीमांसा होने लग गयी थी। वैदिक काल की ज्ञानराशि पर दृष्टिपात करने से यह ज्ञात होता है कि सूर्य और चन्द्रमा के अतिरिक्त भौमादि ५ ग्रह भी ज्योतिषविषयक साहित्य के विषय बन गये थे। इस युग में ज्योतिष के भेद-प्रभेद भी आविर्भूत नहीं हुए थे, केवल सामान्य ज्योतिष शब्द से इस शास्त्र के ग्रह-नक्षत्र के गणित और उनके फल गृहीत होते थे।

4.3.3 वेदांग ज्योतिष काल –

वेदांग ज्योतिष कहने से ज्योतिष के उस भाग का बोध होता है जो वैदिक ज्योतिष और मानव ज्योतिष से भिन्न है। वेदांग कहते ही, वेद के छः अंगों का नाम सामने आ जाता है। ये हैं – शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष। इन्हें ‘षडंग’ भी कहा जाता है। अंगी वेद है और अंग वेदांग है।

षड् वेदांगों में से चार वेदांग भाषा से सम्बन्धित हैं – व्याकरण, निरुक्त, शिक्षा और छन्द। इन चार वेदांगों से वेद का यथार्थ बोध होता है। कल्प के चार विभाग हैं। श्रौत, गृह्य, धर्म और शुल्ब। इनमें से केवल शुल्ब ही वैज्ञानिक शाखा का प्रतिनिधित्व करता है। षष्ठ अंग है -ज्योतिष। यह वेदांग पूर्णतः वैज्ञानिक, कालविधान कारक तथा वैदिक धारान्तर्गत भारतीय मनीषा की सर्वोच्च उपलब्धि है।

वेदांग ज्योतिष की रचना महात्मा लगध ने की थी। महात्मा लगध को यह श्रेय प्राप्त है कि उन्होंने प्रथम बार ज्योतिषशास्त्र को ‘अथ’ से ‘इति’ पर्यन्त तक वर्ण्य विषय बनाया।

अत्यन्त सरलता, सहजता और शुचिता के साथ उन्होंने स्वीकार किया कि इन मंत्रों को तपस्या या समाधि के समय हमने ईश्वरीय अवदान के रूप में नहीं पाया है, बल्कि ये समस्त विषय मेरी मनीषा की स्तरीय बौद्धिक उपलब्धियाँ हैं। ये 'स्वचिन्त्य-' हैं। अचिन्त्य और अव्यक्त का स्फूर्त अवतरण नहीं हैं। यदि आर्च ज्योतिष का सम्बन्ध 'दृष्टमंत्रवद्' होता तो उसके साथ विनियोग भी जुड़ा होता। स्पष्ट है कि यह महात्मा लगध की अपनी रचना है। ऋषिपद विश्व का श्रेष्ठतम पद है। ऋषित्व के आगे सब कुछ हेय है, क्योंकि यह अपरिमेय है। एक मंत्र का द्रष्टा ऋषि उतना ही पूज्य है जितना शताधिक मंत्रों का द्रष्टा है। ऋषि युग में लगध ने अपने को महात्मा कहा –

प्रणम्य शिरसा कालमभिवाद्य सरस्वतीम्।

कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मनः॥

इत्येतन्मासवर्षाणां मुहूर्त्तोदयपर्वणाम्।

दिनत्वयनमासानां व्याख्यानं लगधोऽब्रवीत्॥

काल को सिर झुका कर प्रणाम करके, सरस्वती का अभिवादन करके लगध महात्मा के कालज्ञान को कहने जा रहा हूँ।

इस प्रकार से मास, वर्ष, मुहूर्त्त, उदय, पर्वकाल, दिन, ऋतु, अयन एवं मासादि का व्याख्यान लगध ने किया। इन दोनों श्लोक में लगध का नाम आया है और ऊपर के श्लोक में तो महात्मा उपाधि के साथ आया है। इससे इस ग्रन्थ की ऐतिहासिकता को बल मिलता है कि यह महात्मा लगध की रचना है। इसकी भाषा और विषय से इस (आर्च ज्योतिष) की 'श्रुति मूलकता सिद्ध' होती है।

महात्मा लगध को लेकर दो प्रकार का अनुमान अंग्रेज इतिहासकारों ने खड़ा किया। साथ ही उनके अनुमान से लगध की वास्तविक ऐतिहासिक उपस्थिति को भ्रम या संदेह की दृष्टि से देखने का अवसर मिला। पहला अनुमान था – संस्कृत ग्रन्थों में अपने नाम को लिखने की परम्परा नहीं रही है। सम्भव है किसी अन्य लेखक ने 'लगध' नाम से आर्च ज्योतिष की रचना की हो। दूसरा अनुमान था – 'लगध' शब्द संस्कृत का नहीं है। इन दोनों अनुमानों को निरस्त करने का काम प्रायशः परवर्ती ज्योतिष इतिहासकारों ने किया है। यदि अपना नाम लिखने या ग्रन्थ में डालने की परम्परा नहीं होती तो मन्त्रों और सूक्तों के द्रष्टा ऋषियों का ज्ञान किसी को नहीं हो पाता। विनियोग में ऋषि का नाम अवश्य होता है। भारतीय परम्परा में अपना परिचय देने की परम्परा अपूर्व है। गोत्र, प्रवर, आचार्य के नामोल्लेख के साथ अपना परिचय दिया जाता है। कठिनाई तब आती है जब अंग्रेज इतिहासकार 'ननु न च' करके तथ्यों को झुठलाता है या संदेह के घेरे में डाल देता है। वेबर ने 'लगध' का नाम 'लाट' के रूप में प्रतिपादित कर उन्हें पाँचवीं शताब्दी का ठहराने का प्रयास किया है। ध्येय है वेबर

की मानसिकता वेदों और भारतीयों विद्याओं के प्रति अत्यन्त निम्नस्तरीय थी। कतिपय अंग्रेज इतिहासकारों ने लगध को 'लगड़' या 'लगढ़' माना है। 'होमगन्ध' और 'पुष्पगन्ध' की तरह 'लगध' नाम संस्कृत का है। 'र' अक्षर आगम में अग्निबीजक का वाचक है। इसी तरह 'ल' अक्षर पृथ्वी का वाचक है। फलतः जिसके शरीर से हवनाग्नि की सुगंध निकलती हो उसे रगध (र गंध) और जिसके शरीर से मृत्तिका की सौंधी सुगंध निकलती हो उसे लगध (ल गंध) कहते हैं।

वेदांगज्योतिष में प्रतिपाद्य मुख्य विषय –

लगधप्रोक्त वेदांगज्योतिष ग्रन्थ में पाँच वर्षों का युग, माघशुक्लादि वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि, पर्व, विषुवत्तिथि, नक्षत्र, अधिमास ये विषय प्रतिपादित हैं। श्रौतस्मार्तधर्मकृत्यों में इन की ही अपेक्षा होने से इस वेदांग ज्योतिष ग्रन्थ में इन विषयों का मुख्यतया प्रतिपादन किया गया है।

वैदिक ज्योतिष का जो स्वरूप हमें संहिता ग्रन्थों में उपलब्ध है, उसमें नक्षत्रों, तिथियों, चान्द्रमासों, दोनों विषुवत् और दोनों अयनों का वर्णन उपलब्ध है और नक्षत्र गणना कृत्तिका नक्षत्र से की गई है जो उस समय वसन्त सम्पात का नक्षत्र था। उपरोक्त विषयों का गणितीय स्वरूप हमें वेदांग ज्योतिष में उपलब्ध होता है जो गणना के द्वारा तिथियों, नक्षत्रों के मान को प्रस्तुत करता है। वेदांग ज्योतिष की गणना के अनुसार ५ वर्षों का एक युग माना गया है जो चान्द्रयुगचक्र कहा जा सकता है। एक सौर वर्ष ३६६ दिनों का माना गया है, इसलिए ५ सौर वर्षों में $366 \times 5 = 1830$ सावन दिन होते हैं। एक युग में ६२ चान्द्रमास और ६० सौर मास होते हैं इस प्रकार ५ वर्ष में २ अधिमास होते हैं। इन २ अधिमासों में ३० तिथियाँ होती हैं। युग में ६७ नाक्षत्रमास होते हैं। इसमें चन्द्रमा $67 \times 27 = 1809$ नक्षत्रों को पार करता है। युग का आरम्भ उत्तरायण अथवा दक्षिणायनान्त से होता है, जब चन्द्रमा और सूर्य दोनों धनिष्ठा नक्षत्र पर होते हैं और माघमास का आरम्भ होता है। जैसे –

स्वराक्रमेते सोमार्कौ यदा साकं सवासवौ।

स्यात् तदादियुगं माघस्तपः शुक्लोऽयनंह्युदक्।।

अर्थात् जब चन्द्रमा और सूर्य एक साथ धनिष्ठा नक्षत्र पर आकाश में होते हैं तभी युग का आदि माघ और उत्तरायण का आरम्भ होता है, जो शुक्लपक्ष का आदि और तपमास होता है।

वेदांग ज्योतिष में स्पष्ट है कि तिथि नक्षत्रों के मान केवल चन्द्रमा, सूर्य के मध्यम गतियों की गणना के आधार पर बनाये गये गणितीय नियमों के अनुसार हैं। इससे स्पष्ट है कि नक्षत्रों और तिथियों के अंशात्मक विभाग उस समय तक नहीं किए गये थे। क्योंकि ५ वर्ष के सावन दिनों की संख्या और तिथियों की संख्या का अन्तर करके उसमें पक्ष संख्या से भाग देकर पाक्षिक तिथियाँ

प्राप्त की गई हैं, और इसी प्रकार चन्द्रमा के नक्षत्र भोग दिनों में नक्षत्र संख्या से भाग देकर नक्षत्रों का मान उपलब्ध किया हुआ प्रतीत होता है। इससे सिद्ध है कि नक्षत्रों के कोणीय मान का कोई निर्देश नहीं है।

अभ्यास प्रश्न – 1

1. निम्नलिखित में 'दैवज्ञ' किसकी संज्ञा है –
क. देवता को जानने वाला ख. ज्योतिष शास्त्र वेत्ता ग. कालज्ञ घ. सभी
2. एक कल्प काल में कितने वर्ष होते हैं ?
क. ४३२००० ख. ४३२०००० ग. ४३२००००० घ. ४३२०००००००
3. काश्यप संहिता के अनुसार ज्योतिष शास्त्र के अधिपति हैं।
क. शिव ख. विष्णु ग. चन्द्र घ. सूर्य
4. यज्ञादि कर्म आश्रित है –
क. अनुष्ठान पर ख. काल पर ग. कर्मकाण्ड पर घ. कोई नहीं
5. वेदांग ज्योतिष किसकी रचना है –
क. लगध ख. भास्कर ग. गणेश घ. राम

वैदिक ज्योतिष और वेदांग ज्योतिष का काल –

अब तक जितने स्वनामधन्य मनीषियों ने वेदों के काल का अनुमान लगाया है वह सारा का सारा अनुमान खण्डित होता नजर आ रहा है। उपग्रहों के द्वारा कृष्ण की द्वारकापुरी समुद्र में ढूँढ़ ली गयी है। सेतुबन्ध रामेश्वरम का अस्तित्व विज्ञान की नजरों में समा चुका है। अतः ५१०० वर्ष का काल तो महाभारत को ही समर्पित हो जायेगा। कोई ऐसा कारण भी नहीं है हम वेद काल या वेदांग काल को ईसा पूर्व १४०० वर्ष का मानें। अतः कालविभाजन की वे सारी मेड़ें स्वयं ध्वस्त होती चली जा रही हैं जिनसे सारी सृष्टि को ईसा पूर्व चार हजार वर्ष के अंदर धकेलने का प्रयास किया गया था। यूरोपियन एकेडमी का चश्मा अपनी प्रासंगिकता खो चुका है और स्वयं वहीं के वैज्ञानिकों ने बाइबिल की उस मान्यता को निरस्त कर दिया है जिसमें सृष्टि को मात्र छः हजार वर्ष प्राचीन कहा गया है। यानी ईसा पूर्व का चार हजार वर्ष का समय और ईसा पश्चात् का दो हजार वर्ष का समय। प्रस्तुत शीर्षक में वेदांग या वेद का कालनिर्धारण करना शक्य नहीं है। ध्येय केवल इतना है कि अंग्रेजों द्वारा निर्धारित काल गणना का पुरातात्विक प्रमाणभूत मानदण्ड ईसा पूर्व ३२० वर्ष अन्य प्रमाणों के उपलब्ध हो जाने के कारण ध्वस्त हो चुका है। अब कालगणना का मानदण्ड महाभारत है।

महाभारत को मिथक या काल्पनिक ग्रन्थ कह कर पल्ला झाड़ने वाले क्रूर भाषावैज्ञानिक ही हो सकते हैं। महाभारत में विद्यमान ज्योतिष और वेदांग ज्योतिष का भी अन्तर स्पष्ट है।

श्रुति परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। उसके जन्म का अनुमान लिपि परम्परा के माध्यम से नहीं किया जा सकता। अतः सर्वप्रथम काल गणना का मानदण्ड महाभारत पूर्व महाभारत पश्चात् निश्चित करना होगा। यदि काल गणना का मानदण्ड ए.डी. या बी.सी. होगा तो उससे बेहतर है कि हम संस्कृत और वैदिक वांगमय का इतिहास निर्धारित ही न करें। हमें कलियुगाब्द को ऐतिहासिक मानना ही होगा। इस दिशा में हमारे सनातन परम्परा के पास तत्कालीन राजाओं को सौ-सौ वर्षीय परम्परायें भी प्राप्त हैं। अश्वत्थामा को श्रीकृष्ण प्रदत्त शाप कि महाभारत समाप्ति के पश्चात् तीन हजार वर्षों तक तुम पृथ्वी पर विकल घूमते रहोगे यह सिद्ध करता है कि ईसामसीह से पूर्व का तीन हजार वर्ष का समय भारतीय मनीषियों की दृष्टि से फिसल नहीं सकता। हमारे पंचांगों में जो सृष्ट्यादि काल गणना है वह १ अरब, ९५ करोड़, ५८ लाख ८५ हजार, एक सौ वर्ष से आगे बढ़ रही है। इसी का अंतिम चार अंक कल्युब्द है जो ५१०७ या निरन्तर एकोत्तर वर्ष अधिक है। इसी पूरी गणना से आज भी ग्रहगणित होता है।

वेदांगज्योतिष के गणितीय अवयव –

५ वर्ष	= १ युग
५ वर्ष	= ५ सूर्य भगण
५ वर्ष	= ६० सौर मास
५ वर्ष	= ६२ चान्द्र मास
५ वर्ष (६२ चान्द्र मास + ५)	= ६७ चन्द्र भगण
५ वर्ष	= १८०० सौर दिन
५ वर्ष ६२ चान्द्रमास	= १८६० चान्द्र दिन
५ वर्ष	= १८३० सावन दिन
५ वर्ष (१८३० सावन दिन + ५)	= १८३७ भभ्रम (नक्षत्रोदय)
५ वर्ष में उत्पन्न क्षयदिन (१८६०-१८३०)	= (युगक्षयाह)
१ सौर वर्ष में कुल सावन दिन	= ३६६ दिन
१ सौर वर्ष में कुल सौर दिन	= ३६० दिन
१ सौर वर्ष में कुल चान्द्र दिन	= ३७२
१ सौर वर्ष में कुल नक्षत्रोदय	= ३६७

१ सौर वर्ष में कुल अयन संख्या = २

१ अयन में कुल सावन दिन संख्या = १८३

१ अयन में कुल सौर दिन संख्या = १८०

१ सौर युग (५ सौर वर्ष में) चन्द्रनक्षत्र संख्या ६७×२७ नक्षत्र = १८०९

(चन्द्रभुक्तनक्षत्र)

१ युग = १२० सौर पर्व = १२४ चान्द्रपर्व

१ युग में उत्पन्न ४ अधिपर्व

६० सौरपर्व में उत्पन्न २ अधिपर्व

१ नक्षत्र दिन = १ सावन दिन + ७ कला

१ युग में सूर्य नक्षत्र संख्या $५ \times २७ = १३५$

१ नक्षत्र भोग में सूर्य १३ दिन १३ घंटा २० मिनट लेता है।

आर्च ज्योतिष –

वेदांग ज्योतिष की प्रथम और महत्वपूर्ण रचना है – ‘आर्चज्योतिष’। आर्चज्योतिषम् विश्व की पहली गणितपुस्तक है। ऋग्वेद का ‘वेदांगज्योतिषम्’ है ‘आर्च ज्योतिषम्’। इसमें कुल ३६ मन्त्रात्मक श्लोक उपलब्ध हैं। इस अत्यन्त महत्वपूर्ण रचना के शिल्पी हैं महात्मा लगध। यहीं से प्रारम्भ होता है वेदाङ्ग काल। अनुक्रम पूर्वक विषय का प्रतिपादन यहीं से आरम्भ हुआ है। इस ग्रन्थ को परम्परा प्राप्त अनुश्रवण से आर्चज्योतिष कहा गया है तथा इस ग्रन्थ से यह बात स्पष्ट होती है कि वेद यज्ञ के प्रतिपादन हेतु प्रवृत्त हैं, यज्ञ कालाश्रित हैं, काल ज्योतिषशास्त्र से विधान को प्राप्त करता है ज्योतिष जानने वाला ही यज्ञ को समझता है –

वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः।

कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः।

तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं

यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञान्॥

आर्च ज्योतिष का यह उपसंहार श्लोक है। देखने में यह प्रयोजन परक श्लोक लगता है, पर रचनाकार ने इस मंत्र श्लोक से ग्रन्थ का समापन किया है। आर्चज्योतिष का उपसंहार ज्योतिष के ज्ञान और यज्ञ

के संधान से हुआ है – ‘यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञान्’ यह प्रयोजन परक यज्ञ ही सिद्ध करता है कि आर्चज्योतिष का प्रतिपाद्य पूर्णतः यज्ञ है।

प्राचीनकाल में किसी भी विषय का शास्त्रत्व सिद्ध होना उसके लिए प्रतिष्ठा का द्योतक होता था। इसीलिए ज्योतिष को कालविधान शास्त्र कहा गया ज्योतिर्विद्या नहीं। आज जैसे प्रतिष्ठा का द्योतक शब्द विज्ञान बना हुआ है उसी तरह से पहले ‘शास्त्र’ शब्द था। आज लोग अपने विषय की श्रेष्ठता को सिद्ध करने के लिए उसे विज्ञान से जोड़ने हैं जैसे – गृहविज्ञान, मनोविज्ञान, समाजविज्ञान या फिर पोलिटिकल साइंसेज आदि। खिचड़ी पकाइये पर विज्ञान कहकर, पोलिटिकल साइंस कह कर। ज्योतिषशास्त्र को ज्योतिर्विज्ञान नाम से प्रचलित करने के पीछे युगधर्म और युग मानसिकता झलकती है। ज्योतिषशास्त्र से श्रेष्ठ कोई दूसरा शब्द इस अनुशासन के लिए अनुकूल हो ही नहीं सकता। विज्ञान केवल प्रत्यक्ष या यन्त्र दृष्ट पदार्थों का ज्ञान प्रदान करता है। ज्योतिष शास्त्र भूत-वर्तमान-भविष्य तीनों को प्रस्फुटित करता है। इसीलिए वेदांग ज्योतिष का उपसंहार है ‘यज्ञ’। बात यज्ञ पर आकर समाप्त हुई है। इसी प्रवृत्ति वेदांगकाल को वेदकाल का तत्काल अनुवर्ती काल या आसन्न काल मानना पड़ा है। आर्च ज्योतिष का महत्वपूर्ण श्लोक है –

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।

तद्वेदाङ्गशास्त्राणां ज्योतिषं मूर्धनि स्थितम्॥

यही श्लोक याजुषज्योतिष के चौथे क्रम में वर्णित है और वहाँ ‘ज्योतिषं’ की जगह ‘गणितं’ पाठ भेद कर दिया गया है। वस्तुतः यहाँ ‘ज्योतिषं’ पाठ ही उपयुक्त था ‘गणितं’ नहीं। इसमें दो कारण हैं – आर्चज्योतिष पूर्ववर्ती है याजुष परवर्ती। अतः गणितं वैकल्पिक है। मूल पाठ ‘ज्योतिषं’ है। दूसरा कारण है – वेदांगता और शास्त्रत्व ज्योतिष को प्राप्त है केवल गणित को नहीं। तद् वद् वेदाङ्ग शास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम् कहते ही ज्योतिष से होरा और संहिता आदि अन्य शाखाओं का व्यावर्तन हो जाता है। ज्योतिष में समाविष्ट है गणित और ‘शास्त्रत्व’ ज्योतिष का है। फलतः पं० सुधाकर द्विवेदी जी का यह कहना कि ‘अत्र गणितं’ स्थाने ‘ज्योतिषम्’ इति पाठो न विशेषार्थप्रद इति’ उचित नहीं है। आचार्य श्री विस्मृत हो गये थे कि ज्योतिष के स्थान पर गणित आया है। पूर्ववर्ती है ‘आर्च’ परवर्ती है ‘याजुष’। आचार्य सुधाकर द्विवेदी ने याजुष ज्योतिष का भाष्य पहले लिखा और ‘आर्चज्योतिष’ का बाद में। इसीलिए इस विषय की गंभीरता पर उनका ध्यान नहीं गया।

4.3.4 सिद्धान्त काल

सिद्धान्त काल में ज्योतिषशास्त्र उन्नति की चरम सीमा पर था। आर्यभट्ट, वराहमिहिर, लल्ल, ब्रह्मगुप्त आदि जैसे अनेक धुरन्धर ज्योतिर्विद हुए, जिन्होंने इस विज्ञान को क्रमबद्ध किया

तथा अपनी अद्वितीय प्रतिभा द्वारा अनेक नवीन विषयों का समावेश किया। इस युग के प्रारम्भिक आचार्य वराहमिहिर या वराह हैं, जिन्होंने अपने पूर्वकालीन प्रचलित सिद्धान्तों का पंचसिद्धान्तिका में संग्रह किया। ग्रहगणित के क्षेत्र में सिद्धान्त, तन्त्र एवं करण इन भेदों का प्रचार भी होने लगा था। सिद्धान्तगणित में कल्पादि से, तन्त्र में युगादि से और करण शकाब्द पर से अहर्गण बनाकर ग्रहादि का आनयन किया जाता है। सिद्धान्त में जीवा और चाप के गणित द्वारा ग्रहों का फल लाकर आनीत मध्यमग्रह में संस्कार कर देते हैं तथा भौमादि ग्रहों का मन्द और शीघ्रफल लाकर मन्दस्पष्ट और स्पष्ट मान सिद्ध करते हैं।

ज्योतिषशास्त्र के साहित्य का अत्यधिक विकास हुआ है। मौलिक ग्रन्थों के अतिरिक्त आलोचनात्मक ज्योतिष के अनेक ग्रन्थ लिखे गये हैं। भास्कराचार्य ने अपने पूर्ववर्ती आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, लल्ल आदि के सिद्धान्तों की आलोचना की और आकाश निरीक्षण द्वारा ग्रहमान की स्थूलता ज्ञात कर उसे दूर करने के लिए बीजसंस्कार की व्यवस्था बतलायी। ईसवी सन् की १२ वीं सदी में गोल विषय के गणित का प्रचार बहुत हुआ था। उत्तरमध्यकाल की प्रमुख विशेषता ग्रहगणित के सभी अंगों के संशोधन की है। लम्बन, नति, आयनबलन, आक्षबलन, आयनदृक्कर्म, आक्षदृक्कर्म, भूभाबिम्ब साधन, ग्रहों के स्पष्टीकरण के विभिन्न गणित और तिथ्यादि के साधन में विभिन्न प्रकार के संस्कार किये गये, जिससे गणित द्वारा साधित ग्रहों का मिलान आकाश-निरीक्षण द्वारा प्राप्त ग्रहों से हो सके।

इस युग की एक अन्य विशेषता यन्त्र निर्माण की भी है। भास्कराचार्य और महेन्द्रसूरि ने अनेक यन्त्रों के निर्माण की विधि और यन्त्रों द्वारा ग्रहवेध की प्रणाली का निरूपण सुन्दर ढंग से किया है। यद्यपि इस काल के प्रारम्भ में ग्रहगणित का बहुत विकास हुआ, अनेक करण ग्रन्थ तथा सारणियाँ लिखी गयीं, पर ई० सन् की १५ वीं शती से ही ग्रहवेध की परिपाटी का हास होने लग गया था। यों तो प्राचीन ग्रन्थों को स्पष्ट करने और उनके रहस्यों को समझाने के लिए इस युग में अनेक टीकाएँ और भाष्य लिखे गए, पर आकाश-निरीक्षण की प्रथा उठ जाने से मौलिक साहित्य का निर्माण न हो सका। ग्रहलाघव, करणकुतूहल और मकरन्द जैसे सुन्दर करण ग्रन्थों का निर्मित होना भी इस युग के लिए कम गौरव की बात नहीं थी।

फलित ज्योतिष में जातक, मुहूर्त, सामुद्रिक, रमल और प्रश्न इन अंगों के साहित्य का निर्माण भी इस काल में कम नहीं हुआ है। मुस्लिम संस्कृति के अति निकट सम्पर्क के कारण रमल और ताजिक इन अंगों का तो नया जन्म माना जाता है। ताजिक शब्द का अर्थ ही अरब देश से प्राप्त शास्त्र है। इस युग में इस विषय पर लगभग दो दर्जन ग्रन्थ लिखे गये। इस शास्त्र में किसी व्यक्ति के नवीन वर्ष और

मास में प्रवेश करने की ग्रहस्थिति पर से उसके समस्त वर्ष और मास का फल बताया जाता है। बलभद्रकृत ताजिक ग्रन्थ में कहा गया है :-

यवनाचार्येण पारसीकभाषायां प्रणीतं ज्योतिःशास्त्रैकदेशरूपं
वार्षिकादिनानाविधफलादेशफलकशास्त्रं ताजिकफलवाच्यं तदनन्तरभूतैः समरसिंहादिभिः
ब्राह्मणैः तदेवशास्त्रं संस्कृतशब्दोपनिबद्धं ताजिकशब्दवाच्यम्। अतएव तैस्ता एव
इक्कबालादयो यावत्यः संज्ञा उपनिबद्धाः॥

अर्थात् यवनाचार्य ने फारसी भाषा में ज्योतिष शास्त्र के अंगभूत वर्ष, मास के फल को नाना प्रकार से व्यक्त करनेवाले ताजिक शास्त्र की रचना की थी। इसके पश्चात् समरसिंह आदि विद्वानों ने संस्कृत भाषा में इस शास्त्र की रचना की और इक्कवाल, इन्दुवार, इशराफ आदि यवनाचार्यों द्वारा प्रतिपादित योगों की संज्ञाएँ यथावत् रखीं।

इसी कालखण्ड में रमल शास्त्र, मुहूर्त शास्त्र एवं शकुनशास्त्र का भी उत्तरोत्तर विकास हुआ। आइए अब उनके बारे में भी चर्चा करते हैं।

रमल – रमल का प्रचार विदेशियों के संसर्ग से भारत में हुआ है। ईसवी सन् ११ वीं एवं १२ वीं शती की कुछ फारसी भाषा में रची गयी रमल की मौलिक पुस्तकें खुदाबख्शाँ लाइब्रेरी पटना में मौजूद हैं। इन पुस्तकों में कर्ताओं के नाम नहीं हैं। संस्कृत भाषा में रमल की पाँच-सात पुस्तकें प्रधान रूप से मिलती हैं। रमलनवरत्नम् नामक ग्रन्थ में पाशा बनाने की विधि का कथन करते हुए कहा गया है कि – ‘वेदतत्वोपरिकृतं रमलशास्त्रं च सूरिभिः। तेषां भेदाः षोडशैव न्यूनाधिक्यं न जायते।’

अर्थात् अग्नि, वायु, जल और पृथ्वी इन चार तत्वों पर विद्वानों ने रमलशास्त्र बनाया है एवं इन चार तत्वों के सोलह भेद कहे हैं, अतः रमल के पाशे में १६ शकलें बतायी गयी हैं।

किंवदन्ती है कि बहलोद लोदी के साथ भी एक अच्छा रमलशास्त्र का वेत्ता रहता था, यह मूक प्रश्नों का उत्तर देने में सिद्धहस्त बताया गया है। रमलनवरत्न के मंगलाचरण में पूर्व के रमलशास्त्रियों को नमस्कार किया गया है: -

नत्वा श्रीरमलाचार्यान् परमाद्यसुखाभिधैः। उद्धृतं रमलाम्भोधेर्नवरत्नं सुशोभनम्॥

अर्थात् प्राचीन रमलाचार्यों को नमस्कार करके परमसुख नामक ग्रन्थकर्ता ने रमलशास्त्ररूपी समुद्र में से सुन्दर नवरत्न को निकाला है। इस ग्रन्थ का रचनाकाल १७ वीं शती है। अतः यह स्वयं सिद्ध है कि उत्तरमध्यकाल में रमलशास्त्र के अनेक ग्रन्थों का निर्माण हुआ है।

मुहूर्त – यदि देखा जाय तो उदयकाल में ही मुहूर्त सम्बन्धी साहित्य का निर्माण होने लग गया था तथा आदिकाल और पूर्वमध्यकाल में संहिताशास्त्र के अन्तर्गत ही इस विषय की रचनाएँ हुई थीं,

पर उत्तरमध्यकाल में इस अंग पर स्वतन्त्र रचनाएँ दर्जनों की संख्या में हुई हैं। शक संवत् १४२० में नन्दिग्रामवासी केशवाचार्य कृत मुहूर्ततत्त्व, शक संवत् १४१३ में नारायण कृत मुहूर्त मार्तण्ड, शक संवत् १५२२ में रामभट्ट कृत मुहूर्त चिन्तामणि, शक संवत् १५४९ में विठ्ठल दीक्षित कृत मुहूर्तकल्पद्रुम आदि मुहूर्त सम्बन्धी रचनाएँ हुई हैं। इस युग में मानव के भी आवश्यक कार्यों के लिए शुभाशुभ समय का विचार किया गया है।

शकुनशास्त्र –

इसका विकास भी स्वतन्त्र रूप से इस युग में अधिक हुआ है। वि०सं० १२३२ में अह्मिपट्टण के नरपति नामक कवि ने नरपतिचर्या नामक एक शुभाशुभ फल का बोध कराने वाला अपूर्व ग्रन्थ की रचना की थी। इस ग्रन्थ में प्रधान रूप से स्वरविज्ञान द्वारा शुभाशुभ फल का निरूपण किया गया है। वसन्तराज नामक कवि ने अपने नाम पर वसन्तराज शकुन नाम का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ रचा है। इस ग्रन्थ में प्रत्येक कार्य के पूर्ण होने वाले शुभाशुभ शकुनों का प्रतिपादन आकर्षक ढंग से किया गया है। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त मिथिला के महाराज लक्ष्मणसेना के पुत्र बल्लालसेन ने श.सं. १०९२ में अब्दुतसागर नाम का एक संग्रह ग्रन्थ रचा है, जिसमें अपने समय के पूर्ववर्ती ज्योतिर्विदों की संहिता सम्बन्धी रचनाओं का संग्रह किया है। कई जैन मुनियों ने शकुन के उपर बृहद् परिमाण में रचनाएँ लिखी हैं। यद्यपि शकुनशास्त्र के मूलतत्त्व आदिकाल के ही थे, पर इस युग में उन्हीं तत्वों की विस्तृत विवेचनाएँ लिखी गयी है।

इस काल में भारतीय ज्योतिष ने अनेक उत्थानों और पतनों को देखा है। विदेशियों के सम्पर्क से होनेवाले संशोधनों को अपने में पचाया है और प्राचीन भारतीय ज्योतिष की गणित-विषयक स्थूलताओं को दूर कर सूक्ष्मता का प्रचार किया है।

यदि संक्षेप में उत्तरमध्यकाल के ज्योतिष साहित्य पर दृष्टिपात किया जाये तो यही कहा जा सकता है कि इस काल में गणित ज्योतिष की अपेक्षा फलित ज्योतिष का साहित्य अधिक फला-फूला है। गणित ज्योतिष में भास्कर के समान अन्य दूसरा विद्वान नहीं हुआ, जिससे विपुल परिमाण में इस विषय की सुन्दर रचनाएँ नहीं हो सकी। इस काल में भास्कराचार्य, दुर्गदेव, उदयप्रभदेव, मल्लिषेण, राजादित्य, बल्लालसेन, पद्मप्रभ सूरि, नरचन्द्र उपाध्याय, अट्टकवि या अर्हदास, महेन्द्रसूरि, मकरन्द, केशव, गणेश, ढुण्ढिराज, नीलकण्ठ, रामदैवज्ञ, मल्लारि, नारायण तथा रंगनाथ आदि जैसे अनेकों विद्वान हुए जिन्होंने अपनी अपूर्व कृतियों से भारतीय ज्योतिष शास्त्र को और पुष्पवित तथा पल्लवित करने में अपना योगदान दिया।

आधुनिक काल –

आधुनिक काल के आरम्भ में मुस्लिम संस्कृति के साथ-साथ पाश्चात्य सभ्यता का प्रचार भी भारत में हुआ। यद्यपि उत्तरमध्यकाल में ही ज्योतिषियों ने आकाशावलोकन त्यागकर पुस्तकों का पल्ला पकड़ लिया था और पुस्तकीय ज्ञान ही ज्योतिष माना जाने लगा था। सत्य तो यह है कि भास्कराचार्य के पश्चात् मुस्लिम राज्यों के कारण हिन्दू-धर्म, सम्पत्ति, साहित्य और ज्योतिष आदि विषयों की उन्नति पर पहाड़ गिरे जिससे उक्त विषयों का विकास रुक गया। कुछ धर्मान्ध साम्प्रदायिक पक्षपाती मुस्लिम बादशाहों ने सम्प्रदाय के मद में चूर होकर भारतीय ज्ञान-विज्ञान को नष्ट करने में लेशमात्र भी संकोच नहीं किया, तथापि उसकी धारा शाश्वत रूप में गतिमान है। विद्वानों को राजाश्रय न मिलने से ज्योतिष के प्रसार और विकास में कुछ कम बाधाएँ नहीं आयीं। नवीन संशोधन और परिवर्द्धन तो अलग की बात है, पुरातन ज्योतिष ज्ञान-भण्डार का संरक्षण भी कठिन हो गया। यद्यपि कुछ हिन्दू, मुस्लिम विद्वानों ने इस युग में फलित ग्रन्थों की रचनाएँ कीं, लेकिन आकाश-निरीक्षण की प्रथा उठ जाने से वास्तविक ज्योतिष तत्वों का विकास नहीं हो सका। शकुन, प्रश्न, मुहूर्त, जन्मपत्र एवं वर्षपत्र के साहित्य की अवश्य वृद्धि हुई है। कमलाकर भट्ट ने सूर्यसिद्धान्त का प्रचार करने के लिए ‘सिद्धान्ततत्त्वविवेक’ नामक गणित ज्योतिष का महत्वपूर्ण ग्रन्थ रचा है। इस अर्वाचीन काल के प्रारम्भ में प्राचीन ग्रन्थों पर टीका-टिप्पणी बहुत लिखे गये।

१७८० में आमेराधिपति महाराज जयसिंह का ध्यान ज्योतिष की ओर विशेष आकृष्ट हुआ और उन्होंने काशी, जयपुर एवं दिल्ली में वेधशालाएँ बनवायीं, जिनमें पत्थरों की ऊँची और विशाल दीवारों के रूप में बड़े-बड़े यन्त्र बनवाये। स्वयं महाराज जयसिंह इस विद्या के प्रेमी थे, इन्होंने यूरोप की प्रचलित तारासूचियों में कई त्रुटियाँ बताईं तथा भारतीय ज्योतिष के आधार पर नवीन सारणियाँ तैयार करायीं।

सामन्तचन्द्रशेखर ने अपने अद्वितीय बुद्धिकौशल द्वारा ग्रहवेध कर प्राचीन गणित-ज्योतिष के ग्रन्थों में संशोधन किया तथा अपने सिद्धान्तों द्वारा ग्रहों की गतियों के विभिन्न प्रकार बतलाये। इनके द्वारा रचित ‘सिद्धान्तदर्पण’ नामक ग्रन्थ दृग्गणितैक्य पर आधारित अन्तिम सिद्धान्त ग्रन्थ के रूप में जाना जाता है।

इधर अंग्रेजी सभ्यता के सम्पर्क से भारत में अंग्रेजी भाषा का प्रचार हो गया। इस भाषा के प्रचार के साथ-साथ अंग्रेजी आधुनिक भूगोल और गणितविषयक विभिन्न ग्रन्थों का पठन-पाठन की प्रथा भी प्रचलित हुई। सन् १८५७ के पश्चात् तो आधुनिक नवीन आविष्कृत विज्ञानों का प्रभाव भारत के उपर विशेष रूप से पड़ा है। फलतः अंग्रेजी भाषा के जानकार संस्कृत के विद्वानों ने इस

भाषा के नवीन गणित ग्रन्थों का अनुवाद संस्कृत में कर ज्योतिष की श्रीवृद्धि की है। बापूदेव शास्त्री और पं० सुधाकर द्विवेदी ने इस और विशेष प्रयत्न किया है। आप महानुभावों के प्रयास के फलस्वरूप ही रेखागणित, बीजगणित और त्रिकोणमिति के ग्रन्थों से आज का ज्योतिष धनी कहा जा सकेगा। केतक नामक विद्वान ने केतकीग्रहगणित की रचना अंग्रेजी ग्रह-गणित और भारतीय गणित सिद्धान्तों के समन्वय के आधार पर की है। दीर्घवृत्त, परिवलय, अतिपरवलय, इत्यादि के गणित का विकास इस नवीन सभ्यता के सम्पर्क की मुख्य देन माना जाता है।

पृथ्वी, चन्द्रमा, सूर्य, सौर-चक्र, बुध, शुक्र, मंगल, अवान्तर ग्रह, वृहस्पति, यूरेनस, नेपच्यून, नभस्तूप, आकाशगंगा और उल्का आदि का वैज्ञानिक विवेचन पश्चिमीय ज्योतिष के सम्पर्क से इधर चार दशकों के बीच में विशेष रूप से हुआ है। डॉ० गोरखप्रसाद ने आधुनिक वैज्ञानिक अन्वेषणों के आधार पर इस विषय की एक विशालकाय सौरपरिवार नाम की पुस्तक लिखी है जिससे सौर जगत् के सम्बन्ध में अनेक नवीन बातों का पता लगता है। श्री सम्पूर्णानन्द जी ने ज्योतिर्विनोद नामक पुस्तक में कापर्निकस, जिओर्ईनो, गैलेलियो और केप्लर आदि पाश्चात्य ज्योतिषियों के अनुसार ग्रह, उपग्रह और अवान्तर ग्रहों का स्वरूप बतलाया है। श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव ने सूर्य सिद्धान्त का आधुनिक सिद्धान्तों के आधार पर विज्ञानभाष्य लिखा है, जिससे संस्कृतज्ञ ज्योतिष के विद्वानों का बहुत उपकार हुआ है। अभिप्राय यह है कि आधुनिक युग में पाश्चात्य ज्योतिष के सम्पर्क से गणित ज्योतिष के सिद्धान्तों का वैज्ञानिक विवेचन प्रारम्भ हुआ है। यदि भारतीय ज्योतिषी आकाश-निरीक्षण को अपनाकर नवीन ज्योतिष के साथ तुलना करें तो पूर्वमध्यकाल से चली आयी ग्रहगणित की सारणियों की स्थूलता दूर हो जायेगी और भारतीय ज्योतिष की महत्ता समाज के समक्ष और सुदृढ़ रूप में स्थापित हो सकेगा।

अर्वाचीन काल में मुनीश्वर, दिवाकर, कमलाकर भट्ट, नित्यानन्द, महिमोदय, मेघविजयगणि, उभयकुशल, लब्धिचन्द्रमणि, बाघजी मुनि, यशस्वतसागर, जगन्नाथ सम्राट, बापूदेव शास्त्री, नीलाम्बर झा, सामन्तचन्द्रशेखर, सुधाकर द्विवेदी, पं० रामयत्न ओझा, पं० रामव्यास पाण्डेय, पं० अवधबिहारी त्रिपाठी, पं० मीठालाल ओझा, पं० सीताराम झा, आचार्य राजमोहन उपाध्याय, आचार्य रामचन्द्र पाण्डेय, पं० हीरालाल मिश्र, आचार्य कल्याण दत्त शर्मा, आचार्य शुकदेव चतुर्वेदी, आचार्य रामचन्द्र झा, शिवकान्त झा, आचार्य सच्चिदानन्द मिश्र आदि अनेकों ऐसे ज्योतिष शास्त्र के विद्वान हुए हैं और हैं, जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन इस शास्त्र की उपासना में लगा दी। इन्होंने अपनी-अपनी कृतियों से इस शास्त्र की रक्षा के साथ-साथ इनको पुष्पवित और पल्लवित करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया और दे रहे हैं। साथ ही इनके अध्येताओं को

नवीन उर्जा प्रदान करने के साथ-साथ ज्योतिष शास्त्र में नित्य नवीन शोध करने के लिए प्रेरित भी किया।

अभ्यास प्रश्न – 2

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये –

1. वेदांग ज्योतिष के अनुसार ५ वर्ष बराबर होता है।
2. एक सौर वर्ष दिनों का होता है।
3. 'र' अक्षर आगम में का वाचक है।
4. जिसके शरीर से मृत्तिका की सौंधी सुगंध निकलती हो उसे कहते हैं।
5. आचार्य नरपति द्वारा रचित ग्रन्थ का नाम है।

4.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि किसी भी शास्त्र या विषय का सम्यक् अध्ययन करने के लिए उसका इतिहास जानना आवश्यक होता है; क्योंकि उस शास्त्र के इतिहास द्वारा तद्विषयक रहस्य समझ में आ जाता है। ज्योतिषशास्त्र सृष्टि और प्रकृति के रहस्य को व्यक्त करने वाला है। मानव प्रकृति की पाठशाला में सर्वदा से इस शास्त्र का अध्ययन करता चला आ रहा है। गुरुपरम्परा से इस शास्त्र की अनवरतता लोक में प्रसिद्ध है, अतः इस शास्त्र के उद्भव स्थान और काल का निश्चित रूप से पता लगाना कठिन है। चाहे अन्य ज्ञानों की निर्झरिणी के आदि स्रोत का पता लगाना सम्भव हो, पर प्रकृति के अनन्यतम अंग इस शास्त्र का ओर-छोर ढूँढना मानव-शक्ति से परे की बात है। अथवा दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है जिस दिन से मानव ने होश संभाला, उसी दिन से उसने ज्योतिष के आवश्यक तत्वों का अध्ययन करना शुरू कर दिया। भले ही वह इन तत्वों को अभिव्यक्त करने की योग्यता के अभाव में दूसरों को न बता सका हो, पर उसका जीवन निर्वाह इन तत्वों के बिना हो नहीं सकता था; फलतः मानव-जीवन के विकास के साथ-साथ ज्योतिष का भी विकास हुआ।

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

इतिहास – व्यतीत हो चुकी अथवा घटित घटनाओं से सम्बन्धित कहानी। सामान्यतया जो व्यतीत हो चुकी हो, उसे इतिहास कहते हैं। किसी विषय की समग्रता का बोध कराने वाला तथ्य।

दैवज्ञ – दैववशात् होने वाली घटनाओं को जानने वाला अथवा काल को जानने वाला।

कल्प – १००० महायुग के बराबर

वेदांग ज्योतिष – महात्मा लगध की रचना।

लगध – जिसके शरीर से मृत्तिका की सोंधी सुगंध निकलती हो, उसे लगध कहते हैं।

मुहूर्त – मुह धातु में उरट प्रत्यय लगने से मुहूर्त शब्द की व्युत्पत्ति होती है।

वेदांग – वेद के अंग को वेदांग कहा जाता है। भारतीय ज्ञान – विज्ञान की परम्परा में षड् वेदांग कहे गये हैं। इन्हीं वेदांगों को शास्त्र भी कहा जाता है।

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – 1 की उत्तरमाला

1. घ 2. घ 3. घ 4. ख 5. क

अभ्यास प्रश्न – 2 की उत्तरमाला

1. १ युग 2. ३६६ 3. अग्निबीजक 4. लगध 5. नरपतिजयचर्या

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) भारतीय ज्योतिष – श्री शंकर बाल कृष्ण दीक्षित

(ख) वेदांग ज्योतिष – मूल लेखक – महात्मा लगध

(ग) भारतीय ज्योतिष – नेमिचन्द्र शास्त्री

(घ) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक – आचार्य भास्कराचार्य

(ङ.) ज्योतिष शास्त्र – डॉ० कामेश्वर उपाध्याय

4.9 सहायक पाठ्यसामग्री

ज्योतिष शास्त्र का इतिहास – लोकमणि दहाल

भारतीय ज्योतिष – शंकरबालकृष्णदीक्षित / नेमिचन्द्र शास्त्री

ज्योतिष शास्त्र – डॉ० कामेश्वर उपाध्याय

ज्योतिष सिद्धान्त मंजूषा – प्रोफेसर विनय कुमार पाण्डेय

सुलभ ज्योतिष ज्ञान – पं. वासुदेव सदाशिव खानखोजे

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ज्योतिष की परिभाषा लिखते हुये विस्तृत वर्णन कीजिये।
2. ज्योतिष शास्त्र की ऐतिहासिक विवेचना कीजिये।
3. ज्योतिष के सिद्धान्त काल पर टिप्पणी लिखिये।
4. इस इकाई के अध्ययन के आधार पर अपने शब्दों में ज्योतिषशास्त्र पर निबन्ध लिखिये।
5. ज्योतिष की उपयोगिता पर प्रकाश डालिये।

खण्ड – 2

ज्योतिष शास्त्र के प्रमुख अंग

इकाई – 1 सिद्धान्त स्कन्ध

इकाई की संरचना

- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 उद्देश्य
- 1.3 सिद्धान्त ज्योतिष की परिभाषा
- 1.4 सिद्धान्तज्योतिष के भेद – सिद्धान्त, तन्त्र एवं करण
- 1.5 काल क्रम से सिद्धान्त ज्योतिष का विकास
- 1.6 सिद्धान्त ज्योतिष के प्रमुख ग्रन्थ व आचार्य
 - 1.6.1 अन्य आचार्य व उनके ग्रन्थ
- 1.7 सिद्धान्त ज्योतिष के प्रमुख विषय

अभ्यास प्रश्न

- 1.8 सारांश
- 1.9 पारिभाषिक शब्दावली
- 1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 1.12 सहायक पाठ्य सामग्री
- 1.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना –

ज्योतिषशास्त्र सिद्धान्त, संहिता, होरा भेद से तीन स्कन्धों में विभक्त है। उनमें से सिद्धान्त ज्योतिष शास्त्र गणित शब्द से भी जाना जाता है। यह स्कन्ध भी ग्रहगणित, पाटीगणित व बीजगणित भेद से तीन भागों में विभक्त है। ब्रह्मा, वसिष्ठ, सोम, सूर्य आदि इसके प्रवर्तक आचार्य माने गये हैं। इसके उपरान्त आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, वराहमिहिर, भास्कराचार्य, कमलाकर आदि ने इसका विकास किया। आर्य सूर्यसिद्धान्त, आर्यभट्ट रचित आर्यभटीय, ब्रह्मगुप्त रचित ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, वराहमिहिर रचित पञ्चसिद्धान्तिका, भास्कराचार्य रचित सिद्धान्तशिरोमणि और कमलाकर रचित सिद्धान्ततत्त्वविवेक इस स्कन्ध मान्य ग्रन्थ हैं। परन्तु आचार्य लगध मुनि प्रणीत वेदाङ्गज्योतिष संज्ञक ग्रन्थ ही सिद्धान्त ज्योतिष का प्रथम ग्रन्थ माना जाता है। सिद्धान्त ज्योतिष के मुख्य ग्रन्थ, ग्रन्थकार व मुख्य विषयों का इस पाठ में आप अध्ययन करेंगे।

1.2 उद्देश्यम्

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप –

- सिद्धान्त ज्योतिष का परिचय प्राप्त करेंगे।
- सिद्धान्त ज्योतिष के विविध भेदों का परिचय प्राप्त करेंगे।
- सिद्धान्त ज्योतिष के विविध ग्रन्थ व ग्रन्थकारों के विषय में जानेंगे।
- सिद्धान्त ज्योतिष में वर्णित विविध विषयों का प्रतिपादन करने में कुशल हो सकेंगे।
- भारतीय गणित व खगोल शास्त्र के विकास की परम्परा का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

1.3 सिद्धान्त ज्योतिष की परिभाषा –

"अन्ते सिद्धः सिद्धान्तः" इस निर्वचन से ज्ञात होता है निरीक्षण परीक्षण आदि द्वारा ग्रहगति संबन्धि जो मत अन्त में उपस्थापित किया जाता है वही 'सिद्धान्त' कहा जाता है। उदाहरणार्थ जैसे अहर्गण, उदयान्तर, देशान्तर, चर, मन्दफल, शीघ्रफल आदि संस्कारों द्वारा ग्रह स्पष्ट होते हैं। ग्रह गणित स्पष्ट होने पर वेधशाला में जाकर दृक्सिद्ध करने हेतु यन्त्रों द्वारा वेधकार्य किया जाता है। यदि गणना द्वारा साधित ग्रह यन्त्रों द्वारा वेध करने पर भी उसी स्थान पर दिखाई दे तो ही वे ज्योतिषशास्त्र में मुहूर्त साधन, कुण्डली निर्माण व फल कथन हेतु प्रयुक्त होते हैं। अतः कहा गया – "यदन्ते सिद्धः

सिद्धान्तः”।

भास्कराचार्य के मत से जिस शास्त्र में त्रुटि से प्रारम्भ कर प्रलय तक काल की गणना, सौर चान्द्र सावन नाक्षत्र आदि नवविध काल के प्रभेद, ग्रहचार के नियम, व्यक्त व अव्यक्त गणित का विवेचन, दिग्देशकाल का ज्ञान, भूगोल, खगोल और ग्रहों की स्थिति, वेधयन्त्रों का साङ्गोपाङ्ग विवेचन होता है वह सिद्धान्त है। जैसा कहा है –

त्रुट्यादिप्रलयान्तकालकलना मानप्रभेदः क्रमा-
च्चारश्च द्युसदां द्विधा च गणितं प्रश्नास्तथा सोत्तराः।
भूधिण्यग्रहसंस्थितेश्च कथनं यन्त्रादियत्रोच्यते।
सिद्धान्त स उदाहृतोऽत्र गणितस्कन्धस्तृतीयोऽपरः॥

“गण्यते संख्यायते येन तद्गणितम्” अर्थात् जिसके द्वारा गणना की जाती है और संख्याओं का बोध होता है वह गणित है। उसके भी चार भेद हैं – १. व्यक्त २. अव्यक्त ३. ग्रह एवं ४. गोल। जहां व्यक्त संख्याओं के सङ्कलन व्यवकलन आदि गणित का वर्णन होता है व्यक्त गणित कहलाती है। जिस गणित में अव्यक्तों (यावत् तावत् कालक पीलक आदि) की सापेक्ष बुद्धि से गणित होती है उसे अव्यक्त गणित कहा गया। ग्रहों की गति स्थिति संबंधित गणित को ग्रहगणित कहा गया। गोल से वेध आदि द्वारा गणना की विधि गोलगणित के अन्तर्गत माना गया। इन्हीं चारों विधाओं का निरूपक सिद्धान्त है। जैसा कि कहा गया –
‘व्यक्ताव्यक्तभगोलवासनामयः सिद्धान्तः’। श्रीपति के कथन के अनुसार भी –

शतानन्दध्वस्ति प्रभृतित्रुटिपर्यन्तसमयप्रमाणं
भूधिण्यग्रहसंनिवहसंस्थानकथनम्।
ग्रहकेन्द्राणां चाराः सकलगणितं यत्र गदितं
स सिद्धान्तः प्रोक्तो विपुलगणितस्कन्धकुशलैः॥

यह सिद्धान्त स्कन्ध ज्योतिषशास्त्र के तीनों स्कन्धों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। सिद्धान्त के बिना होरा व संहिता शास्त्रों का कोई महत्त्व नहीं रह जाता। क्योंकि जन्म कुण्डली का निर्माण व ग्रह गोचर की स्थिति का ज्ञान सिद्धान्त ज्योतिष के बिना नहीं किया जा सकता। अतः आचार्यों ने सिद्धान्त स्कन्ध को ज्योतिष का आधार कहा। होरा स्कन्ध का मुख्य विषय है ग्रहों के मानव जीवन पर पड़ने वाले शुभाशुभ प्रभाव का विवेचन और संहिता स्कन्ध का मुख्य विषय है ग्रहों के भूगोलीय

समष्टिगत प्रभाव का वर्णन। सिद्धान्त स्कन्ध का मुख्य विषय है - ग्रहगणित अथवा ग्रह स्पष्टीकरण। शुद्ध ग्रहस्पष्टीकरण के बिना ग्रहों के प्रभाव का सही वर्णन नहीं किया जा सकता। इसी कारण से

भास्कराचार्य ने कहा – "खेटैः स्फुटैरेव फलस्फुटत्वम्" अर्थात् स्पष्ट ग्रहों के द्वारा ही स्पष्ट फल जाना जा सकता है। अतः किसी भी ग्रह के फल कथन से पूर्व उसके स्थान का शुद्ध स्पष्टीकरण परमावश्यक होता है। और ग्रह का शुद्ध रूप से साधन सिद्धान्त के ज्ञान के बिना संभव नहीं होता। अतः सिद्धान्त ज्योतिष का वैशिष्ट्य प्रतिपादित करते हुए भास्कराचार्य ने कहा कि जैसे राज्य शासन में भित्ति पर चित्र रूप में अंकित राजा और अत्यन्त सुगठित लकड़ी का बना हुआ सिंह कुछ भी करने में असमर्थ होता है उसी प्रकार जातक व संहिता का ज्ञाता दैवज्ञ यदि सिद्धान्त ज्योतिष से अनभिज्ञ हो तो काल की गणना में असमर्थ होकर उसके भेद व प्रभेद का विवेचन करने में असमर्थ होता है, जैसा कि कहा है –

जानन् जातकसंहितासगणितस्कन्धैकदेशा अपि।

ज्योतिः शास्त्रविचारसारचतुरप्रश्नेष्वकिञ्चित्करः॥

यः सिद्धान्तमनन्तयुक्तिविततं नो वेत्ति भीतौ यथा।

राजा चित्रमयोऽथवा मुघटितः काष्ठस्य कण्ठीरवः॥

1.4 सिद्धान्त ज्योतिष के भेद –

सिद्धान्त स्कन्ध के भी तीन भेद होते हैं – प्रथम सिद्धान्त, द्वितीय तन्त्र और तृतीय करण। (क) सिद्धान्त - 'सृष्ट्यादेर्यद्ग्रहज्ञानं सिद्धान्तः स उदाहृतः' सिद्धान्त ग्रन्थों में सृष्ट्यादि से अथवा कल्पादि से ग्रहगणित की जाती है। आज उपलब्ध प्रमुख सिद्धान्त ग्रन्थों में सुप्रसिद्ध आर्षग्रन्थ सूर्यसिद्धान्त है। इसके उपरान्त मानव रचित ग्रन्थों में ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, शिष्यधीवृद्धिद, सिद्धान्तशिरोमणि, सिद्धान्तसार्वभौम, सिद्धान्ततत्त्वविवेक आदि अनेक सिद्धान्त ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। वस्तुतः सिद्धान्त ज्योतिष के मूलभूत सिद्धान्तों का वर्णन सूर्यसिद्धान्त ग्रन्थ में ही कर दिया गया है परन्तु अत्यन्त प्राचीन होने के कारण उसके आधार पर साधित ग्रहों में कुछ स्थूलता प्राप्त होती है, किन्तु यह आर्ष ग्रन्थ होने से इसके द्वारा वर्णित विषयों को आज भी अत्यन्त प्रामाणिक माना जाता है। सिद्धान्ततत्त्वविवेक भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण वा तात्त्विक ग्रन्थ माना जाता है। तथा भारतीय सिद्धान्त ज्योतिष परम्परा का अन्तिम ग्रन्थ भी माना जाता है। ग्रन्थ के रचयिता भट्ट कमलाकर ने मुनीश्वर भास्कर ब्रह्मगुप्त आदि पूर्वाचार्यों का पद पद पर सयुक्तिक खण्डन भी किया है। सिद्धान्त शिरोमणि

सिद्धान्त ज्योतिष का साङ्गोपाङ्ग ग्रन्थ है, जिसमें सिद्धान्त ज्योतिष के सभी विषयों का आद्योपान्त वर्णन किया गया है, अतः इसका प्रमाणत्व स्वीकार किया जाता है।

(ख) तन्त्र – ‘युगादितो यत्र ग्रहज्ञानं तन्त्रं तन्निगद्यते’ अर्थात् जिस भाग में युगादि से प्रारम्भ कर ग्रहगणित की जाती है, उसकी तन्त्र संज्ञा होती है। तन्त्र ग्रन्थों में आर्यभट्ट का आर्यभटीय तन्त्रग्रन्थ सुप्रसिद्ध है। इस तन्त्र ग्रन्थ के गणितपाद में वर्गमूल आनयन, घनमूल आनयन, व्यास मान से परिधि का साधन आदि विषय संभवतः विश्व में प्रथम बार अत्यन्त स्पष्ट रीति से वर्णित किये गये हैं। ग्रन्थ के गोलपाद में उन्होंने भूमि के अपने अक्ष पर भ्रमण का आधारभूत सिद्धान्त विश्व इतिहास में सर्वप्रथम प्रतिपादित किया। आर्यभट्ट ने उस समय निम्न वाक्यों के द्वारा यह सिद्धान्त उपस्थापित किया –

अनुलोमगतिनौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत्।

अचलानि भानि तद्वत् समपश्चिमगानि लङ्कायाम्॥

(ग) करण - ‘शकाद् यत्र ग्रहज्ञानं करणं तत् प्रकीर्तितम्’ अर्थात् जहां अभीष्ट शकवर्ष ग्रहगणित का निरूपण किया जाय सिद्धान्त ज्योतिष की उस शाखा को ‘करण’ कहा गया। करणग्रन्थों में ग्रहलाघव, केतकी ग्रहगणित, सर्वानन्दकरण आदि ग्रन्थ सुप्रसिद्ध हैं। ग्रहलाघव ग्रन्थ द्वारा साधित ग्रहों में भी कुछ स्थूलता है। अतः आज के समय दृग्गणित की एकता प्राप्त करने हेतु प्रायशः भारतवर्ष के अनेक पञ्चाङ्ग केतकी ग्रहगणित के आधार पर ही निर्मित किये जाते हैं।

इस प्रकार से सिद्धान्त स्कन्ध भी तीन भागों में विभक्त हैं। सिद्धान्त ग्रन्थों में कल्पादि अथावा सृष्ट्यादि से, तन्त्र ग्रन्थों में युगादि से तथा करण ग्रन्थों में अभीष्ट शकाब्द से अहर्गण का साधन कर मध्यम ग्रह का आनयन व ग्रहस्पष्टीकरण किया गया।

1.5 कालक्रम के अनुसार सिद्धान्त ज्योतिष का विकास –

शक पूर्व पञ्चम शताब्दी से प्रारम्भ कर षोडश शक काल पर्यन्त ही भारतीय ज्योतिषशास्त्र के विकास का मध्यम काल था। इस काल में ग्रहों की मध्यम गति, स्पष्ट स्थिति, दिग्देशकाल का विवेचन, ग्रह युति, ग्रह-नक्षत्रों का उदयास्त विचार, चन्द्रशृङ्गोन्नति, पात, भूस्थिति, कालमान, इत्यादि विषय में सिद्धान्तों का निरूपण किया गया। अतः यह काल सिद्धान्त काल नाम से भी जाना जाता है। यह सिद्धान्त काल भी सिद्धान्त प्रतिपादन व उनकी व्याख्या के आधार पर पूर्व व उत्तर भाग में विभक्त है। सूर्यसिद्धान्त से प्रारम्भ कर ब्रह्मगुप्त पर्यन्त इसका पूर्वमध्य काल तथा उसके उपरान्त

राजा जयसिंह तक का समय उत्तर मध्यकाल कहलाता है। अब सिद्धान्त ज्योतिष के प्रमुख आचार्य व प्रमुख ग्रन्थों के विषय में वर्णन करते हैं।

1.6 सिद्धान्त ज्योतिष के प्रसिद्ध आचार्य व ग्रन्थ –

आचार्य लगध से प्रारम्भ कर आचार्य सुधाकर पर्यन्त जो मूल सिद्धान्त ग्रन्थ के प्रणेता हैं उनका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

लगधाचार्य एवं वेदाङ्ग ज्योतिष – आचार्य लगध का मूलग्रन्थ तो सम्प्रति उपलब्ध नहीं है परन्तु ग्रन्थ के एक श्लोक में उसका नाम निर्दिष्ट किया गया है –

“कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मनः”

वेदाङ्ग ज्योतिष में धनिष्ठार्ध में सूर्य और चन्द्रमा उत्तरायण का वर्णन कहा गया, इससे ग्रन्थ का रचनाकाल १४१० शकपूर्व सिद्ध होता है। वेदाङ्ग ज्योतिष न केवल सिद्धान्त ज्योतिष का अपितु सम्पूर्ण ज्योतिषशास्त्र का प्रथम ग्रन्थ माना गया है।

आर्यभटीय – आर्यभट रचित आर्यभटीय ग्रन्थ पौरुषेय उपलब्ध ज्योतिष ग्रन्थों में प्रथम है। आर्यभट स्वयं को कुसुमपुर निवासी और ३९८ शकाब्द समय का बताया है। कुसुमपुर को कुछ विद्वान् पाटलीपुत्र का तथा कुछ विद्वान् दक्षिण प्रदेश के किसी नगर का मानते हैं। आर्यभट रचित आर्यभटीय चार भागों में विभक्त हैं – गीतिकापाद, गणितपाद, कालक्रियापाद और गोलपाद। जैसा कि ग्रन्थ में कहा है –

प्रणिपत्यैकमनेकं कं सत्यां देवतां पलं ब्रह्म।

आर्यभटस्त्रीणि गदति गणितं कालक्रियां गोलम्॥

चार भागों में क्रम से १३, ३३, २५, ५० श्लोक हैं, इस प्रकार कुल १२१ श्लोक ग्रन्थ में हैं। आर्यभट ने विषय को संक्षिप्त बनाने के लिये वर्णों की सहायता से अङ्कों का निर्देश किया है। अङ्कों के लेखन की एक विलक्षण विधि उसने प्रयुक्त की है। उसमें ककार का १ अङ्क, खकार का २, गकार का ३, घकार का ४ इसी प्रकार क्रम सेमकार का २५। और यकार ३०, रकार ४०, लकार ५०, वकार ६०, तालव्य शकार ७०, मूर्धन्य षकार ८०, सकार ९०, हकार १००। स्वरों का भी विशेष रूप से संख्या निर्देश किया गया – अ १(इकाई), आ १०(दहाई), इ १००(सैकड़ा), ई १०००(हजार), उः १०,००० (दश हजार) ऋ लक्ष, दीर्घ ऋकार का दशलक्ष, लृकार का कोटी (करोड), दीर्घ लृकार का दशकोटी (दश करोड), एकार अयुत (अरब), ऐकार का दश अयुत(दश अरब), ओकार का नियुत(खरब), औकार का दश नियुत(दस खराब)। जैसे – कि = क(१)

+इ(सैकडा) = १००, खि = ख(२) + इ(सैकडा) = २००, शि = श(७०) + इ(सैकडा) = ७०००, बु = ब(२३) + उ(दश हजार) = २३००० इत्यादि। इस विधि से अक्षरों के माध्यम से सूर्यादि ग्रहों की भगण संख्या का निर्देश किया गया है। ग्रन्थ में कल्पादि से आरभ्य कर युगकाल गणना, राश्यंशकला संबंध, आकाश कक्षा का विस्तार, पृथ्वी सूर्य चन्द्रादि की गति, अङ्गुल हस्त पुरुष योजन आदि मानों का संबन्ध, पृथिवी का व्यास, सूर्यादि ग्रहों का बिम्बव्यास परिमाण, ग्रहों की क्रान्ति और विक्षेप, उनके पात मन्दोच्च स्थान, उनकी मन्द व शीघ्र परिधि का परिमाण, ज्याखण्डमान, अङ्कगणित, बीजगणित व रेखागणित आदि विषयों का क्रम से निर्देश किया गया है।

आर्यभट भूमी की गति भी मानते हैं। उन्होंने भूमि की भ्रमण संख्या की भी गणना की। पृथिवी के चलन का यह संभवतः विश्व में पहला लिखित प्रमाण है –

अनुलोमगतिर्नैस्थः पश्यत्यचलं विलोमं यद्वत्।

अचलानि भानि तद्वत् समपश्चिमगानि लङ्कायाम्॥

आर्यभट की युगगणना पद्धति अन्य परवर्ती आचार्यों से भिन्न रही है। उनके अनुसार ७२ युगों से एक मन्वन्तर होता है। उनके मत में सभी युगपाद समान ही होते हैं। आर्यभट ने बुधवासर के सूर्योदय से महायुग का आरम्भ माना। इन्हे आर्यभट नाम से भी जाना जाता है।

लल्लाचार्य और शिष्यधीवृद्धिदतन्त्र – आर्यभटसिद्धान्त में लल्ल ने बीजसंस्कार प्रदान किया है। शिष्यधीवृद्धिदतन्त्र एक अपूर्व ग्रन्थ है। लल्ल तीक्ष्णमति वेधकर्ता थे। जब आचार्य ने देखा कि जिन विषयों में आर्य सिद्धान्त से संगतता नहीं बैठ पाई वहां उन्होंने बीज संस्कार भी प्रदान किया। आचार्य सुधाकर उन्हें ४२१ शकाब्द काल का मानते हैं। इसके विपरीत शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित उन्हें ५६० शकाब्द काल का मानते हैं।

वराहमिहिर और पञ्चसिद्धान्तिका – आचार्य वराहमिहिर ने पूर्ववर्ती पांच प्राचीन सिद्धान्तों का संकलन पञ्चसिद्धान्तिका ग्रन्थ में किया है। जैसा कि –

पौलिशरोमकवासिष्ठसौरपैतामहास्तु पञ्चसिद्धान्ताः।

नारायण ने कालचक्र प्रवर्तन के लिये सूर्य को जो उपदेश दिया वहीं **सौर सिद्धान्त** है

उसे आर्यभट स्मरण करते हैं। पितामहो ब्रह्मा ने जिस को रहस्य को वसिष्ठ को कहा

वह **पैतामह सिद्धान्त** कहलाया। ब्रह्मा द्वारा उपदिष्ट गणित स्वबुद्धियोग से वसिष्ठ ने जो पराशर को उपदेश दिया वह **वासिष्ठ सिद्धान्त** कहलाया। वसिष्ठ प्राप्त जो शास्त्र पराशर ने मुनियों गर्गादि आचार्यों को उपदेश दिया व जिसे पुलिश ने कहा वह **पौलिश सिद्धान्त** कहलाया। जो

शास्त्र रोमक को और यवन जाति को ब्रह्मा के शाप से उत्पन्न सूर्य ने कहा तथा रोमक नगर में विस्तारित किया वही रोमक सिद्धान्त कहलाया।

इनमें से सौरसिद्धान्त अनुभव विषयक है, पौलिशकृत सिद्धान्त दृक्प्रतीति विषयक और रोमक उससे भी प्राचीन है। पैतामह और वसिष्ठसिद्धान्त तो तु नितान्त ही प्राचीन है जिनके अनुसार प्राप्त ग्रहस्थिति सही प्राप्त नहीं हो पाती है। अतः आचार्य वराहमिहिर ने कहा –

पौलिशकृतः स्फुटोऽसौ तस्यासन्नस्तु रोमकः प्रोक्तः।

स्पष्टतरः सावित्रः परिशेषौ दूरविभ्रष्टौ॥

कुछ विद्वानों का मत है कि वराहमिहिर का जातकार्णवसंज्ञक करणग्रन्थ भी था। आचार्य वराहमिहिर का काल ४२७ शकवर्ष माना जाता है। ४०७ वर्ष में उनका जन्म हुआ और ५०९ शकवर्ष में वे दिवङ्गत हुए। उनके पिता और गुरु का नाम आदित्यदास था। उनका निवास स्थान कापित्थ ग्राम था।

भास्कर प्रथम – प्रथमभास्कर का समय ५३० शकाब्द अनुमानित है। उनके दो ग्रन्थ प्राप्त होते हैं महाभास्करीय और लघुभास्करीय। इनके द्वारा रचित आर्यभटीय भाष्य प्रसिद्ध है। ये दाक्षिणात्य थे।

ब्रह्मगुप्त और ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त – ब्रह्मगुप्त महान् ज्योतिषी, महान् अन्वेषक और वेधकुशल थे। वेध के प्रसङ्ग में जब आचार्य ब्रह्मगुप्त ने देखा कि प्रचलित सिद्धान्त ग्रन्थों से साधित ग्रह गणित एवं वेध द्वारा प्राप्त वास्तविक ग्रहों की स्थिति में बहुत अन्तर प्राप्त हो रहा है तब उन्होंने दृक् तुल्यग्रहों की स्थिति का साधन करने वाले सिद्धान्त का प्रणयन किया। उनके द्वारा रचित ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त नामक सिद्धान्त ग्रन्थ और खण्डखाद्यक नामक करणग्रन्थ सम्प्रति समुपलब्ध होते हैं। उनके द्वारा प्रतिपादित चक्रियचतुर्भुजप्रमेय भारतीय बीज गणित के विकास में एक बड़ी उपलब्धि माना जाता है। ज्या के बिना भुज और कोटि का आनयन, ज्या से चाप आनयन सर्वप्रथम ब्रह्मगुप्त ने ही किया। ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त का प्रणयन ५५० शकाब्द काल में हुआ।

आचार्य मुञ्जाल, बृहन्मानस और लघुमानस – आचार्य मुञ्जाल भी ब्रह्मगुप्त के समान स्वतन्त्र अन्वेषक और विलक्षण प्रतिभासम्पन्न थे। उनका स्थितिकाल ८५४ शकाब्द माना जाता है। मुञ्जाल ने ८५४ शकाब्द में ६०/५०' अयनांश का मान बताया और अयनांश की वार्षिकी गति एक कला तुल्य बताई। इससे पूर्व किसी भी पौरुषेय ग्रन्थ में अयनचलन के विषय में वर्णन नहीं किया गया था। मुञ्जाल ने चन्द्रस्पष्ट में विशेष संस्कार प्रदान किये जो कि इससे पूर्व किसी आचार्य ने प्रदान नहीं किये थे। मुञ्जाल ने बृहन्मानस नामक सिद्धान्त ग्रन्थ और लघुमानस

नामक करणग्रन्थ की रचना की।

द्वितीय आर्यभट और महासिद्धान्त – आर्यसिद्धान्त में ब्रह्मगुप्त ने और लल्ल ने भी जो दोष निर्दिष्ट किये उनका निराकरण करते हुए द्वितीय आर्यभट ने अपना सिद्धान्त प्रतिपादित किया। इनके द्वारा रचित ग्रन्थ महासिद्धान्त नाम से प्रसिद्ध है। ग्रन्थ में कुल अष्टादश अध्याय हैं। पाटीगणित, अङ्कगणित, क्षेत्रफल, घनफल आदि ग्रन्थ के प्रतिपाद्य विषय हैं। अष्टादश अध्याय में बीजगणित का निरूपण किया। उन्होंने सप्तर्षियों की गति को भी माना और उनके कल्प भगणों को भी प्रस्तुत किया। उनका स्थितिकाल शङ्करबालकृष्ण दीक्षित ने ८७५ शकाब्द अनुमित किया है।

श्रीपति और सिद्धान्तशेखर – इनका स्थितिकाल ९६० शकाब्द माना गया है। सिद्धान्त शेखर, धीकोटिदकरण, रत्नमाला और जातकपद्धति इनके प्रमुख ग्रन्थ हैं। भास्कराचार्य अपने सिद्धान्त शिरोमणि ग्रन्थ में श्रीपति को श्रद्धापूर्वक स्मरण करते हैं।

भोजदेव और राजमृगाङ्क – भोजदेव का राजमृगाङ्क ब्रह्मगुप्त के सिद्धान्त का करण ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ का प्रणयन काल ९६४ शकाब्द माना गया है। इस ग्रन्थ में मध्यम व स्पष्ट संज्ञक दो अधिकार प्राप्त होते हैं जिनमें ६९ श्लोक हैं। भोजदेव ने ब्रह्मगुप्त के सिद्धान्त में बीज संस्कार प्रदान किया।

भास्कराचार्य और सिद्धान्त शिरोमणि – भास्कराचार्य १०३६ शकाब्द में उत्पन्न हुए। वे शेखरकरण के कर्ता महेश्वर के पुत्र और सह्यकुल पर्वतप्रान्त ग्राम के निवासी थे। उनके पिता ही उनके गुरु थे। उनका सिद्धान्तशिरोमणि नामक सिद्धान्त ग्रन्थ और करणकुतूहल संज्ञक करण ग्रन्थ है। सिद्धान्त शिरोमणि उनकी एक विलक्षण रचना है। सिद्धान्त शिरोमणि का प्रणयन काल १०७२ शकाब्द है। सिद्धान्त शिरोमणि के चार भाग हैं – पाटीगणित अर्थात् लीलावती, बीजगणित, ग्रहगणित और गोलाध्याय। कुछ विद्वान् उत्तरभाग के दो भागों को सिद्धान्त शब्द से भी कहा है।

पाटी गणित स्वरूप लीलावती ग्रन्थ तो अङ्कगणित का एक स्वतन्त्र ग्रन्थ ही है। इसमें २७८ पद्य हैं। इसमें विविध परिमाण निर्देश, सङ्ख्यायन विधि, परिकर्माष्टक (पूर्णाङ्कों का योग, अन्तर, गुणन, भाग, वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल आदि, अपूर्णाङ्कों का परिकर्माष्टक, शून्य का परिकर्माष्टक) त्रैराशिक, पञ्चराशिक, क्षेत्रफल, घनफल, कुट्टक, पाक्षिक विपर्यय, सर्वाशिक विपर्यय आदि का निरूपण किया। लीलावती ग्रन्थ की जितनी टीकाएँ हैं उतनी किसी अन्य गणित ग्रन्थ की उपलब्ध नहीं होती है। उनके नाम हैं – गोवर्धन रचित गणितामृतसागरी, गणेशदैवज्ञ रचित बुद्धिविलासिनी, धनेश्वर रचित लीलावतीभूषण, महीदास रचित महीदासी, मुनीश्वर रचित लीलावती

विवृति, महीधर रचित लीलावती विवरण, रामकृष्ण रचित गणितामृतलहरी, नारायण रचित पाटीगणितकौमुदी, रामकृष्ण रचित मनोरञ्जना, रामचन्द्र रचित लीलावतीभूषण, विश्वरूप रचित निसृष्टदूती, सूर्यदास रचित गणितामृतकूपिका, चन्द्रशेखर रचित उदाहरण, विश्वेश्वर रचित उदाहरण, टीकाराम रचित चन्द्रकला इत्यादि।

बीजगणित इस ग्रन्थ का द्वितीय भाग है। इसमें धनर्णषड्विध, शून्यसङ्कलनादि, अव्यक्तकल्पनासङ्कलनादि, अनेकवर्णषड्विध, करणीषड्विध, कुट्टक, वर्गप्रकृति, चक्रवाल, एकवर्णसमीकरण, अनेकवर्णसमीकरण, अनेकवर्णमध्यमाहरण और भावित विषयों का निरूपण किया गया है। लीलावती ग्रन्थ का १५०९ शकाब्द में और बीजगणित का १५९७ शकाब्द में पर्शियन भाषा में रूपान्तर किया गया। और दोनों ग्रन्थों का १७५५ शकाब्द में अंग्रेजी भाषा में रूपान्तर हुआ।

ग्रहगणित इस ग्रन्थ का तृतीय भाग है। इसमें उपोद्धात, मध्यमाधिकार, मानाध्याय, भगणाध्याय, ग्रहानयन, कक्षाध्याय, अधिकमासादिविचार, भूपरिध्यादि विषय, स्पष्टाधिकार, त्रिप्रश्नाधिकार, पर्वसम्भवाधिकार, चन्द्रग्रहणाधिकार, सूर्यग्रहणाधिकार, ग्रहच्छायाधिकार, ग्रहोदयास्ताधिकार, शृङ्गोन्नत्यधिकार, ग्रहयुत्यधिकार, भग्रहयुत्यधिकार और पाताधिकार विषय विवेचित किया गया है।

गोलाध्याय इसका चतुर्थ पाद है। इसमें उपोद्धात, गोलस्वरूपाध्याय, मध्यमगतिवासना, छेद्यकाधिकार, गोलबन्धाधिकार, त्रिप्रश्नवासना, ग्रहणवासना, उदयास्तवासना, शृङ्गोन्नतिवासना, यन्त्राध्याय, ऋतुविचार, प्रश्नाध्याय आदि विषय क्रम से विवेचित किया गया।

भास्कराचार्य का करणकुतूहल करण ग्रन्थ प्रसिद्ध है। इसका प्रारम्भ काल ११०५ शकाब्द है। इसमें मध्यमाधिकार, स्पष्टाधिकार, त्रिप्रश्नाधिकार, चन्द्रसूर्यग्रहणाधिकार, उदयास्ताधिकार, शृङ्गोन्नत्यधिकार, ग्रहयुति, पर्वसम्भव संज्ञक दश अधिकार हैं। करणकुतूहल की सोड्डल, पद्मनाभ, केशवार्क, हर्षगणित, विश्वनाथ, एकनाथ, शङ्करादि प्रणीत टीकाएँ हैं। रत्नमाला टीका में माधव भास्कराचार्य द्वारा प्रणीत व्यवहारप्रदीप संज्ञक मुहूर्त ग्रन्थ का भी उल्लेख करते हैं। इसी प्रकार भास्कराचार्य के विवाहपटल संज्ञक ग्रन्थ का भी अस्तित्व शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित ने सूचित किया है।

भास्कराचार्य ने ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त से और राजमृगाङ्क से विषयों का ग्रहण कर ग्रन्थ का प्रणयन किया। ग्रन्थ में वेध साध्य और विचार साध्य नवीन वस्तुओं का निर्देश किया गया है। ग्रन्थ में

विशेष रूप से गोल को अत्यधिक स्पष्ट किया गया। त्रिप्रश्नाधिकार में नवीन रीतियां निर्दिष्ट की गईं

है। ग्रन्थ में शङ्करोद्दिष्ट दिक्छाया साधन का वर्णन किया गया है जो कि पूर्वाचार्यों के ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं होता। पात साधन में पूर्वाचार्यों के मत का विवेचन करते हुए अपने मत को उपस्थापित किया।

उदयान्तर इनका नवीन शोध है। अहर्गण द्वारा आगत ग्रह मध्यम सूर्योदय काल के होते हैं। उन्हें उदयकालीन करने हेतु पूर्ववर्ती आचार्यों ने केवल भुजान्तर व चरसंस्कार ही निर्दिष्ट किये थे। परन्तु भास्कराचार्य ने उसमें उदयान्तर संज्ञक संस्कार को भी जोड़ा। अनेक स्थलों पर भास्कराचार्य ने ब्रह्मगुप्त की त्रुटियों की ओर सङ्केत किया। इससे भास्कराचार्य न केवल व्याख्याता अपितु सिद्धान्त प्रवर्तक भी माने गये हैं। उसने अहर्गण से ग्रहानयन पद्धति आरम्भ करते हुए ज्योत्पत्ति सदृश गहन विषय को भी उपपत्ति सहित निरूपित किया। इसकी प्रतिपादन रीति अत्यन्त सरस और स्पष्ट है। उसके गणितसाधक श्लोक भी काव्यानन्द प्रदायक हैं। उनका समग्र प्रयास उपपत्ति विवेचन पर केन्द्रित रहा। उन्होंने अपने सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ के तृतीय व चतुर्थ भाग का वासना भाष्य भी लिखा।

सर्वप्रथम भास्कराचार्य ने ही अङ्कगणितीय क्रियाओं में अपरिमेय राशीयों का प्रयोग किया। चक्र विधि से आविष्कृत अनिश्चित एकजातीय वर्गसमीकरणों का व्यापक समाधान ही उसके तस्य गणितशास्त्र का सर्वोत्तम उपाय है। उन्होंने गोलाध्याय में माध्य

आकर्षण तत्त्व नाम से गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त भी प्रणीत किया। जैसा कि –

‘आकृष्टशक्तिश्च महीतया यत् खस्थं गुरुक्षिप्तस्वाभिमुखं स्वशक्त्या आकृष्यते तत्पततीव भाति’। भास्कराचार्य ने ही दशमलवप्रणाली का क्रमिक रूप से व्याख्या की।

मकरन्द – आचार्य मकरन्द ने पञ्चाङ्गसाधक सूर्यसिद्धान्त के अनुसार ग्रन्थ १४०० शकाब्द रचित किया। इसकी आचार्य दिवाकर ने १५४९ शकाब्द में मकरन्द विवरण नामक टीका भी लिखी।

केशव एवं ग्रहकौतुक – केशव का ग्रहकौतुक करणग्रन्थ ज्योतिषशास्त्र के इतिहास में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। यह १४१८ शकाब्द में प्रणीत किया। केशव कमलाख्य ज्योतिर्विद का पुत्र और नन्दिग्राम का निवासी था। स एक महान् गणक और सफल वेधक था।

गणेश एवं ग्रहलाघव – गणेशदैवज्ञ का ग्रहलाघवकरण लोकप्रिय और बहुप्रयुक्त ग्रन्थ है। गणेश केशवदैवज्ञ के पुत्र थे। आचार्य गणेश शास्त्रज्ञ और कुशल वेधकर्ता थे। उन्होंने अपने ग्रन्थ में उन्होंने ग्रहगणित को संक्षिप्त व सरल प्रयास किया। इसका उपक्रमवर्ष १४४२ शकाब्द माना है। ग्रहों की दृक् तुल्यता के लिये उन्होंने संयोगवियोग राशियों का वर्णन किया। ज्याचापसम्बन्ध के बिना ही

ग्रहानयन, सूक्ष्मतर रीति से एकादश वर्ष के अन्तर्गत अहर्गण चक्र के माध्यम से व ध्रुवाङ्कों से मध्यमग्रह का आनयन और मानसंयोजन के लिये संयोग वियोग राशि का निर्देश गणेश का वैशिष्ट्य है। ग्रहलाघव में चतुर्दश अधिकार हैं। इस ग्रन्थ की गङ्गाधरकृत, मल्लारिकृत, विश्वनाथकृत और सीतारामकृत टीकाएँ प्रसिद्ध हैं।

ज्ञानराज और सिद्धान्तशेखर – ज्ञानराज ने वर्तमान सूर्यसिद्धान्त के अनुसार सिद्धान्तसुन्दर संज्ञक ग्रन्थ की रचना की। ग्रन्थ में क्षेपक आदि १४२४ शकाब्द का दिया गया। सामयिक बीजसंस्कार का साधन इस ग्रन्थ का वैशिष्ट्य है।

रघुनाथ एवं सुधामञ्जरी – रघुनाथ का सुधामञ्जरी ब्राह्मपक्षीय करणग्रन्थ है। इसका आरम्भवर्ष १४८४ शकाब्द माना जाता है।

मुनीश्वर एवं सिद्धान्तसार्वभौम – सिद्धान्तसार्वभौम १५५८ शकाब्द काल में मुनीश्वर द्वारा प्रणीत सिद्धान्त ग्रन्थ है। उसने लीलावती की निसृष्टदूत नामक टीका और गणिताध्याय व गोलाध्याय की टीका भी लिखी। पाटीसार भी मुनीश्वर का ही ग्रन्थ है।

कमलाकर और सिद्धान्ततत्त्वविवेक – आचार्य कमलाकर रचित सिद्धान्ततत्त्वविवेक एक बहुचर्चित ग्रन्थ है। इसकी रचना १५८० शकाब्द में की गई। सर्वाङ्गपूर्ण इस ग्रन्थ में सिद्धान्त ज्योतिष के सभी विषय सप्रपञ्च निरूपित किये गये हैं। यह ग्रन्थ सर्वथा सौरसिद्धान्त को स्वीकार करता है। कमलाकर न केवल सूर्यसिद्धान्त का अधिवक्ता था अपितु महान् अन्वेषक भी था। सम्पात का गति के आधार पर ध्रुव नक्षत्र की अस्थिरता का प्रतिपादन, साम्प्रतिक दृश्य ध्रुवमान का ध्रुव स्थान से कुछ हटना, पूर्वोत्तर रात्रि और उनके स्थानवैभिन्न्य का प्रतिपादन उनके द्वारा किये आविष्कारों में उल्लेखनीय विषय है। उन्होंने तुरीय यन्त्र से वेध की एक विस्तृत विधि का निर्देश किया, त्रिप्रश्नाधिकार और ग्रहणाधिकार में अनेक नवीन रीतियों का निर्देश किया, मेघ, भूकम्प, उल्कापात, ओलावृष्टि आदि प्राकृतिक उत्पातों के कारणों का निर्देश किया। त्रिज्या का मान ३४३८ के स्थान पर ६० त्रिज्या कल्पित किया। ग्रहभोग से विषुवांश आनयन की सारिणी का भी प्रणयन किया।

नित्यानन्द और सर्वसिद्धान्तराज – १५६१ शकाब्द में नित्यानन्द ने सर्वसिद्धान्तराज की रचना की। इस ग्रन्थ में मुख्य रूप से दो ही अधिकार हैं – गणिताध्याय और गोलाध्याय। प्रथम भाग में

मध्यम, स्पष्ट, त्रिप्रश्न, चन्द्रसूर्यग्रहण, शृङ्गोन्नति, भग्रहयुति और छाया संज्ञक नौ ही अधिकार हैं। द्वितीय भाग में भुवनकोश, गोलबन्ध और यन्त्राधिकार का निरूपण किया गया है। सभी सामान्य विषयों में उसने सावनमान का वैशिष्ट्य प्रतिपादित किया।

जयसिंह, जगन्नाथ और सिद्धान्तसम्राट् – जयसिंह मत्स्यदेश का अधिपति था। उसने मुख्य रूप से गणितागत ग्रहों की सूक्ष्मता से दृक्कुल्यता करने हेतु वेधकार्य करवाया। जयसिंह ने गणितागत ग्रह और वास्तव ग्रह का ऐक्य साधन करने हेतु वेध द्वारा गणित उपकरणों की भी शुद्धि हेतु जयपुर, इन्द्रप्रस्थ(दिल्ली), वाराणसी, मथुरा और उज्जयिनी में वेधशाला की स्थापना करवाई। वेध द्वारा गणित उपकरणों का शोधन करना इनका मुख्य प्रयोजन था। वेधशालाओं में संस्थापित कुछ यन्त्र प्रतिसंस्कृत थे व कुछ तो सर्वथा नूतन थे। यन्त्र रचना में अरबीय ज्योतिष यन्त्रों की व उनके विद्वानों की भी सहायता ली गई।

राजा जयसिंह की सभा में अनेक विद्वान् ज्योतिषी कार्यरत थे। दक्षिण प्रदेश से आचार्य जगन्नाथ को जयसिंह ने जयपुर में ससम्मान बुलाया। जयसिंह ने ग्रहवेध के विषय में ‘सिद्धान्तसम्राट्’ संज्ञक ग्रन्थ १६५३ शकवर्ष जगन्नाथ पण्डित के द्वारा लिखवाया। यह एक सुविस्तृत ग्रन्थ है। ग्रन्थ में दो अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में चतुर्दश प्रकरण व षोडशक्षेत्र तथा द्वितीय अध्याय में तेरह प्रकरण और पच्चीस क्षेत्र हैं। इसके अतिरिक्त भी यन्त्र, ज्याचाप आदि, रेखागणितसाध्य, त्रिप्रश्न, मध्यम, स्पष्टाधिकार आदि का भी सप्रपञ्च निरूपण किया गया है। यहां सायन वर्षमान स्वीकार किया गया है जिसमें अयनांश की वार्षिक गति ५१.४ विकला मानी गई है। सिद्धान्त पक्ष में यह ग्रन्थ बीजसंस्कार सहित सूर्यसिद्धान्त का अनुसरण करता है।

जयसिंह की सभा में नयनसुखोपाध्याय नामक अन्य सुप्रसिद्ध विद्वान् थे। जयसिंह की आज्ञा से नयनसुखोपाध्याय ने कटरा नामक ग्रन्थ की रचना की। उस ग्रन्थ में तेरह अध्याय और उनसठ (एकोनषष्टि) क्षेत्रों का वर्णन किया गया है। जयसिंह की पद्धति से ग्रहों की सूक्ष्मातिसूक्ष्म गति का ज्ञान किया जा सकता है।

बापूदेव – बापूदेव का अपर नाम नृसिंह भी था। बापूदेव ने अनेक ग्रन्थों की रचना की जिसमें सरलत्रिकोणमिति एक अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ है। वे १७४३ शकाब्द में उत्पन्न हुए थे। इनके लघुकाय और बृहत्काय बारह से अधिक ग्रन्थ हैं। जैसे – तत्त्वविवेकपरीक्षा, अङ्कगणित, बीजगणित, मानमन्दिरस्थ यन्त्रवर्णन, सायनवाद इत्यादि। उनके द्वार रचित गोल परिभाषा आज भी अत्यन्त

प्रसिद्ध है।

नीलाम्बर – नीलाम्बर: १७४५ शकाब्द में उत्पन्न हुए। उन्होंने मुख्य रूप से गोलप्रकाश नामक ग्रन्थ की रचना की। उसमें पांच अध्याय हैं – ज्योत्पत्ति, त्रिकोणमिति, चापीयरेखागणित, चापीयत्रिकोणमिति और प्रश्नविषय।

केतकर और ज्योतिर्गणित – वेङ्कटेश केतकर महोदय ने १८१२ शकाब्द में ज्योतिर्गणित की

रचना की। इस ग्रन्थ के चार भाग हैं, जिसमें प्रथम पञ्चाङ्ग गणित, द्वितीय ग्रहस्थान गणित, तृतीय में ग्रहण, युति, चन्द्रशृङ्गोन्नत्यादि की गणित और चतुर्थ में त्रिप्रश्नाधिकार लग्नमान आदि से संबंधित गणित का वर्णन है। यह ग्रन्थ पञ्चाङ्ग निर्माताओं के लिये नितान्त उपयोगी है। इसी के प्रयोग से आज भी अनेक पञ्चाङ्गों का निर्माण किया जाता है।

सुधाकर – आचार्य सुधाकर द्विवेदी महोदय का जन्म १७८२ शकाब्द में काशी के समीप खजुरी ग्राम में हुआ था। उनकी बुद्धि अत्यन्त विलक्षण थी। उनके द्वारा प्रणीत अनेक ग्रन्थ हैं, जिनमें दीर्घवृत्तलक्षण, सभङ्ग विचित्रप्रश्न, वास्तवचन्द्रशृङ्गोन्नतिसाधन, द्युचरचार, पिण्डप्रभाकर, भाभ्रमेखानिरूपण, धराभ्रम, ग्रहणकरण, गोलीयरेखागणित और प्रतिभाबोधक विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। इनके द्वारा रचित गणकतरङ्गिणी ज्योतिषशास्त्र इतिहास वर्णन करने वाला एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है।

1.6.1 अन्य आचार्य व उनके ग्रन्थ –

उपर्युक्त आचार्य एवं उनके ग्रन्थ कालान्तर में अत्यन्त प्रसिद्ध हुए। परन्तु इसके अतिरिक्त भी अनेक आचार्य हुए जिन्होंने सिद्धान्त विषय में ग्रन्थों की रचना की। संभवतः सैकड़ों वर्षों के दीर्घ इतिहास में भारत ने अनेक प्रकार की परिस्थितियों को देखा। अनेक आक्रमणों को झेला व गुलामी को सहा। इस दौरान अनेक ग्रन्थ काल कवलीत हो गये। अब जो अवशिष्ट रह गया वही हमें ज्ञात है। ज्योतिष की परम्परा भारत के सभी भागों में विकसित हो रही थी। सभी भागों में व्रत, पर्व, त्योहार व मुहूर्तों के ज्ञान के लिये पञ्चाङ्गों की आवश्यकता होती थी। अतः सम्पूर्ण भारत के सभी क्षेत्रों में पञ्चाङ्गकर्ता व गणितकर्ता आचार्य विद्यमान रहे होंगे। परन्तु केवल वे ही कृतियां लम्बे समय तक जीवित रहीं जो कि अत्यन्त विलक्षण थीं व जिनकी हजारों हस्तलिखित प्रतिलिपियां पीढ़ी दर पीढ़ी होती रही। अथवा वे विद्वान् जो कि बड़े शासक के सान्निध्य में कार्यरत रहे व उनकी रचना को राज्याश्रय में सुरक्षित रखा गया। वे ही कृतियां आज उपलब्ध हो पाती हैं। कुछ आचार्य व उनके द्वारा

रचित ग्रन्थों के नाम निम्न प्रकार से हैं – सामन्त चन्द्रशेखर विरचित सिद्धान्तशेखर, विजयनन्दि रचित करणतिलक, भानुभट्ट रचित रसायन तन्त्र, वरुणाचार्य रचित खण्डखाद्य टीका, दशबल रचित करणकमलमार्तण्ड, ब्रह्मदेव रचित करणप्रकाश, शतानन्द रचित भास्वती, महेश्वर रचित शेखरकरण, सोमेश्वर रचित मानसोल्लास, माधव रचित सिद्धान्तशिरोमणि, पद्मनाभ रचित यन्त्ररत्नावली, नृसिंह रचित मध्यमग्रहसिद्धि, नागेश रचित ग्रहप्रबोध, रङ्गनाथ रचित सिद्धान्तचूडामणि, कृष्ण रचित करणकौस्तुभ, रत्नकण्ठ रचित पञ्चाङ्गकौतुक, जटाधर रचित फतेशाहप्रकाश, शङ्कर रचित करणग्रन्थ, मणिराम रचित ग्रहगणित चिन्तामणि, मथुरानाथ रचित यन्त्रराजघटना, चिन्तामणिदीक्षित रचित गोलानन्द, राघव रचित खेटकृति, शिव रचित तिथिपारिजात, दिनकर रचित ग्रहविज्ञानसारिणी, रघुनाथ रचित ज्योतिषचिन्तामणि, विनायकपाण्डुरङ्ग रचित सिद्धान्तसार इत्यादि।

1.7 सिद्धान्त ज्योतिष के प्रमुख विषय –

सिद्धान्त ज्योतिष के अन्तर्गत परिगणित किये जाने वाले विषयों में निम्न प्रमुख है –

गणित के तीन भेदा पाटीगणित, बीजगणित और व्यक्ताव्यक्तगणित, अहर्गण आनयन, भूपरिधि साधन, देशान्तर ज्ञान, उदयान्तर साधन, चरकाल ज्ञान, अयनांश विचार, ग्रहण विचार, भूगोल वर्णन, मध्यमाधिकार, ग्रहस्पष्टीकरण, दिग्देशकालसंज्ञक त्रिप्रश्न, छेद्यकाधिकार, ग्रहयुत्यधिकार, भग्रहयुति, पातविचार, कालमान, चन्द्रश्रृङ्गोन्नति इत्यादि। सिद्धान्त ज्योतिष के विविध ग्रन्थ व ग्रन्थकारों के वर्णन के संदर्भ में भी विविध विषयों का निरूपण किया गया। सिद्धान्तज्योतिष अन्तर्गत समागत विषयों के सन्दर्भ में बृहत्संहिता ग्रन्थ में आचार्यवराहमिहिर ने दैवज्ञलक्षणवर्णन के सन्दर्भ में विस्तार से वर्णन किया कि एक दैवज्ञ को किन किन विषयों का ज्ञाता होना चाहिये, इस वर्णन के सन्दर्भ में सिद्धान्त ज्योतिष से संबंधित निम्न विषयों का उल्लेख किया –

“तत्र ग्रहगणिते पौलिशरोमकवासिष्ठपैतामहेषु पञ्चस्वेतेषु सिद्धान्तेषु युगवर्षयनर्तुमासपक्षाहोरात्रयाममुहूर्तनाडीप्राणत्रुटीत्रुट्याद्यवयवादिकस्य कालस्य क्षेत्रस्य च वेत्ता। चतुर्णां च मानानां सौरसावननाक्षत्रचान्द्राणामधिमासकावमसम्भवस्य च कारणाभिज्ञः। षष्ठ्यब्दयुगवर्षमासदिनहोराधिपतीनां प्रतिपत्तिच्छेदवित्। सिद्धान्तभेदेऽप्ययननिवृत्तौ प्रत्यक्षसममण्डललेखासम्प्रयोगाभ्युदितांशकानां छायाजलयन्त्रदृग्गणितसाम्येन प्रतिपादनकुशलः। सूर्यादीनां च ग्रहाणां शीघ्रमन्दयाम्योत्तरनीचोच्चगतिकारणाभिज्ञः। ग्रहणे मोक्षकालदिकप्रमाणस्थितिविमर्द-वर्णादेशनामनागतग्रहसमागमयुद्धानामादेष्टा। प्रत्येकग्रहभ्रमणयोजनकक्ष्याप्रमाणप्रति-

विषययोजनपरिच्छेदकुशलः।

भूभगणभ्रमणसंस्थानाद्यक्षावालम्बकाहर्व्यासचरदलकाल-

राश्युदयच्छायानाडीकरणप्रभृतिषु क्षेत्रकालकरणेष्वभिज्ञः”।

1.8 सारांश –

इस पाठ में ज्योतिष शास्त्र के अतीव विस्तृत सिद्धान्त स्कन्ध का अत्यन्त संक्षेप में परिचय प्रदान किया गया। सिद्धान्त ज्योतिष की परिभाषा, सिद्धान्त ज्योतिष के भेदा, कालक्रम से सिद्धान्तज्योतिष का विकास, सिद्धान्तज्योतिष के प्रमुखग्रन्थ व ग्रन्थकार और सिद्धान्त ज्योतिष के प्रमुख विषयों का इस पाठ में अत्यन्त संक्षेप में निरूपण किया। ये सभी विषय अपने आप में अत्यन्त विशाल हैं। आज के समय में मुख्यतया पञ्चाङ्ग निर्माण हेतु, नूतनवेधशाला निर्माण हेतु, निर्मित वेधशालाओं के प्रयोग हेतु, गणितशास्त्र व खगोलशास्त्र के इतिहास के अध्ययन हेतु सिद्धान्त ज्योतिष की अत्यधिक उपयोगिता है। सिद्धान्त ज्योतिष के बिना किसी भी कार्य के शुभ मुहूर्त का ज्ञान, व्रत, पर्व, त्योहार के सही समय के ज्ञान होना संभव नहीं है अतः इस शास्त्र की आवश्यकता भारतीय संस्कृति के जीवित रहने तक बनी रहेगी। आजकल केवल मात्र इस शास्त्र का स्वरूप परिवर्तित हो गया है। आज सभी प्रकार की गणित संगणक यन्त्रों के माध्यम से शीघ्रातिशीघ्र की जा सकती है। प्राचीन सिद्धान्त ग्रन्थों के आधार पर विविध संगणकीय तन्त्रों (साफ्टवेयर) का निर्माण कर लिया गया है जो क्षणमात्र में ही तात्कालिक व भूत भविष्यतकालिक ग्रहों की स्थिति की सटीक गणना प्रदान कर देते हैं। अतः तकनीकी के प्रयोग से सिद्धान्त ज्योतिष को एक नया आयाम मिला है। गणित और खगोलशास्त्र के इतिहास पठन के सन्दर्भ में उन प्राचीन ग्रन्थों का उपयोग विश्व में आज भी होता है। विश्व में गणित का इतिहास यहीं से प्रारम्भ होता है। जब किसी राष्ट्र के मनुष्य अपने गौरवशाली इतिहास को जानते हैं तो उनमें राष्ट्रीयता की भावना में वृद्धि होती है व गौरव का अनुभव होता है। सिद्धान्त ज्योतिष की यह भारतीय विकास परम्परा भी भारत के नागरिक को गौरवान्वित होने का अवसर प्रदान करती है। पाठ के अन्त में पठनीय पुस्तकों की सूची प्रदान की गई है। जिनके अध्ययन से जिज्ञासु अध्येता इस विषय में अपने ज्ञान को और अधिक विस्तार प्रदान कर सकते हैं।

1.9 पारिभाषिक शब्दावली –

दृक्सिद्ध ग्रह एवं बीज संस्कार – सर्वप्रथम प्राचीन सिद्धान्त ग्रन्थों के आधार पर ग्रहों की स्थिति का स्पष्टीकरण किया जाता था। इसके उपरान्त गणित से प्राप्त ग्रहों की स्थिति सही है या नहीं इसकी

जांच विविध यन्त्रों में वेध द्वारा की जाती थी। यन्त्रों से वेध करने पर ग्रहों की वास्तविक स्थिति का ज्ञान होता था। वेधयन्त्रों से साधित ग्रह को दृक्सिद्ध ग्रह कहा जाता था। यदि गणित द्वारा साधित ग्रहों की स्थिति वेधयन्त्रों द्वारा साधित ग्रहों की स्थिति के अनुसार ही प्राप्त होती थी तभी उस गणित को सही माना जाता था। और उस सिद्धान्त के आधार पर भविष्य में भविष्यतकाल हेतु की गई गणित को प्रामाणिक माना जाता था। यदि गणित से प्राप्त ग्रह स्थिति व वेधयन्त्रों से साधित ग्रहस्थिति में बार बार अन्तर प्राप्त होता था तो उस सिद्धान्त ग्रन्थ में दिये गये मानों में कुछ नये परिवर्तन की आवश्यकता होती थी, जिसे बीज संस्कार कहा जाता था। परवर्ती आचार्यों ने इसी प्रकार प्राचीन सिद्धान्त ग्रन्थों का निरन्तर परीक्षण करते हुए संस्कार प्रदान किये।

त्रुटि मान – “सूच्या भिन्ने पद्मपत्रे त्रुटीरित्यभिधीयते” अर्थात् सूची से एक कमल के पत्ते को भेदने में जितना काल अपेक्षित होता है, वह समय त्रुटि कहलाता है। सिद्धान्त ज्योतिष में काल गणना के प्रसंग में त्रुटि को काल गणना की सबसे छोटी इकाई माना है। कपिलेश्वर शास्त्री जी ने सूर्यसिद्धान्त की टीका में विस्तृत रूप से इसका वर्णन किया। आधुनिक मान से इसका मान लगभग एक सैकण्ड का ४३,२०,०००वां भाग माना जाता है।

अव्यक्त गणित – गणित में जो राशि अज्ञात होती है, उसके लिये कुछ संकेताक्षर माना जाता है, जिस प्रकार आधुनिक समय में अंग्रेजी के x, y, z आदि अक्षरों का प्रयोग किया जाता है। उससे संबंधित गणित को अव्यक्त गणित कहा गया। प्राचीन में इन संकेतों हेतु यावत्तावत् (या) तथा अन्य रंगों के संकेताक्षरों का प्रयोग किया जाता था, जैसे कालक (का), पीलक (पी), नीलक (नी), हरितक (ह) इत्यादि।

चन्द्र शृङ्गोन्नति – चन्द्र मण्डल सूर्य की किरणों से ही प्रकाशित होता है। सूर्य चन्द्र व पृथिवी की विभिन्न कोणात्मक स्थितियों के कारण पृथिवी से चन्द्र कलाओं के विभिन्न स्वरूप दिखाई देते हैं। चन्द्र बिम्ब पर पड़ रही सूर्य की किरणें एक अर्ध वलय का रूप बनाती है, जिसके दोनो छोर गाय के सींग के समान तीखे होते हुए फिर समाप्त हो जाते हैं, उसी आकृति को चन्द्र शृङ्ग कहा गया। संहिता ग्रन्थों में चन्द्र शृङ्ग की विभिन्न आकृतियों के अनुसार भी फल प्रतिपादन किया गया है। अतः सिद्धान्त ग्रन्थों में चन्द्र की शृङ्गोन्नति के साधन की विधियों का भी प्रतिपादन किया गया।

अयनांश – नाडी वृत्त व क्रान्ति वृत्त के सम्पात बिन्दु को अयन बिन्दु कहा गया। काल की गणना का आधार नाडीवृत्त है तथा राशि गणना का आधार क्रान्ति वृत्त है। सूर्य वर्ष में दो बार जब अयन बिन्दु

पर पहुंचता है तब दिन रात्रि का मान समान होता है व क्रान्तिमान शून्य होता है। उसे विषुवत दिन भी कहा जाता है। पृथिवी की अयन गति के कारण यह अयन बिन्दु भी चलायमान होता है। अतः विषुवत दिन भी परिवर्तित होता रहता है। अयन बिन्दु क्रान्तिवृत्त मण्डल के जिस स्थान पर लगा होता है, वह अयन बिन्दु का स्थान होता है तथा वह बिन्दु मेषादि (राशि चक्र के आरम्भ) बिन्दु से जितने अंश दूर होता है, वह अयनांश कहलाता है। वर्तमान में अयन की वार्षिक गति लगभग ५३ विकला मानी गई है।

अभ्यास प्रश्न –

१. बहुविकल्पात्मक प्रश्न –

(क) सिद्धान्त ज्योतिष संबंधित ग्रन्थ नहीं है –

(i) सिद्धान्तशिरोमणि (ii) सूर्यसिद्धान्त (iii) बृहज्जातक (iv) ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त

(ख) पञ्चसिद्धान्तिका ग्रन्थ के रचनाकार है –

(i) वराहमिहिर (ii) भास्कराचार्य (iii) आर्यभट्ट (iv) मुनीश्वर

(ग) पञ्चसिद्धान्तों में नहीं है –

(i) सौर सिद्धान्त (ii) पैतामह सिद्धान्त (iii) इन्द्र सिद्धान्त (iv) पौलिश सिद्धान्त

(घ) आर्यभट्ट द्वारा प्रतिपादित कटपयसंख्याबोध सिद्धान्त के अनुसार 'कि' अक्षर से किस संख्या का बोध होता है –

(i) १०० (ii) ३०० (iii) २०० (iv) ४००

(ङ) सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ का भाग नहीं है –

(i) बीजगणित (ii) लीलावती (iii) वास्तुविद्या (iv) गोलाध्यायः

(च) सिद्धान्तज्योतिष संबद्ध विषय नहीं है –

(i) काकिणीविचार (ii) दिग्ज्ञान (iii) बालारिष्टविचार (iv) अहर्गण साधन

(छ) आचार्य सुधाकरद्विवेदी द्वारा रचित ग्रन्थ नहीं है –

(i) वास्तवचन्द्रशृङ्गोन्नतिसाधन (ii) भाभ्रमरेखानिरूपण

(iii) दीर्घवृत्तलक्षण (iv) गोल परिभाषा

(ज) जयसिंह द्वारा बनवाई गई वेधशाला कहां नहीं है –

(i) दिल्ली में (ii) कश्मीर में (iii) जयपुर में (iv) काशी में

(झ) मुञ्जाल ने अयन की वार्षिक गति कितनी मानी है –

- (i) दश कला तुल्य (ii) चार कला तुल्य (iii) एक कला तुल्य
 (iv) आधी कला तुल्य
 (अ) गणेशदैवज्ञ विरचित करण ग्रन्थ है –
 (i) करणकुतूहल (ii) राजमृगाङ्क (iii) द्विगुणितकरण (iv) ग्रहलाघवकरण

२. लघूत्तरात्मक प्रश्न –

- (क) सिद्धान्त ज्योतिष के कितने भेद हैं?
 (ख) ज्योतिषशास्त्र के किस भेद में युगादि से ग्रह गणना होती है?
 (ग) वेदाङ्गज्योतिष ग्रन्थ के कर्त्ता कौन है?
 (घ) पृथिवी के चलन का प्रथम उदाहरण किसने प्रदान किया?
 (ङ) भारतीयबीजगणित में चक्रियचतुर्भुज प्रमेय का प्रतिपादन सर्वप्रथम किसने किया?
 (च) लघुमानसग्रन्थ के रचयिता कौन है?
 (छ) सरलत्रिकोणमिति ग्रन्थ की रचना किसने की?
 (ज) भास्कराचार्य विरचित करणग्रन्थ का क्या नाम है?
 (झ) किस आचार्य ने सर्वप्रथम गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त का प्रतिपादन किया?
 (ञ) चापीयत्रिकोणमिति ग्रन्थ के कर्त्ता कौन है?

1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

१. बहुविकल्पात्मक प्रश्नों के उत्तर –

- (क) (iii)
 (ख) (i)
 (ग) (iii)
 (घ) (i)
 (ङ) (iii)
 (च) (iii)
 (छ) (iv)
 (ज) (ii)
 (झ) (iii)
 (ञ) (iv)

२. लघूत्तरात्मक प्रश्नों के उत्तर –

- (क) तीन
- (ख) तन्त्र भेद
- (ग) आचार्य लगध
- (घ) आर्यभट्ट ने
- (ङ) ब्रह्मगुप्त ने
- (च) मुञ्जाल ने
- (छ) बापूदेव ने
- (ज) करणकुतूहल
- (झ) भास्कराचार्य ने
- (ञ) आचार्य नीलाम्बर झा

1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

- ज्योतिषशास्त्रस्येतिहासः, आचार्यलोकमणिदाहालविरचितः, प्रकाशन – चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, २००३ ई.
- लगधज्योतिष, लगधाचार्य कृत, व्याख्या – डॉ.पुनीताशर्मा, प्रकाशन – नागपब्लिशर्स, दिल्ली, २००८ ई.
- प्राचीनभारतीयगणित, लेखक – बलदेव उपाध्याय, प्राचीना भारतीय गणित, विज्ञान भारती, नई दिल्ली, १९७१ ई.
- गणित का इतिहास, लेखक – बृजमोहन, हिन्दी समिति सूचना विभाग, लखनऊ, उत्तरप्रदेश, १९६५ ई.
- भारतीय ज्योतिष, लेखक – शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित, हिन्दी अनुवाद – शिवनाथ झारखण्डी, प्रकाशन – उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, १९९० ई.।

1.12 सहायक पाठ्य सामग्री –

- भारतीय ज्योतिष का इतिहास, - उत्तर प्रदेश शासन, राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन, हिन्दी भवन, लखनऊ, १९७४ ई.

- सूर्यसिद्धान्तः, श्रीकपिलेश्वरशास्त्रीविरचितः, श्रीतत्त्वामृतभाष्योपपत्तिसहितः, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १९८७ ई.
- ग्रहलाघवम्, श्रीगणेशदैवज्ञविरचितम्, व्याख्या – डॉ.ब्रह्मानन्दत्रिपाठी, प्रकाशन – चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, २००८ ई.
- आर्यभटीयम्, आर्यभट्टप्रणीतम्, व्याख्या – डॉ.सत्येन्द्रशर्मा, प्रकाशन – चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, २००८ ई.
- सिद्धान्तशिरोमणिः, भास्कराचार्यविरचितः, व्याख्या – पं.सत्यदेवशर्मा, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, २०११ ई.

1.13 निबन्धात्मक प्रश्न –

१. सिद्धान्त ज्योतिष के भेदों का विस्तृत वर्णन करें।
२. आचार्य लगध व उनके कृतित्व का वर्णन करें।
३. सिद्धान्त ज्योतिष के विकास में भास्कराचार्य के योगदान का वर्णन करें।
४. राजा जयसिंह और उनके कृतित्व का वर्णन करें।
५. सिद्धान्त ज्योतिष में वर्णित विषयों का संक्षेप में विवेचन करें।
६. आचार्य ब्रह्मगुप्त का वैशिष्ट्य प्रदर्शित करें।

इकाई - 2 होरा ज्योतिष

इकाई की संरचना

- 2.1 प्रस्तावना
- 2.2 उद्देश्य
- 2.3 होरा स्कन्ध का परिचय
 - 2.3.1 होराशास्त्र का वैशिष्ट्य
 - 2.3.2 होराशास्त्र के विभाग
- 2.4 होराशास्त्र के प्रमुख ग्रन्थ व ग्रन्थकार
- 2.5 होराशास्त्र के प्रमुख विषय
 - 2.5.1 लग्नादि द्वादश भावों का परिचय
 - 2.5.2 ग्रहयोग परिचय व अन्य विषय
- 2.6 अप्रकाशित व अनुपलब्ध होरा ग्रन्थ
- अभ्यास प्रश्न
- 2.7 सारांश
- 2.8 पारिभाषिक शब्दावली
- 2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 2.11 सहायक पाठ्य सामग्री
- 2.12 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना -

त्रिस्कन्धात्मक ज्योतिषशास्त्र का होरास्कन्ध व्यक्तिविशेष का फलकथन करता है। अत एव आधुनिक काल में इसी स्कन्ध का सर्वाधिक प्रचार दिखाई देता है। आज के समय में साधारणतया लोग ज्योतिषशास्त्र शब्द से केवलमात्र फलित ज्योतिष को ही जानते हैं, परन्तु ज्योतिषशास्त्र फलित ज्योतिष से इतर भी अनेक विषयों का समावेश है। सामान्य जन को तो संहिता व सिद्धान्त ज्योतिष का परिचय भी नहीं है। होरा स्कन्ध के अन्तर्गत मुख्य रूप से जातक ताजिक प्रश्न आदि विषयों का समावेश है। होराशास्त्र जन्मकाल से प्रारम्भ कर मृत्यु पर्यन्त सभी शुभाशुभ विषयों का चिन्तन किया जाता है। इस पाठ में होराशास्त्र का साङ्गोपाङ्ग विवेचन किया गया है।

2.2 उद्देश्य –

इस पाठ के अध्ययन से आप –

- ज्योतिषशास्त्र के होरा स्कन्ध का परिचय प्रदान करने में समक्ष होंगे।
- होराशास्त्र का वैशिष्ट्य प्रतिपादित करने में कुशल होंगे।
- होराशास्त्र के प्रमुख ग्रन्थों व ग्रन्थकारों का परिचय प्राप्त करेंगे।
- होराशास्त्र में वर्णित मुख्य विषयों का परिचय प्राप्त करेंगे।
- होराशास्त्र के अनुपलब्ध व अप्रकाशित ग्रन्थों का भी परिचय प्राप्त करेंगे।

2.3 होराशास्त्र का सामान्य परिचय -

कालवाचक अहोरात्र शब्द के आदि व अन्तिम अक्षर के लोप से होरा शब्द की निष्पत्ति होती है। जैसा कि आचार्य वराहमिहिर ने बृहज्जातक में लिखा - “होरेत्यहोरात्रविकल्पमेके वाञ्छन्ति पूर्वापरवर्णलोपात्”। 'होरा' शब्द से लग्न तथा राशि के आधे भाग का ज्ञान होता है। होरा संबन्धित शास्त्र होराशास्त्र कहा जाता है। इस होराशास्त्र में किसी भी व्यक्ति जन्मकुण्डली का निर्माण कर द्वादश भावों व राशियों में स्थित ग्रहों की स्थिति, उनके बलाबल, दशा व अन्तरदशा का ज्ञान कर सुख-दुःख, इष्ट-अनिष्ट, उन्नति-अवनति, भाग्योदय आदि मानव जीवन में घटित होने वाली सभी घटनाओं व विषयों का ज्ञान किया जाता है। जैसा कि आचार्य भट्टोत्पल ने कहा है –

'प्रतिष्ठायात्राविवाहादीनां लग्नग्रहवशेन च शुभाशुभफलं जगति यया निश्चियते सा होरा'।

जातक के जन्मपत्रिका के माध्यम से पूर्वजन्म में किये प्रारब्ध कर्मों के आधार पर जातक के इस जन्म में होने वाले शुभाशुभ फल का ज्ञान किया जाता है। अतः शुभाशुभ कर्मों के फल का सूचक शास्त्र होराशास्त्र को कहा गया। सिद्धान्तशिरोमणि के वासनाभाष्य में कहा गया - 'जातकशास्त्रं प्रारब्धर्मविपाकव्यञ्जकम्'।

2.3.1 होराशास्त्र का वैशिष्ट्य -

‘अभिधेयं तु जगतः शुभाशुभनिरूपणम्’ महर्षि नारद के इस वचन से सिद्ध होता है कि इस जगत में प्राणिमात्र के शुभाशुभ निरूपण करना ही होराशास्त्र का मुख्य प्रयोजन है। होराशास्त्र मानवजीवन का पथप्रदर्शक है। जन्मकुण्डली के आधार पर द्वादश भावों के शुभाशुभ फल का विवेचन करना होराशास्त्र का प्रधान विषय है। लग्न के माध्यम से राशिचक्र का द्वादश भावों में विभाजन किया जाता है। उन ग्रहों के शुभाशुभ गुणों के आधार पर व्यक्ति के शुभाशुभ फल का कथन किया जाता है। जन्म कुण्डली मानव के पूर्वजन्मों में अर्जित कर्मों का मूर्तिमान रूप होती है। जैसे एक विशाल वटवृक्ष का सूक्ष्म रूप से समावेश उसके बीजाङ्कुरण में होता है उसी तरह प्रत्येक मानव के पूर्व जन्म जन्मान्तर में किये गये कर्मों का अंकन जन्मकुण्डली में होता है, होराशास्त्र उन्हीं पूर्वजन्मार्जित कर्मों के फल को प्रकट करता है। जैसा कि कहा है -

यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मणः पङ्क्तिम्।

व्यञ्जयति शास्त्रमेतत् तमसि द्रव्याणि दीप इव॥

होराशास्त्र में जातक का शुभाशुभ फलसम्बन्धि विचार सूक्ष्मतया किया जाता है। होराशास्त्र जीवन में चल रहे समस्त घटनाक्रम का यथार्थ रूप से ज्ञान करवाता है। यद्यपि ज्योतिषशास्त्र मानव जीवन के विविध पक्षों के ज्ञान के अनेक मार्ग है तथापि जैसा ज्ञान होराशास्त्र द्वारा होता है वैसा अन्य किसी शास्त्र से संभव नहीं है। होराशास्त्र दैवज्ञ को ऐसी दिव्यदृष्टि प्रदान करता है जिससे वह मनुष्य के ललाट पर विधाता द्वारा लिखित अक्षरमालिका को भी पढ़ने में समर्थ हो जाता है। जैसा कि शास्त्र वचन है -

विधात्रा लिखिता याऽसौ ललाटेऽक्षरमालिकाम्।

दैवज्ञस्तां पठेद् व्यक्तं होरानिर्मलचक्षुषा॥

यह होराशास्त्र मनुष्य के नर मस्तक पर लिखित भाग्यलेख का प्रकाशन ठीक उसी प्रकार करता है जिस प्रकार कि अन्धकार से आवृत घर में स्थित दीपक वस्त्रादि पदार्थों का प्रकाशन करता है। जन्मकुण्डली के आधार पर शुभाशुभ दशान्तर्दशा आदि का ज्ञान प्राप्त कर उसके अनुकूल वाणिज्य आदि कर्मों का, शुभ समय में यात्रा, विद्यारम्भ, धनादि मनोरथों की सिद्धि को जाना जा सकता है।

यह होराशास्त्र मनुष्यों को धनार्जन सहायता करता है, समुद्र रूपी विपत्ति में नौका और यात्रा के समय एक अच्छे सहयोगी मन्त्री के समान कार्य करता है। इस प्रकार अर्थार्जन में सहायक, विपत्ति के समय सहायक, सर्वकल्याणकारक लोकोपकारक जातकशास्त्र के अतिरिक्त कोई और शास्त्र नहीं है। जैसा कि सारावली ग्रन्थ में आचार्य कल्याण वर्मा ने कहा -

अर्थार्जने सहाय पुरुषाणामापदर्णवे पोतः।

यात्रसमये मन्त्री जातकमपहाय नास्त्यपरः॥

होराशास्त्र में जो भी फल प्रतिपादित किया जाता है वह पूर्वकृत कर्मों का परिपाक ही है। होराशास्त्र के अतिरिक्त किसी भी अन्य शास्त्र से कर्म के विषय में इस प्रकार से यथार्थज्ञान प्राप्त नहीं होता है। अतः इसका प्रयोग स्वतः सिद्ध ही है।

होराशास्त्र का मानवजीवन में अत्यधिक महत्व उपयोगिता है। सभी व्यक्ति अपना भविष्य जानने में सर्वदा उत्सुक होते हैं। इसी कारण ज्योतिषशास्त्र के होरा स्कन्ध का सर्वाधिक प्रचार दिखाई देता है। यह स्कन्ध शिशु के जन्म से मरण पर्यन्त सभी शुभाशुभ फलों को प्रकट करता है। यदि कोई दैवज्ञ किसी मनुष्य का उचित प्रकार से जन्मपत्र निर्मित करता है तो वह निश्चित रूप से उस मनुष्य के गुणों व प्रकृति व जीवन में घटित होने घटनाओं को सूक्ष्म रूप से जान सकता है। विधात्ता के अतिरिक्त कुशल दैवज्ञ ही यह कार्य कर सकता है। इस प्रकार जातक होराशास्त्र के माध्यम से अपने जीवन समस्त घटनाओं का ज्ञान कर सकता है। ग्रह नक्षत्रादि जनित दोष अरिष्टफल के शमनार्थ होरा शास्त्र भूत-भविष्य-वर्तमानकालिक घटनाक्रम का परिचय प्रदान कर सही दिशा में मनुष्य को अपने कर्म में प्रवृत्त करता है अतः होराशास्त्र का वैशिष्ट्य सार्वदेशिक सार्वभौमिक व सार्वकालिक है।

होराशास्त्र में न केवल ग्रहों की शुभाशुभ स्थिति के द्वारा मानव जीवन पर पडने वाले शुभाशुभ प्रभाव का विवेचन किया गया है अपितु अशुभ ग्रहों शान्ति के व निर्बलग्रहों की पुष्टि के उपायों का भी सम्यक रूप से निरूपण किया गया है। ग्रहों के अशुभ प्रभाव की शान्ति व निर्बल ग्रहों

के प्रभाव को पुष्ट करने हेतु मन्त्र प्रयोग, रत्न धारण, दान, औषधि स्नान इत्यादि उपायों का भी वर्णन होराग्रन्थों में प्राप्त होता है। इस प्रकार भविष्य में सम्भावित घटनाओं का ज्ञान कर मन्त्र, रत्नधारण, औषधि स्नान इत्यादि अनुष्ठानों द्वारा अशुभ प्रभावों निराकरण भी होराशास्त्र द्वारा किया जाता है।

2.3.2 होराशास्त्र के विभाग – आचार्यों ने होराशास्त्र को पांच भागों में विभक्त किया है –

जातक, ताजिक, रमल, प्रश्न और स्वप्न। उनमें भी जातक भाग का प्राधान्य अधिक है अतः होराशास्त्र ‘जातक’ शब्द से भी जाना जाता है। जैसा कि आचार्य कल्याणवर्मा ने कहा -

“जातकमिति प्रसिद्धं यल्लोके तदिह कीर्त्यते होरा।

अथवा दैवविमर्शनपर्यायः खल्वयं शब्दः॥”

जहां वर्षप्रवेशकालिक ग्रह-नक्षत्र-तिथि-राश्यादि के आधार पर फलादेश किया जाता है वह भाग ताजिक कहलाया। ताजिक भाग में मुख्य रूप से वर्षफल विचार किया जाता है। प्रश्न के समय फेकें गये पाशों के आधार पर फल कथन को रमल के अन्तर्गत माना गया। व्यक्ति के प्रश्न का तत्काल प्रश्नाक्षर अथवा प्रश्नकालिक ग्रह स्थिति के अनुसार फलकथन किया जाय वह प्रश्नशास्त्र कहलाया। स्वप्न के विवेचन से शुभाशुभ फल का निरूपण स्वप्नशास्त्र के अन्तर्गत समाहित हुआ। इन ताजिक रमल प्रश्न व स्वप्न पद्धतियों में फल प्रतिपादन हेतु जन्म लग्न कुण्डली की आवश्यकता नहीं होती। इन सभी के ग्रन्थों की भी भिन्न रूप से रचना की गई। अतः जातक शास्त्र ही होराशास्त्र के मुख्य अङ्ग के रूप में माना गया। अन्य ताजिकादि को तो कालान्तर में पृथक् शास्त्र के रूप में ही परिगणित किया गया। अतः इस पाठ में आप मुख्य रूप से जातकशास्त्र के विषय में ही ज्ञान प्राप्त करेंगे। अब होराशास्त्र अथवा जातक शास्त्र के प्रमुख आचार्य तथा उनके द्वारा विरचित ग्रन्थों के विषय में वर्णन किया जाता है।

2.4 होराशास्त्र के प्रमुख ग्रन्थ व ग्रन्थकार -

लग्नादि द्वादश भाव व उनमें स्थित राशि व ग्रहों की स्थिति के आधार पर फलादेश की प्रक्रिया कब प्रारम्भ हुई इसका कोई निश्चित काल तो ज्ञात नहीं है परन्तु यह प्रक्रिया नितान्त प्राचीन है ऐसा शास्त्रों के अवलोकन से ज्ञात होता है। वाजसनेयी संहिता में नक्षत्रदर्श का (30/10) और गणक का (30/20) उल्लेख प्राप्त होता है। इसी प्रकार से छान्दोग्योपनिषद में भी (7/1/2, 7/7/1) नक्षत्रविद्या का उल्लेख प्राप्त होता है।

विविध प्रमाणों से ज्ञात होता है कि नारद कश्यप वसिष्ठ पराशर भृगु आदि आचार्यों ने

जातकशास्त्र के ग्रन्थों का प्रणयन किया था। आज भी पाराशर भृगु जैमिनी प्रणीत कुछ फलितज्योतिष के ग्रन्थ प्राप्त होते हैं परन्तु उनकी रचनाशैली व विषया नवीन है लगते हैं। पौरुषेय ग्रन्थों में वराहमिहिर रचित बृहज्जातक, लघुजातक, योगयात्रा, कल्याणवर्मा रचित सारावली, केशव रचित जातकपद्धति, गणेशदैवज्ञ का जातकालङ्कार, वैद्यनाथ का जातकपारिजात, दुण्डिराज का जातकाभरण, जीवनाथ का भावकुतूहल और बलभद्र रचित होरारत्न आदि कुछ प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। अब उन ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करते हैं।

1. बृहत्पाराशरहोराशास्त्र -

बृहत्पाराशरहोराशास्त्र पाराशर मुनि द्वारा विरचित एक प्रसिद्ध होराग्रन्थ है। पाराशर व मैत्रेय के संवाद रूप में यह ग्रन्थ पश्चाद्वर्ति किसी दैवज्ञ ने सङ्ग्रह कर लिखा। मुम्बई तथा काशी से प्रकाशित संस्करणों में महान् पाठभेद दिखाई देता है। इस ग्रन्थ में 98 अध्याय हैं। ग्रन्थ का काशी संस्करण सीताराम दैवज्ञ ने 1850 शकाब्द में सम्पादित कर प्रकाशित किया। इस ग्रन्थ में सभी जातकसम्बद्ध विषयों का निरूपण किया गया है।

पाराशरहोराशास्त्र का लघुरूप व मध्यमरूप भी प्रकाशित हुआ। इसका लघुरूप 'लघुपाराशरी' या 'उडुदायप्रदीप' कहलाता है। पाराशरहोराशास्त्र के वचनों के साररूप से लघुपाराशरी ग्रन्थ की रचना हुई। जैसा कि ग्रन्थारम्भ में कहा -

वयं पाराशरी होरामनुसृत्य यथामतिः।

उडुदायप्रदीपपाख्यं कुर्मो देवविदां मुदे॥

लघुपाराशरी ग्रन्थ में संज्ञाध्याय, योगाध्याय, आयुर्विचाराध्याय, दशाफलाध्याय और मिश्रकाध्याय संज्ञक पांच अध्याय और 45 श्लोक हैं। यह ग्रन्थ किसने कब लिखा यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। इस ग्रन्थ में मुख्यतया ग्रहों के दशाफल का वर्णन किया गया है। आज भी ज्योतिषी इस ग्रन्थ में वर्णित नियमों के आधार पर ही दशाफल करते हैं। वराहमिहिर ने अपने बृहज्जातक ग्रन्थ में 'शक्तिपूर्व' नाम से पाराशर का स्मरण किया है।

2. भृगु संहिता -

ऋषि भृगु रचित ज्योतिष शास्त्र के तीनों स्कन्धों के प्रवक्ता थे परन्तु आज उनकी संहिता का फलित भाग ही उपलब्ध होता है। किंवदन्ती है कि उनकी संहिता में करीब साढ़े सात करोड़ (7,46,48,600) जन्मकुण्डलियां वर्णित की गईं व प्रति कुण्डली में 60 से अधिक श्लोकों के द्वारा

फलादेश भी बताया गया, परन्तु वराहमिहिर कल्याणवर्मा भट्टोत्पला आदि ने अपने ग्रन्थों में कहीं भी इस बृहत्काय ग्रन्थ के विषय में कोई उल्लेख नहीं किया। न हि इतिहास में कहीं ऐसी गुरुकुल पद्धति सुनी गई जिसमें ऐसे ग्रन्थ के निर्माण का उल्लेख हो। इस विषय में इतना ही अनुमान किया जा सकता है कि यह आर्ष ग्रन्थ प्रायः दाक्षिणात्य प्रदेश में प्रचलित था जिसका उत्तर भारत बहुत काल के उपरान्त ज्ञान हुआ।

3. वराहमिहिरादि आचार्यों द्वारा उद्धरित ग्रन्थ एवं आचार्य -

वराहमिहिर भट्टोत्पल कल्याणवर्मा आदि आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में विविध पूर्ववर्ती आचार्यों के वचन व नाम च उद्धरित किये हैं। उनके ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं होते हैं। जिनके नाम हैं - गर्गसंहिता, मयहोराशास्त्र, यवनहोराशास्त्र, माणित्यहोराशास्त्र, जैवहोराशास्त्र, विष्णुगुप्तहोराशास्त्र, देवस्वामीहोराशास्त्र, सिद्धसेनहोराशास्त्र, यवनेश्वरहोराशास्त्र, बादरायणहोराशास्त्र आदि। अब समुपलब्ध होरा ग्रन्थों का परिचय प्रदान किया जाता है

4. जैमिनीसूत्रम् - जैमिनीसूत्र ग्रन्थ आज उपलब्ध होता है। गद्यात्मक सूत्ररूप में रचित इस ग्रन्थ में चार अध्याय हैं। वराहमिहिर कल्याणवर्मा भट्टोत्पल आदि ने इस ग्रन्थ का उल्लेख नहीं किया है परन्तु ज्योतिषशास्त्र के प्रवर्तक आचार्यों में जैमिनीऋषि का नाम प्राप्त होता है। किन्तु इसकी शैली सूत्रमयी प्राचीन है। फलित पद्धति भी भिन्न है। यह ग्रन्थ शकोदय काल में रचित है। इस ग्रन्थ की अनेक टीकाएँ उपलब्ध होती हैं। इस ग्रन्थ का मलावार वा दाक्षिणात्य प्रदेश में विशेष प्रचार देखा गया है।

5. बृहज्जातकम् -

वस्तुतः बृहज्जातक पौरुषेय होरा ग्रन्थों में प्रथम माना गया है। इस ग्रन्थ में सताईस 27 अध्याय हैं व अन्तिम उपसंहाराध्याय को अट्ठाईसवाँ माना गया है। विषय की संक्षिप्तता, स्पष्टता सरलतापूर्वक प्रस्तुति के साथ उकृष्ट काव्यात्मकता वराहमिहिर के इस ग्रन्थ का वैशिष्ट्य है। अभिव्यक्ति का सौष्ठव आचार्य वराहमिहिर का विशेष गुण है। जैसा कि कहा है -

सत्योपदेशो वरमत्र किन्तु कुर्वन्त्ययोग्यं बहुवर्गणाभिः।

आचार्यकत्वञ्च बहुघ्नताया येकं तु यद्भूरि तदेव कार्यम्॥

आचार्य वराहमिहिर ने प्राचीन आचार्यों की जहां कहीं भी त्रुटी देखी उनका निर्भीक रूप से संकेत किया, यह उनका एक विशेष गुण है। यथा-

पूर्वशास्त्रानुसारेण मया वज्रादयः कृताः।

चतुर्थे भवने सूर्याज्ज्ञसितौ भवतः कथम्॥

इस ग्रन्थ की अनेक टीकाएँ लिखी गई। उनमें से भट्टोत्पल की विवृति सर्वाधिक प्रामाणिक व प्राचीन है। इसी ग्रन्थ के बलभद्र महीधर आदि आचार्यों ने भी टीका ग्रन्थ प्रणीत लिखे हैं। इस ग्रन्थ की सुबोधिनि टीका भी जानकारी मिलती है।

6. लघुजातकम् -

लघुजातक वराहमिहिर रचित बृहज्जातक का सार संक्षेप रूप ग्रन्थ है। जैसा कि –

होराशास्त्रं वृत्तैर्मया निबद्धं निरीक्ष्यं शास्त्राणि।

यत्तस्याप्यार्याभिः सारमहं सम्प्रवक्ष्यामि॥

लघुजातक की भट्टोत्पल प्रणीत टीका प्रसिद्ध है। गणेश दैवज्ञ के अनुज अनन्त दैवज्ञ रचित टीका भी प्राप्त होती है।

7. सारावली -

सारावली ग्रन्थ के कर्ता आचार्य कल्याणवर्मा हैं। यह ग्रन्थ 54 अध्यायों में विभक्त है। ग्रन्थ में कल्याणवर्मा स्वयं को 'व्याघ्रपदीश्वर' संज्ञा देते हैं। उनका समय 550 शकाब्द अनुमानित है। कल्याणवर्मा के कथन से यह ज्ञात होता है कि आचार्य वराहमिहिर ने होराशास्त्र के विषयों का सार संक्षेप बृहज्जातक ग्रन्थ में किया परन्तु उसके द्वारा तेन सम्पूर्ण विषयों का वर्णन नहीं किया। अतः एव उसकी पूर्ति हेतु इस ग्रन्थ का प्रणयन किया गया। जैसा कि ग्रन्थ में वर्णन किया-

राशिदशवर्गभूपतियोगायुर्दायतो दशादीनाम्।

विषयविभागं स्पष्टं कर्तुं न शक्यते यतस्तेन॥

कल्याणवर्मा का विषय चयन, प्रस्तुति सौष्ठवं और स्पष्टता अत्यन्त विशिष्ट है। वस्तुतः यह ग्रन्थ होरा रूपी तृष्णा के प्यासे जनों के लिये शीतल के जल के समान है।

8. श्रीपतिजातकपद्धति -

जातकपद्धति ग्रन्थ की रचना रत्नामाला ग्रन्थ के प्रणेता श्रीपति ने की। इस ग्रन्थ की भी रत्नामाला के समान माधव ने टीका लिखी। श्रीपति का समय 921 शकाब्द अनुमानित है।

9. सर्वार्थचिन्तामणि -

सर्वार्थचिन्तामणि वेङ्कटाद्रिदैवज्ञ द्वारा प्रणीत होराग्रन्थ है। ये जातकपारिजात के प्रणेता वैद्यनाथ दैवज्ञ के पिता थे। इनका स्थितिकाल 1240 शकाब्द अनुमानित है।

10. जातकपारिजात -

जातकपारिजात केशवीय जातक ग्रन्थ प्रणेता केशव के गुरु वैद्यनाथ द्वारा प्रणीत है। उनका स्थितिकाल 1300 शकाब्द अनुमानित है। जातकशास्त्र का यह एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ की कपिलेश्वर विरचित सुधाशालिनी टीका प्रसिद्ध है।

11. केशवीयजातकपद्धति – नन्दिग्राम निवासी केशव दैवज्ञ ने इस ग्रन्थ की रचना की। इस लघुकाय ग्रन्थ का भी बहुत प्रचार हुआ। इस ग्रन्थ में 40 ही श्लोक हैं, ग्रन्थ के प्रक्षिप्त श्लोक में ऐसा वर्णन मिलता है। जैसा कि वर्णन है –

नन्दिग्रामे केशवो विप्रवर्यो योऽभूद्धोराशास्त्रसङ्घं विलोक्य।

तेनाक्तेयं पद्धतिर्जातकीया चत्वारिंशद् वृत्तबद्धा सुबोधा॥

इस ग्रन्थ में भावसाधन, भावसन्धि का आनयन, अयनादि बलसाधन, चेष्टाबल, इष्टकष्ट, दशान्तर्दशा, अष्टकवर्ग आदि विषय साररूप में निरूपित किये गये हैं। इस ग्रन्थ के केशव, विश्वनाथ, नारायण व दिवाकर रचित टीकाग्रन्थ प्राप्त होते हैं। इस ग्रन्थ के अनेक संस्करण प्राप्त होते हैं। इसका समय शकाब्द माना गया है।

12. जातकाभरण -

जातकाभरण आचार्य दुण्ढिराज द्वारा 1460 शकाब्द में लिखा गया। वे नृसिंह दैवज्ञ के पुत्र दैवज्ञ ज्ञानराज के शिष्य थे। इस ग्रन्थ में सभी फलित के विषयों का क्रमानुसार विवेचन किया गया है। सरलता और स्पष्टता इस ग्रन्थ का वैशिष्ट्य है। अतः सर्वसाधारण के लिये भी यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी है। आचार्य सुधाकर द्विवेदी के मत से इस ग्रन्थ की श्लोक संख्या लगभग 2000 है।

13. जातकालङ्कार -

गणेशदैवज्ञ प्रणीत यह ग्रन्थ आकार में लघु है परन्तु जातकशास्त्र के सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रन्थों में यह एक है। इस ग्रन्थ में छः अध्याय हैं – १.संज्ञा २.भाव ३.योग ४.विषकन्या ५.आयुर्दाय और ६.व्यत्ययस्थ भावफल। गणेश दैवज्ञ, आचार्य गोपाल के पुत्र और आचार्य शिवदास के पौत्र थे। यह ग्रन्थ 1535 शकाब्द में लिखा गया। इस ग्रन्थ की हरभानु विरचित टीका प्राप्त होती है।

14. होरारत्न –

सुविस्तृत यह ग्रन्थ आचार्य दामोदर के पुत्र बलभद्र दैवज्ञ ने 1557 शकाब्द में लिखा। इस

ग्रन्थ में सुविस्तृत दश अध्याय हैं। इस ग्रन्थ का वैशिष्ट्य है कि इसमें 90 से अधिक ग्रन्थकार व ग्रन्थों का उल्लेख किया गया है। यह ग्रन्थ होरा विषयों का एक विश्वकोश ही कहा जा सकता है।

15. भावकुतूहल –

यह ग्रन्थ 1780 शकाब्द के समय आचार्य नीलाम्बर के अनुज व आचार्य शम्भुनाथ के पुत्र जीवनाथ ने लिखा। इस ग्रन्थ में 17 अध्याय हैं। काव्यात्मकता और भाव सौष्ठव इस ग्रन्थ का वैशिष्ट्य है। इस ग्रन्थ में दैवज्ञ जीवनाथ ने सामुद्रिक लक्षण संबंधित अध्याय भी सम्मिलित किया है जो कि अन्य होरा ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं होता। इस ग्रन्थ की भाषा सरल और सुगम है। विषकन्या आदि योगों को परिहार भी इस ग्रन्थ में वर्णन किया गया जो कि जातकालङ्कार आदि अन्य ग्रन्थों में प्राप्त नहीं होता।

16. जातकादेशमार्ग -

यह ग्रन्थ दाक्षिणात्य प्रदेश में बहुप्रचलित कतिपय फलितज्योतिष ग्रन्थों का सार संक्षेप रूप है। यह ग्रन्थ किस समय किसके द्वारा सङ्कलित किया गया यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है परन्तु 1500 शकाब्द से पूर्व ही लिखा गया ऐसा ज्ञात होता है। इस ग्रन्थ में संज्ञा, निषेक, बालारिष्ट, आयुर्दाय, मरणयोग, अष्टक-वर्ग, भावविचार, गोचरफल, दशाफल, भार्या विचार, आनुकूल्य, पुत्र चिन्ता, सन्तान चिन्ता, मिश्रक, आदि सप्तदश (17) प्रकरण हैं।

2.5 होराशास्त्र के प्रमुख विषय -

होरास्कन्ध के अन्तर्गत कौनसे विषयों का समावेश है इस सन्दर्भ में आचार्य वराहमिहिर ने बृहत्संहिता ग्रन्थ में वर्णन किया - “होराशास्त्रेऽपि च राशिहोराद्रेष्काणनवांशकद्वादशभागत्रिंशद्भागबलाबलपरिग्रहो ग्रहाणां दिक्-स्थान-काल-चेष्टाभिरनेप्रकाबल- निर्धारणं प्रकृतिधातुद्रव्यजाति चेष्टापरिग्रहो निषेकजन्मकाल विस्मानपन प्रत्ययादेश सद्योमरण-आयुर्दाय-दशान्तर्दशा -अष्टकवर्ग-राजयोग-चन्द्रयोग-द्विग्रहादियोगानां नाभसादीनां च योगानां फलानि-आश्रय भावावलोकन-निर्याणगत्यूनूकानि तत्कालप्रश्रुभाशुभनिमित्तानि विवाहादीनां च कर्मणां करणम्॥”

जैसा कि पूर्व में बताय गया जातकशास्त्र अथवा होराशास्त्र में जन्मकाल व जन्मस्थान के आधार पर निर्मित कुण्डली के आधार पर फलादेश किया जाता है। अतः सभी जातक ग्रन्थों में सर्वप्रथम जन्मकुण्डली के मुख्यतत्त्वों का विवेचन किया जाता है यथा – राशि, नक्षत्र, ग्रह एवं भावों

का वर्णन। आकाशमण्डल में अनेक ज्योतिर्पिण्ड दिखाई देते हैं उनमें से जो सर्वदा स्थिरगतिक दिखाई देते हैं उन्हें नक्षत्र, ऋक्ष अथवा भ शब्द से जाना गया। यद्यपि ब्रह्माण्ड एक अविभाज्य, विभु और अनन्त है तथापि ज्योतिर्पिण्डों की स्थिति के अध्ययन हेतु आचार्यों ने समस्त ज्योतिषचक्र को 27 सताईस भागों में विभाजित किया (कुछ आचार्यों ने 28 भागों में भी विभाजित किया) उन्हें नक्षत्र कहा गया। उनमें भी प्रत्येक नक्षत्र को भी चार पादों में विभाजित किया। इस प्रकार से नक्षत्रों के कुल 108 पाद हुए। जब इन पादों को बारह भागों में विभाजित किया गया तब नौ पाद वाले एक भाग को 'राशि' कहा गया।

सूक्ष्मतया अवलोकन से पूर्वाचार्यों ने स्पष्टया जाना कि जन्म के समय जो जो भी जन्मनक्षत्र, राशि, लग्न, वार, तिथि आदि होते हैं वह मनुष्य भी उसी प्रकृति व स्वभाव वाला होता है। अतः उन सभी का सूक्ष्मतया ज्ञान आवश्यक होता है अतः जातक ग्रन्थों में सर्वप्रथम राशिशीलाध्याय व ग्रहस्वरूपवर्णनाध्याय प्राप्त होते हैं। उनमें राशीयों की संज्ञाये, स्वरूप, स्थान, सलिलादि संज्ञा, चतुष्पदादि संज्ञा, धातु मूल जीव आदि संज्ञा, ब्राह्मण आदि वर्ण, वर्ण(रंग), बलाबल, स्वामी, उच्च नीच मूलत्रिकोण आदि, दशवर्ग, भावों के संज्ञा, भावों के कारक, भावों की केन्द्र आदि संज्ञा, उदयमान, राशीयों के शुभाशुभ भाग, वास देश, प्लवत्व निरूपण आदि विषयों का वर्णन किया गया।

उसमें ग्रहों के संज्ञा स्वरूप गुणभेद आदि का वर्णन किया गया। जातकग्रन्थों में वर्णन किया गया कि न केवल ग्रह मनुष्य के शुभाशुभ का विवेचन करते हैं अपितु मनुष्य स्वयं ही ग्रहमय होता है जिसकी आत्मा सूर्य, मन चन्द्र, शक्ति मंगल, वाणी बुध, ज्ञान गुरु, सुख शुक्र और दुःख शनि है। जैसा कि वर्णन है –

कालात्मा दिनकृन्मनस्तु हिमगुः सत्त्वं कुजो ज्ञो वचः।

जीवो ज्ञानसुखे सितश्च मदनो दुःखं दिनेशात्मजः॥

इनमें सूर्य, मंगल, शनि व राहु पाप ग्रह हैं, चन्द्र, बुध, बृहस्पति और शुक्र सौम्य ग्रह हैं किन्तु क्षीण चन्द्र और क्रूर ग्रहों से युक्त बुध भी पाप ग्रह माने जाते हैं। राशि, भाव, उदयास्त, बाल-तरुण-वृद्धत्व अवस्था आदि के आधार पर ग्रह शुभाशुभ फल देते हैं उनमें भाव मध्य में गत ग्रह पूर्ण और सन्धि में स्थित ग्रह कोई फल प्रदान नहीं करता है।

जातक के जन्म के समय जो राशि क्षितिज के पूर्वभाग में उदय होती है वहीं लग्नराशि कहलाती है। उसी से आरम्भ कर वामावर्त क्रम से द्वादश भाव जन्मकुण्डली में अवस्थित होते हैं।

जन्मकाल में जो लग्न होता है उससे आरम्भ कर द्वादश भावों में राशियों की स्थापना की जाती है। यदि कोई जातक मिथुन राशि पूर्व में स्थित होने पर जन्म लेता है तो उसका मिथुन लग्न ही होता है अतः उसी से प्रारम्भ कर भावों की गणना की जाती है।

2.5.1 लग्नादि द्वादश भावों का परिचय –

जन्म कुण्डली में लग्न स्थान की आद्य, वपु या शरीर संज्ञा होती है। द्वितीय को धन भाव, तृतीय को सहज भाव, चतुर्थ को सुख भाव, पञ्चम को सुत भाव, षष्ठ को रिपु भाव, सप्तम को कलत्र भाव, अष्टम को मृत्यु भाव, नवम को धर्म स्थान, दशम को कर्म भाव, एकादश को आय भाव और द्वादश स्थान को व्यय भाव कहा गया। इस द्वादश भावों में ग्रहों व राशियों की स्थिति के अनुसार शुभाशुभफल किया जाता है। इन बारह भावों में लग्न चतुर्थ सप्तम व दशम को केन्द्र स्थान कहा गया।

होरा ग्रन्थों में ग्रह, भाव, राशि आदि के वर्णन के उपरान्त जातक के जन्म के विषय में विचार किया गया। अतः वियोनि जन्म, निषेक विधि, सुतादि योगकारक ग्रह स्थिति, क्लीब पुरुष स्त्री जन्म योग, दो तीन या अधिक सन्तति के जन्म के योग, नालवेष्टित सर्पवेष्टित जन्म आदि योग, प्रसूति काल ज्ञान, औरस क्षेत्रज आदि ज्ञापक ग्रह स्थिति, अनूढ, दत्तक, जारजत्व कारक योग, जन्मस्थान विचार, सूतिकागृह, दीप द्वार ज्ञान, उपसूतिका संख्या ज्ञान, जातक स्वरूप, चिह्न आदि का ज्ञान इत्यादि विषयों का चिन्तन किया गया। जन्म के उपरान्त सर्वप्रथम जातक की आयु का चिन्तन किया गया। यदि किसी मनुष्य की आयु ही न हो तो उसके जीवन के अन्य विषयों के फलादेश का चिन्तन व्यर्थ ही होता है। अतः सर्वप्रथम जातक की जन्म कुण्डली में आयु का ही चिन्तन किया जाता है। जैसा कि वचन है -

पूर्वमायुः परीक्षेत् पश्चाल्लक्षणमादिशेत्।

आयुहीनाञ्च नराणां लक्षणैः किं प्रयोजनम्॥

अतः जातक ग्र में फलादेश कथन से पूर्व सर्वप्रथम जातक के अरिष्ट योग उनके भङ्गकारक योगों का वर्णन किया गया। आयु के भेद, अरिष्टकारक ग्रहस्थितियां, माता पिता सहित जातक के मरण के योग, गर्भ के मासों के स्वामी, अल्प मध्यम व दीर्घायु योग, अरिष्टभङ्गकारक ग्रहस्थितियां, चन्द्रकृत, शुभग्रहकृत, गुरुकृत, लग्नेशकृत और राहुकृत अरिष्टभङ्ग योग, अमितायु पूर्णायु आदि योगों का विशेष रूप से वर्णन किया गया।

यदि जातक की कुण्डली में बालारिष्ट योग हो तो वह 12 वर्ष तक ही जीवित रहता है, यदि बालारिष्ट न हो तो कितने वर्ष तक उसकी आयु होगी इस विषय में सहज जिज्ञासा होती है, अतः

होरा ग्रन्थों में आयु निर्धारण की अनेक विधियों का वर्णन किया गया। जैसे - पिण्डायु, निसर्गायु, लग्नायु, अंशकायु, रश्मिजायु, चक्रायु, दशायु इत्यादि। न केवल आयु का निर्धारण अपितु मृत्यु का कारण, स्थान व दिशा का ज्ञान भी वर्णित किया गया तथा मृत्यु के उपरान्त मृतक की गति किस प्रकार की होगी इस विषय में चिन्तन किया गया है।

आयु ज्ञान के उपरान्त फलादेश संबंधित विविध विषयों का वर्णन किया गया। जातक के शुभाशुभ काल का ज्ञान ग्रहों की दशान्तर्दशा के आधार पर ही होता है अतः आयु ज्ञान के उपरान्त दशान्तर्दशा साधन के विधियों का वर्णन किया गया। दशा के भी विविध प्रकारों का वर्णन किया गया। जैसे – विशोत्तरी दशा, अष्टोत्तरी दशा, षोडशोत्तरी दशा, चर दशा, योगिनी दशा, कालचक्र दशा इत्यादि।

2.5.2 ग्रहयोग परिचय व अन्य विषय –

कुछ ऐसे ग्रहयोग होते हैं जिनके प्रभाव से जातक विशेष शुभफल प्राप्त करता है। उन ग्रहों को राजयोग संज्ञा प्रदान की गई। उनमें भी पञ्चताराग्रहों के द्वारा निर्मित पञ्चमहापुरुषयोग विशेष रूप से सभी जातक ग्रन्थों में वर्णित किये गये। मंगल द्वारा रुचक योग, गुरु द्वारा हंस योग, बुध द्वारा भद्र योग, शुक द्वारा मालव्य योग और शनि द्वारा शश योग। यदि बृहस्पति चन्द्र स्थान से केन्द्र भावों में नीच व अस्त रहित हो तो गजककेसरी योग होता है। जैसा कि कहा है -

"केन्द्रस्थिते देवगुरौ मृगाङ्काद्योगस्तदाहुर्गजकेसरीति"।

परन्तु कभी कभी राजयोग होते हुए भी जातक दरिद्र ही होता है। उसका कारण होता है राजयोग का भङ्ग। जातकपारिजात ग्रन्थ में चार योगों का वर्णन है जिनके द्वारा अन्य शुभ योग भी भङ्ग हो जाते हैं। उन्हें राजभङ्ग योग कहा गया जैसे रेका संज्ञक योग, दरिद्र योग, केमद्रुम योग आदि। जैसा कि जातक पारिजात ग्रन्थ में वर्णन किया गया -

केचिद्योगा राजयोगस्य भङ्गा केचिद्रेका नाम दारिद्र्ययोगाः।

केचित्प्रेष्याः के च केमद्रुमाख्यास्ते चत्वारो जातभङ्गाकराः स्युः।

राजयोग के अतिरिक्त भी अनेक योग होते हैं जिनके द्वारा जन्मकुण्डली का फलादेश किया जाता है। उनके नाम निम्न प्रकार से हैं – रोग योग, भास्कर इन्द्र मरुत् बुध योग, सुनफा अनफा दुरुधरा योग, पारिजात आदि योग, अधम आदि योग, लग्नाधि योग, चन्द्राधि योग, वेशि वाशी आदि योग, अमला पर्वत काहल मालिका चामर मृदङ्ग शङ्ख भेरी श्रीनाथ शारद मत्स्य कूर्म खड्ग लक्ष्मी कुसुम कलानिधि हरिहरविधि अंशावतार आदि योग। योगों में बत्तीस ३२ नाभसयोगों का

विशेष महत्त्व वर्णित किया गया। उनमें आकृतियों के आधार पर निर्मित नौ कूट छत्र चाप आदि बीस आकृति योग, संख्या के आधार पर निर्मित वल्लकी दामिनी आदि सप्त संख्या योग, भावाश्रय के आधार पर निर्मित रज्जु मुशल आदि तीन योग, स्रक व सर्प संज्ञक दो दल योग। इस सभी योगों के भेद ग्रहों की स्थिति के भेद से कुल 1800 भेद यवनाचार्यों ने बताये हैं। जैसा कि आचार्य वराहमिहिर ने कहा -

यवनैस्त्रिगुणा हि षट्शती सा कथिता विस्तरतोऽत्र।

इसके उपरान्त दो, तीन, चार ग्रहों के संयोग से होने वाले फलों का वर्णन किया गया। जन्मकुण्डली में स्थित ग्रहों के अतिरिक्त तात्कालिक आकाश में स्थित ग्रह भी निरन्तर मनुष्य को प्रभावित करते हैं। उनके प्रभाव को जानने के लिये आचार्यों ने अष्टकवर्गविधि का निरूपण किया। अष्टकवर्ग पद्धति में राहु केतू के अतिरिक्त लग्नसहित सप्त ग्रहों के वर्गों का निर्माण किया जाता है। उन अष्ट वर्गों के द्वारा गोचर के ग्रहों का फलादेश किया जाता है।

जातक ग्रन्थों में स्त्रीयों की जन्म कुण्डली के आधार पर फलकथन कुछ भिन्न कहा गया। इसी कारण जातक ग्रन्थों में पृथक् रूप से स्त्रीजातकाध्याय का वर्णन किया गया। उसके उपरान्त लग्नादि द्वादश भावों में, मेषादि द्वादश राशियों में, अश्विनी आदि सप्तविंशति नक्षत्रों में ग्रहों की स्थिति से होने वाले फलों का विस्तार से वर्णन किया गया। ग्रहों की दशान्तर्दशा के फल भी प्रायशः सभी प्रमुख जातकग्रन्थों में वर्णित किये गये हैं। ये ही मुख्य विषय सभी जातक ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। इनके अतिरिक्त कालचक्र दशा निरूपण, विषकन्य आदि योग, प्रव्रज्या योग, दृष्टि फल, प्रकीर्ण विषय, नष्ट जातक, द्रेष्काण स्वरूप, नैर्याणिक, राशिशील, बल साधन, सन्तान विचार इत्यादि विषय भी विविध ग्रन्थों में वर्णित किये गये हैं।

2.6 अप्रकाशित व अनुपलब्ध होरा ग्रन्थ –

कुछ अन्य भी अवशिष्ट हैं जिनका वर्णन इस पाठ में नहीं किया गया। उनमें से अधिकांश ग्रन्थ आज प्रकाशित रूप से उपलब्ध नहीं होते हैं। जैसे – सत्याचार्य प्रणीत ध्रुवनाडी ग्रन्थ, वराहमिहिर रचित स्वल्पजातकम्, लल्लाचार्य प्रणीत जातकसार, विद्यारण्य प्रणीत भावनिर्णय, अनन्तदैवज्ञ प्रणीत अनन्तजातकपद्धति, शिवदास दैवज्ञ प्रणीत जातकोत्तम, गुणाकर प्रणीत जातकादेश, नृहरिदैवज्ञ प्रणीत जातकसार, दैवज्ञदिवाकर द्वारा प्रणीत पद्मजातक, सोमदैवज्ञ प्रणीत पद्धतिभूषण, गोविन्द प्रणीत होराकौस्तुभ, नारायण दैवज्ञ प्रणीत होरासारसुधानिधि, राघव प्रणीत पद्धतिचन्द्रिका, गोविन्दाचारि प्रणीत साधनसुबोध, अनन्ताचार्य प्रणीत अनन्तफलदर्पण। कुछ

होराग्रन्थों के नाम केशवीयजातकपद्धति की टीका में उल्लिखित किये गये हैं, जैसे - श्रीधरपद्धति, महालुगिपद्धति, दामोदरपद्धति, रामकृष्णपद्धति, केशवपद्धति, बल्लयुपद्धति, होरामकरन्द और लघुपद्धति। इस प्रकार से ज्ञात होता है कि जातकग्रन्थों की एक सुविस्तृत परम्परा थी।

2.7 सारांश –

आधुनिक समय में होरा स्कन्ध ज्योतिष शास्त्र सर्वाधिक उपयोगी और प्रचलित स्कन्ध है। क्योंकि यह व्यक्तिविशेष का फलकथन करता है। सभी मनुष्य अपना भविष्य भूत वर्तमान का फल श्रवण करने के उत्सुक होते हैं। इसी कारण होराशास्त्र का वर्तमान समय में सर्वाधिक प्रचार है। होराशास्त्र के पञ्चभागों में सभी भाग पृथक् शास्त्र के रूप में विख्यात हो चुके हैं। अतः जातकशास्त्र ही आज के समय में होराशास्त्र के रूप में स्वीकार किया जाता है। ताजिकशास्त्र, प्रश्नशास्त्र, स्वप्नशास्त्र, रमलशास्त्र आदि का तो अब पृथक् अस्तित्व ही हो गया है। उन शास्त्रों के स्वतन्त्र ग्रन्थ भी उपलब्ध होते हैं। इस पाथ में होराशास्त्र का परिचय, वैशिष्ट्य, विभाग, प्रमुख ग्रन्थ, ग्रन्थकार और मुख्य विषयों का अत्यन्त संक्षेप से परिचय प्रदान किया गया।

अभ्यास प्रश्न –

१. बहुविकल्पात्मक प्रश्न -

1. किस शब्द के आदि व अन्तिम वर्ण के लोप से 'होरा' शब्द बना -
(क) महोरात्र (ख) अहोरात्र (ग) सहोरात्र (घ) दहोरात्र
2. विधाता द्वारा ललाट पर लिखित अक्षरमालिका को कौन पढ़ता है?
(क) राजा (ख) कृषक (ग) दैवज्ञ (घ) सेनापति
3. बृहत्पाराशरहोराशास्त्र ग्रन्थ का अनुसरण कर साररूप में रचित ग्रन्थ कौनसा है?
(क) सारावली (ख) बृहज्जातक (ग) लीलावती (घ) लघुपाराशरी
4. जैमिनीसूत्रग्रन्थ में कितने अध्याय हैं?
(क) चार (ख) तीन (ग) पांच (घ) आठ
5. सारावली ग्रन्थ के कर्ता कौन हैं?

(क) आचार्य वराहमिहिर (ख) भास्कराचार्य (ग) गणेश दैवज्ञ (घ) आचार्य कल्याण वर्मा

6. जीवनाथ द्वारा रचित जातक ग्रन्थ कौनसा है?

(क) भावकुतूहल (ख) जातकालङ्कार (ग) लघुजातक (घ) जातकपद्धति

7. जन्मकुण्डली का द्वितीय भाव कहलाता है -

(क) मृत्यु भाव (ख) कर्म भाव (ग) धन भाव (घ) सन्तान भाव

8. जन्मकुण्डली में सर्वप्रथम क्या विचारणीय है?

(क) राजयोग (ख) आजीविका (ग) आयु (घ) सन्तति

9. जन्मकाल में जो राशि क्षितिज के पूर्व भाग में उदय होती है, वह होती है -

(क) लग्न राशि (ख) जन्म राशि (ग) काल राशि (घ) पर राशि

10. जातकशास्त्र का विषय नहीं है -

(क) बालारिष्ट (ख) दशान्तर्दशा (ग) अहर्गण साधन (घ) अष्टकवर्ग

२. लघूत्तरात्मक प्रश्न -

1. ज्योतिषशास्त्र के किस स्कन्ध में व्यक्ति विशेष की जन्मकुण्डली के माध्यम से फल प्रतिपादन किया जाता है?

2. कौनसा शास्त्र आपदा रूपी समुद्र में नाव समान सहायता करता है?

3. बृहज्जातकग्रन्थ ग्रन्थ के कर्ता कौन है?

4. आचार्य वैद्यनाथ द्वारा प्रणीत जातक ग्रन्थ कौनसा है?

5. होरारत्न किसके द्वारा रचित है?

6. आकृतियोग कितने होते हैं?

7. व्ययभाव कौनसा है?

8. शुक्र के द्वारा निर्मित महापुरुषयोग कौनसा है?

9. जातकपारिजातग्रन्थ में राजयोग भङ्ग करने वाले कितने योग कहे गये हैं?

10. केशवीयजातकपद्धति ग्रन्थ में कितने श्लोक हैं?

2.8 पारिभाषिक शब्दावली -

अहोरात्र – अहः अर्थात् दिन व रात्र अर्थात् रात्रि, दिन व रात्रि मिलाकर होने वाला कुल समय,

प्राचीन समय में भारत में सूर्योदय से दिन का प्रारम्भ माना जाता था, अतः एक सूर्योदय से अग्रिम दिन के सूर्योदय तक का समय अहोरात्र कहलाया

होरा – अहोरात्र शब्द के आदि ‘अ’ व अन्तिम ‘त्र’ अक्षर के लोप से होरा शब्द बना। मुख्य रूप से सम्पूर्ण अहोरात्र में २४ होरायें होती हैं अतः अहोरात्र मान का २४वा भाग एक होरा का मान होता है। यहीं मान्यता अनन्तर सम्पूर्ण विश्व में स्वीकृत की गई अतः आज भी एक दिन में २४ घण्टे माने जाते हैं। अतः कहा जाता है कि अंग्रेजी का ‘HOUR’ शब्द ‘HORA’ का ही बिगड़ा हुआ स्वरूप है। एक लग्न का औसत मान लगभग २ घण्टे के तुल्य होता है अतः राशि के आधे मान को भी होरा कहा गया। फलित शास्त्र का नाम भी ‘होरा’ कहा गया।

दैवज्ञ – जो ‘दैव’ अर्थात् नियति को जानता हो उसकी दैवज्ञ संज्ञा दी गई। दैवज्ञ के गुणों का वर्णन आचार्य वराहमिहिर ने अपने ग्रन्थ बृहत्संहिता में विस्तार किया। दैवज्ञ मुख्य रूप से ज्योतिषशास्त्र के तीनों स्कन्धों का मर्मज्ञ होता है।

नाभस – जो योग नभ अर्थात् आकाश में ग्रह, राशि, भावों के संयोग से उत्पन्न होते हैं, उन्हें नाभस योग कहा गया।

लग्न – किसी भी समय अपने स्थान (स्व खमध्य) से राशि चक्र का जो भाग पूर्वी क्षितिज पर लगा दिखाई देता है वह लग्न कहलाता है। सिद्धान्त ज्योतिष की भाषा में क्रान्ति वृत्त का जो भाग क्षितिज वृत्त को पूर्व ममे स्पर्श करता है लग्न बिन्दु कहलाता है।

आयुर्दाय – आयु साधन से संबंधित विषय, जातक की आयु कितने वर्ष की होगी? यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय है, इसका विचार जातक ग्रन्थों में आयुर्दाय अध्याय में किया गया

विषकन्या योग – ऐसे योग जिनमें उत्पन्न कन्या पतिघातिनी होती है, अर्थात् उसे वैधव्य का दुःख भोगना पड़ता है, पति हेतु मृत्युकारक होने के कारण ऐसी कन्या को विषकन्या कहा गया

राजभङ्ग योग – ऐसे योग जो कि जन्म कुण्डली में बने हुए राजयोगों को भे समाप्त कर दरिद्रता प्रदान करते हैं, उन्हें राजभङ्ग योग कहा गया

2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

१. बहुविकल्पात्मक प्रश्नों के उत्तर –

- | | |
|--------|--------|
| 1. (ख) | 6. (क) |
| 2. (ग) | 7. (ग) |

- | | |
|--------|---------|
| 3. (घ) | 8. (ग) |
| 4. (क) | 9. (क) |
| 5. (घ) | 10. (ग) |

२. लघूत्तरात्मक प्रश्नों के उत्तर -

1. होरा स्कन्ध में
2. जातक
3. आचार्य वराहमिहिर
4. जातकपरिजात
5. बलभद्र दैवज्ञ
6. बीस
7. द्वादश भाव
8. मालव्य योग
9. चार
10. चालीस (४०)

2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

- भारतीय ज्योतिष, लेखक – शंकर बालकृष्ण दीक्षित, प्रकाशन – उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, २००२
- भारतीयज्योतिषशास्त्रस्येतिहासः, आचार्यलोकमणिदाहालविरचितः, प्रकाशन - चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी 2003 ई.।
- बृहज्जातकम्, व्याख्या - केदारदत्त जोशी, प्रकाशन-मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली - 2002 ई.।
- जातकपारिजातः दैवज्ञवैद्यनाथविरचितः, टीका – कपिलेश्वर शास्त्री, व्याख्या - पं. मातृप्रसादशास्त्रि, प्रकाशन- चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी - 2004 ई.।

2.11 सहायक पाठ्य सामग्री –

- सारावली, श्रीमत्कल्याणवर्मविरचिता, व्याख्या - मुरलीधर चतुर्वेदी, प्रकाशन - मोतीलाल

बनारसीदास, 2007 ई.।

- जातकालङ्कारः, गणेशदैवज्ञविरचितः, व्याख्या - डॉ. सत्येन्द्र मिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2008 ई.।
- भावकुतूहलम्, श्री जीवनाथकृत, व्याख्या- डॉ. हरिशङ्कर पाठक, प्रकाशन - चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2004 ई.।
- लघुपाराशरी, व्याख्या - डॉ. सुरकान्त झा, प्रकाशन - चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2005 ई.।
- जैमिनीसूत्रम्, व्याख्या - पं. सीताराम शर्मा, प्रकाशन - चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी- 2007 ई.।
- बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्, व्याख्या - पं. देवचन्द्र झा, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी - 2012 ई.।

2.12 निबन्धात्मक प्रश्न –

१. आचार्य वराहमिहिर रचित होरा ग्रन्थों का परिचय प्रदान करें।
२. होरा स्कन्ध के वैशिष्ट्य का वर्णन करें।
३. होरा स्कन्ध में वर्णित मुख्य विषयों का प्रतिपादन करें।
४. जातक पारिजात व जातकालङ्कार ग्रन्थों का परिचय प्रदान करें।
५. जैमिनी सूत्र ग्रन्थ का वैशिष्ट्य लिखें।
६. नाभस योग, अरिष्ट योग व राजभङ्ग योग का परिचय प्रदान करें।
७. पञ्चमहापुरुष योगों का संक्षिप्त परिचय प्रदान करें।

इकाई – 3 संहिता ज्योतिष

इकाई की संरचना

- 3.1 प्रस्तावना
- 3.2 उद्देश्य
- 3.3 संहिता स्कन्ध का परिचय
- 3.4 संहिता स्कन्ध का महत्त्व
- 3.5 संहिता स्कन्ध के प्रमुख प्राचीन आचार्य
- 3.6 संहिता स्कन्ध के प्रमुख ग्रन्थ व ग्रन्थकार

1. नारद संहिता
2. बृहत्संहिता
3. अब्द्रुत सागर
4. भद्रबाहु संहिता
5. ज्योतिष दर्पण
6. टोडरानन्द
7. कादम्बिनी

3. 6. 1 अन्य ग्रन्थ

3.7 संहिता स्कन्ध के मुख्य विषय –

1. सामाजिक विज्ञान (Social science)
2. भौगोलिक शास्त्र (Geography)
3. वास्तुशास्त्र तथा कला (Architecture and Fine Arts)
4. सामुद्रिक शास्त्र एवं हस्तरेखा विज्ञान (Palmistry and body language)
5. वृष्टि विज्ञान (Rainfall)
6. भूजल का ज्ञान (Art of exploring underground Water-Veins)
7. कृषि सम्बंधित विषय (Agriculture)
8. खगोल शास्त्र (Planetary movement and Eclipse)
9. आपदाएँ एवं उनके पूर्वानुमान के उपाय (disasters and their prediction methods)

10. वृक्षायुर्वेद और पादप विज्ञान (Arbore-Horticulture and Flora)

- 3.8 अन्य विषय
- 3.9 सारांश
- 3.10 पारिभाषिक शब्दावली
- 3.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 3.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 3.13 सहायक पाठ्य सामग्री
- 3.14 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना –

नारद संहिता में वेदों के निर्मल चक्षु के रूप में ज्योतिष शास्त्र को प्रतिष्ठापित किया और इस शास्त्र के तीन मुख्य विभाग बताये –

सिद्धान्तः संहिता होरा रूपस्कन्धत्रयात्मकः।

वेदस्य निर्मलं चक्षुर्ज्योतिः शास्त्रमनुत्तमम्॥ (नारदसंहिता, प्रथमोऽध्यायः, श्लोक-४)

आचार्य पराशर ने भी ज्योतिषशास्त्र को परम पुण्य शास्त्र बताते हुए इसके तीन मुख्य स्कन्ध बताये –

भगवान् परमं पुण्यं गुह्यं वेदाङ्गमुत्तमम्।

त्रिस्कन्धं ज्योतिषं होरा, गणितं, संहितेति च॥ (बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्, अ-१२/६)

अतः ज्योतिषशास्त्र स्कन्धत्रयात्मक प्रसिद्ध है। प्रथम सिद्धान्त, द्वितीय संहिता और तृतीय होरा स्कन्ध। ये ही तीन विभाग ज्योतिष साहित्य में स्कन्धत्रय नाम से जाने जाते हैं। यहां स्कन्ध का अर्थ शाखा भी जान सकते हैं। ज्योतिष उस विशालकाय वृक्ष के समान है जिसका मूल वेद, उपनिषद, महाभारत, पुराण और तन्त्र साहित्य में विद्यमान है। सिद्धान्त, संहिता और होरा उसकी तीन विशाल शाखाएँ हैं। यदि गम्भीर रूप से चिन्तन किया जाय तो स्कन्धत्रयात्मक ज्योतिषरूपी विशाल वृक्ष की छाया में मनोविज्ञान, जीव विज्ञान, चिकित्सा शास्त्र, रसायन विज्ञान और पदार्थ विज्ञान आदि अनेक विधायें परिपुष्ट होती हैं। सिद्धान्त स्कन्ध में मुख्य रूप से ग्रहगणित का वर्णन है। होरा स्कन्ध में ग्रहों की स्थिति के अनुसार व्यक्ति विशेष के भूत भविष्य वर्तमान से संबंधित फल का मुख्य रूप से विवेचन प्राप्त होता है। परन्तु संहिता ज्योतिष में अनेक विषयों का समावेश है, मुख्यतया समष्टिगत फलों का विवेचन किया गया है। जैसा कि आचार्य वराहमिहिर ने कहा – **तत्कात्स्न्योपनयस्य नाम मुनिभिः सङ्कीर्त्यते संहिता।** इस पाठ में संहिता स्कन्ध का विस्तृत परिचय, संहिता स्कन्ध के विभिन्न ग्रन्थ एवं ग्रन्थकार, संहिता में वर्णित विविध विषयों का विवेचन किया गया है।

3.2 उद्देश्य –

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- संहिता स्कन्ध का परिचय प्राप्त करेंगे।
- संहिता ज्योतिष की विकास परम्परा का प्रतिपादन करने में कुशल होंगे।

- संहिता ज्योतिष के विभिन्न ग्रन्थों का परिचय प्राप्त करेंगे
- संहिता ज्योतिष के विभिन्न ग्रन्थकारों का परिचय प्राप्त करेंगे।
- संहिता ज्योतिष का वैशिष्ट्य प्रतिपादन करने में कुशल होंगे।

3.3 संहिता स्कन्ध का परिचय –

संहिता शब्द का प्रयोग लाक्षणिक और शास्त्रीय भी है। ‘संहित’ शब्द में टाप् प्रत्यय करने पर संहिता शब्द निष्पन्न होता है। आचार्यों ने संहिता पद में बहुव्रीहि समास माना है और ‘सम्यक् हितं प्रतिपाद्यं यस्याः सा’ इस प्रकार से समास विग्रह किया है। इस सामासिक विग्रह से संहिता पद का अर्थ होता है – सम्यक् हित प्रतिपादक शब्द। अतः ऐसा शास्त्र जो जन सामान्य के हितकारक अथवा लोकहितपरक विषयों का सम्यक्तया प्रतिपादन करता हो, उसे संहिता कहा जाता है। जैसे – वेद संहिता और स्मृति संहिता। संहिता शब्द का कोशग्राह्य अर्थ है – संयोग, मेलन, संग्रह इत्यादि। महर्षि पाणिनि ने ‘परः सन्निकर्षः संहिता’ सूत्र लिखा जिसके अनुसार अतिशय सामीप्य संहिता कहा जाता है। इस प्रकार के विवेचन से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि उन वर्णों का, शब्दों का अथवा वाक्यों का संयोग, मेलन अथवा संग्रह संहिता कहा जा सकता है जिनसे लोकहितकारी भावनाएँ प्रकट होती हों। शास्त्र हो या विज्ञान दोनों में ही लोकमङ्गल की भावना तो होती ही है।

ज्योतिष को शास्त्र माने चाहे विज्ञान, वह पूर्ण रूप से लोकहित साधक सिद्धान्तों से ही युक्त है। ज्योतिष शास्त्र का होरा भाग व्यक्तिमात्र के हित का चिन्तन करता है उसमें समष्टि हित का अभाव देखा जाता है। अतः एव होरा को लोकहितकारक होते हुए भी संहिता नहीं कह जा सकता। परन्तु ज्योतिष शास्त्र का संहिता भाग सर्वतोभाव से समष्टि हितकारि भावनाओं से अर्थात् राष्ट्रहितकारि भावनाओं से परिपूर्ण है। धर्मसंहिता धार्मिक कृत्यों के आधार पर राष्ट्रहित के चिन्तन के तत्पर होती है। परन्तु ज्योतिष का संहिता भाग एक वैज्ञानिक आधार को स्वीकार कर प्राकृतिक तत्वों के शुभाशुभ फलों को स्पष्ट करते हुए राष्ट्रहित के अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है।

समष्टिगत फल का प्रतिपादन ही ज्योतिष के संहिता भाग का मुख्य उद्देश्य है। संहिता शास्त्र में मानव हित से संबंधित जगत के अनेक चराचर विषयों का वर्णन प्राप्त होता है। इस भाग में आन्तरिक्षीय घटनाओं के शुभाशुभ फल के साथ अन्य भी महत्वपूर्ण विषयों का विशेष रूप से वर्णन किया गया है।

3.4 संहिता स्कन्ध का महत्त्व –

बृहत्संहिता आचार्य वराहमिहिर विरचित एक विलक्षण संहिता ग्रन्थ है। उसमें दैवज्ञ प्रशंसा के सन्दर्भ में निर्देश किया कि जो दैवज्ञ संहिता शास्त्र को सम्यक् रूप से जानता है, वहीं दैवचिन्तक होता है – “संहितापारगश्च दैवचिन्तको भवति”। जो दैवज्ञ गणित व होरा शास्त्र के साथ संहिता शास्त्र में भी पारंगत होता है उसकी “सांवत्सर” संज्ञा दी गई। सांवत्सर का अत्यधिक महत्त्व प्रतिपादित किया गया। सांवत्सर किसी देश, प्रदेश, जिले या नगर का शुभाशुभ फलकथन करने में समर्थ होता है, अतः एव कहा गया कि अपने कल्याण की इच्छा रखने वाले व्यक्ति को साम्बत्सर रहित देश में निवास नहीं करना चाहिये –

नासांवत्सरिके देशे वस्तव्यं भूतिमिच्छता।

चक्षुर्भूतो हि यत्रैष पापं तत्र न विद्यते॥ (बृहत्संहिता, अध्याय:-२, श्लोक-११)

सांवत्सर का महत्त्व प्रदर्शित करते हुए आचार्य वराहमिहिर ने वर्णन किया – जैसे दीप्तिरहित रात्रि अन्धकार युक्त होता है, जैसे सूर्यरहित आकाश अन्धकारयुक्त होता है उसी प्रकार दैवज्ञ विहीन राजा अन्धकार में ही भ्रमण करता है –

अप्रदीपा यथा रात्रिः अनादित्यं यथा नभः।

तथा असांवत्सरो राजा भ्रम्यत्यन्ध इवाध्वनिः॥ (बृहत्संहिता, अध्याय:-२, श्लोक-८)

जो राजा विजय की कामना करता है उसे सिद्धान्त संहिता होरा रूप त्रिस्कन्धात्मक ज्योतिषशास्त्र में पारंगत सांवत्सर की अभ्यर्चना कर अपने राज्य में स्थान देना चाहिये –

यः तु सम्यग्विजानाति होरागणितसंहिताः।

अभ्यर्च्यः स नरेन्द्रेण स्वीकर्तव्यो जयैषिणा॥ (बृहत्संहिता, अध्याय:-२, श्लोक-१९)

सांवत्सर का अत्यधिक महत्त्व आचार्य वराहमिहिर ने प्रतिपादित किया। यदि कोई दैवज्ञ भविष्य में घटित होने वाली आपदा का पूर्वानुमान कर लेता है तो वह एक बृहत्तम कार्य करता है जो कि न एक हजार हाथी मिलकर कर सकते हैं न ही चार हजार घोड़े मिलकर कर सकते हैं। जैसा कि कहा गया –

न तत्सहस्रं करिणां वाजिनां च चतुर्गुणम्।

करोति देशकालज्ञो यथैको दैवचिन्तकः॥ (बृहत्संहिता, सांवत्सरसूत्राध्यायः, श्लोक-३८)

इस प्रकार त्रिस्कन्ध के वेत्ता दैवज्ञ की प्रशंसा करते हुए आचार्य वराहमिहिर ने संहिता स्कन्ध के महत्त्व को भी प्रतिपादित किया। होरा शास्त्र का ज्ञाता ज्योतिषी तो केवल एक व्यक्ति विशेष का ही फल प्रतिपादन कर सकता है परन्तु संहिता स्कन्ध में कुशल दैवज्ञ तो सम्पूर्ण समाज के कल्याण के लिये चिन्तन

करता है। अतः संहिता स्कन्ध का ज्ञाता होने पर ही किसी ज्योतिषी को दैवज्ञ की संज्ञा दी गई। आज भी संहिता ज्योतिष का अत्यन्त महत्त्व समाज में दिखाई देता है।

3.5 संहिता स्कन्ध के प्रमुख प्राचीन आचार्य –

आचार्य वराहमिहिर रचित बृहत्संहिता ग्रन्थ संहिताज्योतिष का सर्वप्रमुख और सर्वमान्य ग्रन्थ है। इसका काल ४२७ शकाब्द माना जाता है। बृहत्संहिता ग्रन्थ में संहिता ज्योतिष से संबद्ध सभी विषयों का वर्णन किया गया है। पृथक् शास्त्र के रूप में संहिता भाग का उदय कब हुआ इस विषय में निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता। बृहत्संहिता में आचार्य वराहमिहिर पूर्ववर्ती आचार्यों के रूप में गर्ग, पराशर, असित, देवल, वृद्धगर्ग, कश्यप, भृगु, वसिष्ठ, बृहस्पति, मनु, मय, सारस्वत, ऋषिपुत्र आदि को संहिता ग्रन्थों के रचनाकर्त्ताओं के रूप में स्मरण करते हैं। आचार्य भट्टोत्पल ने वराहमिहिर विरचित सभी ग्रन्थों की टीकाएँ लिखीं। बृहत्संहिता ग्रन्थ की टीका लेखन के समय भट्टोत्पल ने वराहमिहिर से भी कहीं अधिक पूर्ववर्ती आचार्यों का स्मरण किया है। उन्होंने टीका ग्रन्थ में व्यास, भानुभट्ट, विष्णुगुप्त, विष्णुचन्द्र, यवन, रोम, सिद्धासन, भद्रबाहु, नन्दि, नमजित्, शक्र, कपिल, चाणिक्य, बलदेव, बृहद्रथ, गरुत्मान, कपिस्थल, ऋषभ, भदित्त, सवित्र, लाटदेव, हस्ताब्द, असित, अगस्त्य, द्रव्यवर्धन, विष्णुचन्द्र, इन्द्र, काश्यप, गार्ग, जीवशर्मा, गरुड, दैवल, देवस्वामी, नन्दी, नमजीत, नारद, पुलिशाचार्य, बादरायण, भट्टब्रह्मगुप्त, भानुभट्ट, भागुरि, भारद्वाज मुनि, मय, मयासुर, मणित्थ, माण्डव्य, यवन, यवनेश्वर, वज्रक्रषि, वक्ष्यमाण, वररुचि, विष्णुगुप्त, विष्णु, विश्वकर्मा, वीरभद्र, शुक्र, समुद्र ऋषि, सत्याचार्य, सारस्वत, सिद्धसेन, सूर्य, श्रुतकीर्ति, हिरण्यगर्भ इत्यादि आचार्यों का स्मरण किया। इन आचार्यों के द्वारा रचित ग्रन्थ सम्प्रति उपलब्ध नहीं होते हैं, केवल इनके नाम ही शेष रह गये हैं।

आज नारद संहिता, पाराशर संहिता, गर्ग संहिता, भृगु संहिता, काश्यप संहिता और वसिष्ठ संहिता बृहत्संहिता से पूर्ववर्ती संहिताओं के रूप में उपलब्ध हैं। कुछ विद्वानों का यह अनुमान है कि वेदाङ्ग काल तक संहिताशास्त्र का पृथक् अस्तित्व नहीं था। संहिता ज्योतिष के तत्त्व विविध पुराणों में और इतिहास ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। महाभारत में भी कुछ संहिता शास्त्रों की स्थिति के संकेत प्राप्त होते हैं विशेषतः व्यास संहिता की स्थिति के संसूचक वचन उपलब्ध होते हैं –

ततो इष्टेऽहनि प्राप्ते मुहूर्ते साधुसम्मते।

जग्राह विधिवत्पाणिं माद्र्याः पाण्डुर्नराधिपः॥ (महाभारतम् - १/११३/१६)

ऐन्द्रे चन्द्रसमायुक्ते मुहूर्तेऽभिजिदष्टमे

दिवा मध्यगते सूर्ये तिथौ पूर्णेऽतिपूजिते॥ (महाभारतम् - १/१२३/६)

न केवल महाभारत में अपितु वाल्मीकीय रामायण में भी संहिता से संबंधित विषयों का

उल्लेख मिलता है, यथा –

ततो यज्ञे समाप्ते तु ऋतूनां षट् समत्ययुः।

ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ॥

नक्षत्रेऽदितिदैवत्ये स्वोच्चसंस्थेषु पञ्चसु।

ग्रहेषु कर्कटे लग्ने वाक्पताविन्दुना सहा॥ (वाल्मीकीरामायणम् - १/१८/८-९)

अतः संहिता के विषयों का निर्देश प्राचीन काल से ही प्राप्त हो जाता है।

3.6 संहिता ज्योतिष के प्रमुख ग्रन्थ व ग्रन्थकार –

आज के समय में उपलब्ध संहिता ग्रन्थों में बृहत्संहिता(वाराहीसंहिता), नारद संहिता, नारदीय संहिता, भृगु संहिता, वशिष्ठ संहिता, अद्भुतसागर और गर्ग संहिता के नाम मुख्यरूप से प्राप्त होते हैं, परन्तु इनमें से सर्वसुलभ रूप से लोकप्रचलन में नारद संहिता और बृहत्संहिता ही मुख्य है।

बृहत्संहिता ग्रन्थ में ज्योतिष शास्त्र के संहिता स्कन्ध के सम्पूर्ण विषयों का विवेचन प्राप्त होता है। समुपलब्ध संहिता ग्रन्थों का संक्षिप्त वर्णन यहां किया जा रहा है –

१.नारद संहिता – समुपलब्ध संहिता ग्रन्थों में आर्ष रूप में प्रथम नारद संहिता उपलब्ध होती है, यद्यपि इसका प्रकाशित साम्प्रतिक स्वरूप नवीन ही लगता है। नारद संहिता 55 अध्यायों में विभक्त है। नारदसंहिता ग्रन्थ में सांवत्सरिक का लक्षण इस प्रकार वर्णित किया गया है –

त्रिस्कन्धज्ञो दर्शनीयः श्रौतस्मार्त्तक्रियापरः।

निर्दाम्भिकः सत्यवादी दैवज्ञो दैववित्स्थिरः॥

पाराशर, गर्ग, काश्यप, वासिष्ठ आदि संहिताओं में भी नारद संहिता के समान विषय संभावित हैं, केवल निरूपण क्रम भिन्न हो सकता है। संहिताओं में भृगुसंहिता स्थूल कलेवर वाली व बहुत विषयों वाली है। सम्प्रति सुनी जा रही भृगु संहिता में अनेक जन्म कुण्डलीयों का संग्रह है जिसमें कि व्यक्ति के जन्म, परिवार व विभिन्न घटनाओं का सटीक वर्णन लिखा हुआ प्राप्त होता है। परन्तु संहिता के अन्य विषयों का इसमें अभाव है।

२. बृहत्संहिता – सम्प्रति ज्ञात पौरुषेय संहिता ग्रन्थों में बृहत्संहिता ही प्रथम ग्रन्थ है। बृहत्संहिता को वाराहीसंहिता भी कहा जाता है। आचार्य वराहमिहिराचार्य इसके प्रणेता हैं। इसका समय 427 शकाब्द माना जाता है। यह वराहमिहिर की अन्तिम कृति मानी जाती है। इसमें कुल 106 अध्याय हैं। इस ग्रन्थ की भट्टोत्पल रचित विस्तृत टीका प्राप्त होती है। योगयात्रा, विवाहपटल, विवाहखण्ड, ठिकनिकयात्रा, ग्रहमण्डल पटल और समास संहिता आचार्य वराहमिहिर के संहिता विषयक ग्रन्थ माने जाते हैं।

बृहत्संहिता से पूर्व भी संहिता विषयों पर ग्रन्थों की रचना की गई थीं। आचार्य वराहमिहिर स्वयं कहते हैं कि जिन कि विषयों का मैं इस बृहत्संहिता ग्रन्थ में प्रतिपादित कर रहा हूँ वे मेरे द्वारा आविष्कृत नहीं हैं अपितु मैंने केवलमात्र पूर्वाचार्यों द्वारा रचित ग्रन्थों का अध्ययन कर उसी ज्ञान को सार संक्षेप रूप में अपने वाक्यों में कहा है। वराहमिहिर ग्रन्थ में अनेक स्थलों पर पूर्वाचार्य के रूप में पराशर, गर्ग, भृगु, देवल, वृद्धगर्ग, कश्यप, वसिष्ठ, बृहस्पति, मनु, सारस्वत, ऋषिपुत्र आदि का स्मरण करते हैं, किन्तु उनमें से किसी के द्वारा भी रचित संहिता ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं होते हैं। इनमें से वसिष्ठ संहिता की एक पाण्डुलिपि प्राप्त हुई है, जिसका प्रकाशन हो चुका है। कुछ आचार्यों का अनुमान है कि प्राचीन काल में ब्रह्मा द्वारा प्रकटीत ज्योतिष शास्त्र की बहुत सी शाखाएँ थीं। उनमें अनेक ग्रन्थों में विषयों की पुनरुक्ति व अव्यवस्थित प्रतिपादन किया गया होगा अतः मतिभ्रम के परिहार के लिये आचार्य वराहमिहिर ने सभी विषयों का सङ्ग्रह कर सार संक्षेप में बृहत्संहिता ग्रन्थ की रचना की, तथा ज्योतिष के सभी विषयों को तीन भागों में विभाजित करते हुए तीनों भागों में पृथक् पृथक् ग्रन्थों की रचना की। किसी भी दो स्कन्ध के विषयों को आपस में समाहित नहीं किया, उन्हें अच्छी प्रकार से विभाजित किया।

बृहत्संहिता के अवलोकन से ज्ञात होता है कि उस समय किस प्रकार के ग्रन्थ रहे होंगे। प्राचीन आचार्यों ने विविध विषयों पर महान् शोधकार्य किये थे, परन्तु दुःख का विषय है कि वे ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं होते हैं। और जैसा कार्य आचार्य वराहमिहिर ने किया किसी अन्य आचार्य ने नहीं। सुप्रसिद्ध ‘भारतीय ज्योतिष’ ग्रन्थ के रचनाकार शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित ने सत्य ही कहा कि वराहमिहिर के उपरान्त तो संहिता ग्रन्थों का साङ्गोपाङ्ग लेखन लुप्तप्राय हो गया। संहिता विषयों में केवल मुहूर्तखण्ड ही सम्प्रति सजीव है। मुहूर्तग्रन्थों को भी संहितास्कन्ध में ही परिगणित किया गया।

३. अद्भुतसागर – वस्तुतः अद्भुतसागर ग्रन्थ अद्भुत ही है। यह ग्रन्थ वङ्ग देश के राजा लक्ष्मण सेन ने प्रारम्भ किया और उनके पुत्र बल्लालसेन ने १०८९ शकाब्द में उसे पूर्ण करवाया। इस ग्रन्थ में भी बृहत्संहिता के समान ही विषय हैं। इस ग्रन्थ में बृहत्संहिता से भी अधिक कई नवीन विषय भी वर्णित किये गये हैं, जिनमें मुख्य रूप से अन्तरिक्ष, भूमि व वायुमण्डल में दिखाई देने वाले अनेक अद्भुत उत्पातों का

विवेचन किया गया हैं जिनका वर्णन बृहत्संहिता में भी नहीं प्राप्त होता। इस ग्रन्थ का सबसे बड़ा वैशिष्ट्य है कि इसमें पूर्ववर्ती ग्रन्थों के वचनों को यथारूप उद्धरित किया गया है। इस ग्रन्थ में प्राप्त होने वाले पराशर के वचनों के आधार पर जैन विश्वविद्यालय, बेंगलोर के आधुनिक विज्ञान के विद्वान् श्री आर. एन. आयङ्गर ने पराशर संहिता के रूप में “पराशरतन्त्र” ग्रन्थ की रचना की है। पूर्ववर्ति कुछ आचार्यों नाम जिनका उल्लेख बृहत्संहिता में भी उपलब्ध नहीं है, इस ग्रन्थ में प्राप्त होते हैं –

ग्रन्थेऽत्र बृद्धगर्गगर्गपराशरवशिष्ठगार्गीयान् ।

बार्हस्पत्यबृहस्पतिकठश्रुतिब्रह्मसिद्धान्तान् ॥

आथर्वणाद्भुताशितषट् त्रिंशद् ब्रह्मर्षिकृतीः।

गार्गीयमतौशनसे कालावलिसूर्यसिद्धान्तौ॥

विन्ध्यवासी-वदरायणोशनः शालिहोत्रविधुगुप्तसुश्रुतान्।

पीलुकार्यनृपपुत्रदेवलान् भार्गवीयबिजवायकाश्यपान्॥ (अद्भुतसागर, उपोद्धातः, पृष्ठ-४)

इस प्रकार बृहत्संहिता के उपरान्त अद्भुतसागर ही संहिता का एक साङ्गोपाङ्ग ग्रन्थ प्राप्त होता है। ग्रन्थ के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वे सभी प्राचीन ग्रन्थ 12वें शकाब्द काल तक व उसके उपरान्त भी विद्यमान थे, और उनसे भी अधिक थे जिनका कि उल्लेख आचार्य वराहमिहिर ने अपने ग्रन्थ बृहत्संहिता में किया है।

४.भद्रबाहु संहिता – ११-१२ शताब्दी काल में आचार्य भद्रबाहु ने इस ग्रन्थ की रचना की। मुख्य रूप से यह अष्टाङ्ग निमित्तों का वर्णन करने वाला ग्रन्थ है। आपदाओं के आने पूर्व दृष्ट होने वाले निमित्तों का विस्तार से विवेचन इस ग्रन्थ में किया गया है। कुछ अति नवीन विषय भी हैं जिनका वर्णन पूर्ववर्ती संहिता ग्रन्थों में प्राप्त नहीं होता। यह भी संहिता ज्योतिष का एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है।

५.ज्योतिष दर्पण – गद्यपद्यात्मक यह ग्रन्थ पञ्चपल्लू संज्ञक किसी आचार्य ने १४७९ शकाब्द में लिखा। पञ्चपल्लू कण्वशाखाध्यायी वत्सगोत्रीय ब्राह्मण थे। वे अपने ग्रन्थ में पैलूभटीय नामक संहिता ग्रन्थ का स्मरण करते हैं।

६.टोडरानन्द – १५७२ ईस्वी वर्ष में राजा अकबर के शासनकाल में प्रधानमन्त्री टोडरमल्ल ने विद्वानों की बहुत बड़ी गोष्ठी का आयोजन करवाया। उस शास्त्रचर्चा में उसने उस काल में समुपब्ध शास्त्रों के महत्वपूर्ण मूल वचनों का सङ्कलन करवाया। उसके परिणामस्वरूप 23 से अधिक विषयों के समायोजन से महाभारत तुल्य “टोडरानन्द” ग्रन्थ का निर्माण हुआ। इसमें प्रत्येक भाग की सौख्य संज्ञा दी गई। उनमें से

“संहितासौख्यम्”, “वास्तुसौख्यम्”, “गणितसौख्यम्” इत्यादि में ज्योतिषशास्त्र संबंधित पुरातन ग्रन्थों के वचनों का उत्कृष्ट संग्रह प्राप्त होता है। कुछ नवीन विश्लेषकों का मत है कि इस ग्रन्थ का निर्माण राजा के सान्निध्य में मुख्य रूप दैवज्ञ नीलकण्ठ ने किया।

७.कादम्बिनी – म. म. विद्यावाचस्पति पं. श्रीमधुसूदन ओझा जी ने समुपलब्ध संहिताग्रन्थों का सूक्ष्मेक्षिकया अध्ययन कर साररूप में अत्यन्त सरल भाषा में उन विषयों का विवेचन कादम्बिनी ग्रन्थ में किया। विशेष रूप से इस ग्रन्थ में वृष्टि संबंधित फलों का विवेचन किया गया है। महोदय का जन्म श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के दिन संवत् १९२३ में हुआ था।

८.बृहद्दैवज्ञरञ्जन – १९५४ शकसंवत् में काशी नरेश के आश्रित पं.रामदीन महोदय ने इस संग्रह ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ में गोचर फल, फलित ज्योतिष, मुहूर्त शास्त्र इत्यादि से संबंधित विषयों का संकलन है। मुख्य रूप से इस ग्रन्थ में बृहत्संहिता के वचनों को उद्धरित किया गया है।

१.६.१ अन्य ग्रन्थ – उपर्युक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त और भी अन्य उपलब्ध सुप्रसिद्ध संहिता ग्रन्थ हैं जिनका सम्प्रति प्रकाशन हो चुका है। उनके नाम हैं – मयूरचित्रक, मेघमाला, वनमाला, वशिष्ठ संहिता, बृहद्वास्तुमाला, अब्दुत दर्पण, शृङ्गार तरंगिणी, विद्यामाधवीय, विवेक विलास, गुरु संहिता, कृषिपाराशर, दैवज्ञकामधेनु, निमित्तशास्त्र, गृहरत्नविभूषण, जयपायड निमित्तशास्त्र इत्यादि। इनके अतिरिक्त आज भी बड़ी संख्या में संहिता शास्त्र से संबंधित ग्रन्थ देश और विदेश के विभिन्न पुस्तकालयों में पाण्डु ग्रन्थों के रूप में विद्यमान है व प्रकाशित होने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। जिनके प्रकाशन से और भी नये ज्ञान व संहिता शास्त्र के विकास की परम्परा का ज्ञान हो सकता है।

3.7 संहिता स्कन्ध के प्रमुख विषय –

जल विज्ञान (भूमिगत और आकाशस्थ), रेखाविज्ञान, वास्तु, धूमकेतू उल्का आदि का ज्ञान, शकुन शास्त्र और सामुद्रिक शास्त्र इत्यादि संहिता शास्त्र से ही उद्भूत हुए। ग्रहजनित अशुभ दोष निवारण की चिकित्सा पद्धति में सूर्यादि ग्रहों से संबद्ध माणिक्यादि रत्न धारण, विभिन्न धातुओं की भस्म से विविध रोगों का निदान इत्यादि विषय भी संहिता में समाहित हुए। इसी शास्त्र के आधार पर नक्षत्रमण्डल में ग्रहों के संचरण द्वारा इस लोक में होने वाले शुभाशुभ फलों का निरूपण इसी शास्त्र में किया गया। ज्योतिष के इसी स्कन्ध के आधार पर वायु, वृष्टि आदि का ज्ञान दैवज्ञ करते हैं।

मुहूर्तशास्त्र को भी संहिताशास्त्र का ही अङ्ग माना गया जिसके बिना लौकिक, वैदिक और स्मार्त कोई भी कार्य सिद्ध नहीं हो पाता। संहिताशास्त्र में स्थल, जल, और गगन में दिखाई देने वाले

विविध उत्पातों के विवेचन व लक्षण के द्वारा तथा तात्कालिक ग्रहचार के द्वारा सुभिक्ष दुर्भिक्ष आदि सार्वभौम शुभाशुभ फलों का प्रस्तुतीकरण होता है। साथ ही स्वर, मुहूर्त, शकुन, पुरुषस्त्रीलक्षण, गजतुरगलक्षण, रत्न, प्रतिमाप्रासादलक्षण आदि अनेक विशेष विषयों का प्रतिपादक संहिताशास्त्र है। यह समाज के कल्याणपथ का प्रदर्शक है। इस स्कन्ध में वर्णित सभी मुख्य विषयों के नाम केवल

बृहत्संहिता ग्रन्थ में ही प्राप्त होते हैं। जैसा कि ग्रन्थारम्भ में आचार्य वराहमिहिर ने वर्णित किया –

यत्रैते संहिता पदार्थाः। दिनकरादीनां ग्रहाणां चारास्तेषु च तेषां प्रकृतिविकृतिप्रमाणवर्णकिरणद्युतिसंस्थानास्तमनोदयमार्गमार्गान्तरवक्रानुवक्रक्षग्रहसमागमचारा दिभिः फलानि नक्षत्रकूर्मविभागेन देशेष्वगस्त्यचारः। सप्तर्षिचारः। ग्रहभक्तयो नक्षत्रव्यूहग्रहशृङ्गाटकग्रहयुद्धग्रहसमागमग्रहवर्षफलगर्भलक्षणरोहिणीस्वात्याषाढीयोगाः सद्योवर्षकुसुमलतापरिधिपरिवेषपरिघपवनोल्कादिगदाहक्षितिचलनसन्ध्यारागगन्धर्वनगररजोनि र्घातार्घकाण्डसस्यजन्मेन्द्रध्वजेन्द्रचापवास्तुविद्याङ्गविद्यावायसविद्यान्तरचक्रमृगचक्रश्वचक्रवात चक्रप्रासादलक्षणप्रतिमालक्षणप्रतिष्ठापनवृक्षायुर्वेदोदगार्गलरनीरालजनखञ्जनकोत्पातशान्तिम यूरचित्रकघृतकम्बलखड्गपट्टककवाकुर्कर्मगोऽजाश्वेभपुरुषस्त्रीलक्षणान्यन्तःपुरचिन्तापिटकलक्ष णोपानच्छेदवस्त्रच्छेदचामरदण्डशयनाऽऽसनलक्षणरत्नपरीक्षा दीपलक्षणं दन्तकाष्ठाद्याश्रितानि शुभाऽशुभानि निमित्तानि सामान्यानि च जगतः प्रतिपुरुषं पार्थवे च प्रतिक्षणमनन्यकर्माभियुक्तेन दैवज्ञेन चिन्तयितव्यानि। न चैकाकिना शक्यन्तेऽहर्निशमवधारयितुं निमित्तानि। तस्मात् सुभृतेनैव दैवज्ञेनान्येऽपि तद्विदश्चत्वारः कर्तव्याः। तत्रैकेनैन्द्री चाग्रेयी च दिगवलोकयितव्या। याम्या नैर्ऋती चान्येनैवं वारुणी वायव्या चोत्तरा चैशानी चेति। यस्मादुल्कापातादीनि शीघ्रमपगच्छन्तीति। तस्याश्चाकारवर्णस्नेहप्रमाणादिग्रहक्षौपघातादिभिः फलानि भवन्ति। (बृहत्संहिता, सांवत्सरसूत्राध्यायः, श्लोक-२३)

अद्भुतसागरग्रन्थ में भी बृहत्संहिता के समान ही विषयों का वर्णन है, परन्तु उसमें अनेक नवीन विषयों का भी विवेचन किया गया जिनकी चर्चा बृहत्संहिता में भी चर्चा नहीं है। उसमें दिव्याश्रय, अन्तरिक्षाश्रय और भौमाश्रय संज्ञक तीन भागों में विविध उत्पातों का सोपपत्तिक वर्णन किया है व उनकी शान्ति के उपाय भी वर्णित किये हैं। भौमाश्रय में भूकम्प, जलाशय अग्नि, दीप, देव प्रतिमा, शक्रध्वज, वृक्ष, गृह, वातज उपस्कर, वस्त्र, उपाहन, आसन, शस्त्र, दिव्य स्त्रीपुरुषदर्शन, मानुष, पिटक, स्वप्न, कायरिष्ट, दन्त जन्म, प्रसव, सर्वशाकुन, नाना मृग, विहग, गज, अश्व, वृष, महिष, बिडाल, शकुन, शृगाल,

गृहगोधिका, पिपीलिका, पतङ्ग, मशक, मक्षिक, लूता, भ्रमर, भेक, खन्जरीट दर्शन, पोतकी, कृष्णपेचिका, वायसाद्भुतावर्त, मिश्रकाद्भुतावर्त, अद्भुतशान्त्यद्भुतावर्त, सद्योवर्षनिमित्ताद्भुतावर्त, अविर्द्धाद्भुतावर्त और पाकसमयाद्भुतावर्त का निरूपण किया हैं जिनमें से अनेक विषयों की चर्चा बृहत्संहिता में नहीं प्राप्त होती।

संहिता के विषय अत्यन्त विस्तीर्ण हैं। इसमें सम्पूर्ण देश की स्थिति, देश का शुभाशुभ फल, कृषि सम्बन्धित फल, वृष्टि सम्बन्धित फल, वाणिज्य सम्बन्धित फल, राजनीति सम्बन्धित फल और अर्थ सम्बन्धित फल का विस्तृत रूप प्रतिपादन किया गया है। इसके निर्धारण हेतु आचार्य वराहमिहिर रचित बृहत्संहिता में वर्णन है कि सर्वप्रथम सत्ताईस नक्षत्रों को नव खण्डों में विभाजित किया गया। प्रत्येक खण्ड में तीन तीन नक्षत्र स्थापित किये। बृहद् भारत देश के भूभाग को नक्षत्रों के आधार पर विभाजित किया। जब ग्रहों का सञ्चार उन नक्षत्रों पर होता है तब उनसे संबंधित देशों पर उन ग्रहों का शुभाशुभ का प्रतिपादन किया गया। किस स्थान पर कब कितनी मात्रा में वृष्टि होगी? व्यापार जगत में किन वस्तुओं के मूल्यों में तेजी या मन्दी होगी? इत्यादि विषयों का विचार भी संहिता ग्रन्थों में उक्त ग्रहचार के आधार पर किया गया। संहिता ग्रन्थों में वर्णित विषयों का संक्षेप में वर्णन किया जा रहा है –

१. सामाजिकविज्ञानम् (Social science) – संहिता ग्रन्थों में तात्कालीन सामाजिक व्यवस्था के सन्दर्भ में विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है। उसमें वर्ण व्यवस्था, वर्ण संकर, चार आश्रम, पुनर्विवाह, बहुविवाह, विधवा विवाह, सतीप्रथा, विवाहविच्छेद आदि विषय में वर्णन प्राप्त होता है। पारिवारिक संबंध, समाज में शिक्षा की स्थिति इत्यादि विषयों का संहिता स्कन्ध में वर्णन प्राप्त होता है। विविध प्रदेशों के निवासकर्ताओं का क्षेत्र के अनुसार, स्वरूप के अनुसार और कर्मविशेष के अनुसार नाम का वर्णन किया गया है। उससे उस समय की सामाजिक स्थिति का ज्ञान होता है। जैसे – आभीरस, अभिसार, आदर्श, अग्निधर, श्वमुख, अश्वत्थ, अवगाण, आवर्तक, वाटधान, महाग्रीव, मत्स्य इत्यादि।

२. भौगोलिक शास्त्र (Geography) – संहिताग्रन्थों में तात्कालिक देश, प्रदेश और नगरों के नामों का उल्लेख प्राप्त होता है। उससे तात्कालिक भौगोलिक स्थिति का ज्ञान भी होता है। मुख्य सप्त पर्वतों के नाम का उल्लेख प्राप्त होता है। भीमरथा, चन्द्रभागा, चारुदेवी, देविका, गाम्भीरिका, गुलुहा, इक्षुमती, इरावती, कौशिकी, लौहित्य, निर्विन्ध्या, पारा, पयोष्णी, फल्गुलुका, रथाख्या, शतद्रु, शोण, ताम्रपर्णी, वेदस्मृति, वेणा, वेणुमती, विपाशा, वितस्ता इत्यादि नदियों के नामों का उल्लेख प्राप्त होता है। दण्डक, धर्मारण्य, महात्वी, नैमिष, नृसिंहवन, पुष्कर, वनराज्य, वनराष्ट्र, वनौघ, वसुवन इत्यादि वनों के नाम भी प्राप्त होते हैं।

३. वास्तुशास्त्र तथा कला (Architecture and Fine Arts) – भूमि चयन से प्रारम्भ

कर गृहप्रवेश पर्यन्त सभी गृहवास्तु के विषय वास्तुशास्त्र के अन्तर्गत समाहित होते हैं। वराहमिहिर ने वास्तुशास्त्र को भी संहिता स्कन्ध के अन्तर्गत परिगणित किया। बृहत्संहिता में न केवल गृहवास्तु के सन्दर्भ में अपितु प्रासाद वास्तु व मन्दिर वास्तु का भी समावेश किया गया। कालान्तर में वास्तु एक पृथक् शास्त्र के रूप में स्थापित हुआ।

४. सामुद्रिक शास्त्र व हस्तरेखा विज्ञान (Palmistry and Body language) – आज के समय में हस्तरेखाओं के द्वारा फलकथन की विधि का अत्यधिक प्रचार देखा जाता है। हस्तरेखा दर्शन सामुद्रिक शास्त्र का ही एक भाग है। सामुद्रिक शास्त्र के अन्तर्गत शरीर के सभी अङ्गों के लक्षण व उनके द्वारा फलकथन किया जाता है। उनमें से भी हस्तरेखा दर्शन कालान्तर में अति प्रसिद्ध हो गया और पृथक् शास्त्ररूप में इसके ग्रन्थों की रचना होने लगी। सामुद्रिक शास्त्र का भी अन्तर्भाव संहिता शास्त्र में ही किया गया।

५. वृष्टि विज्ञान (Rainfall) – आधुनिक वैज्ञानिक सतत रूप वृष्टि के पूर्वानुमान हेतु प्रयासरत रहते हैं। परन्तु अधिक सफलता दिखाई नहीं देती। वे कुछ दिन पूर्व का ही अनुमान कर पाते हैं। प्राचीन आचार्यों ने भी वृष्टि के विषय में विस्तार से विवेचन किया और एक वर्ष पूर्व ही वृष्टि के पूर्वानुमान का प्रयास किया। वृष्टि की उत्पत्ति, वृष्टि के कारण, वृष्टि की पूर्वानुमान की विभिन्न विधियाँ, विभिन्न प्रकार की वृष्टि के द्वारा होने वाले फल, अतिवृष्टि अनावृष्टि जनित आपदाएँ व उनके शमन के उपाय भी संहिता स्कन्ध में वर्णित किये गये हैं।

६. भूजल का ज्ञान (Art of exploring underground Water-Veins) – आज विविध रेडियोधर्मी यन्त्रों के माध्यम से भूगर्भ में स्थित जल का ज्ञान किया जाता है, परन्तु प्राचीन समय में भी भूमिगत जल के ज्ञान हेतु यन्त्रों उपलब्ध नहीं थे। प्राचीनकाल में विविध वृक्षों की स्थिति, वल्मीक आदि कीटों के गृहदर्शन इत्यादि विधि द्वारा भूगर्भ में विद्यमान जलशिराओं का ज्ञान किया जाता था। यह वर्णन संहिता स्कन्ध के “दकार्गलाध्याय” में किया गया। मुख्यतया भूगर्भ में जल है या नहीं? यदि है तो कितनी मात्रा में? जल मधुर है अथवा लवणयुक्त? जल स्वास्थ्यवर्धक है या विषाक्त? भूगर्भ में जल कितना गहराई में है? इन सभी प्रश्नों का समाधान दकार्गलाध्याय में किया गया। आज आधुनिक यन्त्रों द्वारा भूगर्भ के स्थित जल, तैल व खनिज पदार्थों का ज्ञान किया जाता है, परन्तु प्राचीनकाल में यन्त्रों के अभाव में उनका सूक्ष्म ज्ञान केवल ज्योतिष शास्त्र के

संहिता शास्त्र द्वारा ही किया जाता था।

७.कृषि सम्बंधित विषय (Agriculture) – किस प्रकार के धान्यों की उत्पत्ति कब होती हैं? उनका संवर्धन किस प्रकार होता है? उन धान्यों हेतु बीजों का निर्माण कैसे किया जाय? धान्यों का संरक्षण कैसे किया जाय? धान्य कब उन्नत होते हैं तथा कब धान्य उत्पत्ति में हास होता है, इन सभी विषयों का भी वर्णन संहिता शास्त्र में प्राप्त होता है।

८.खगोल शास्त्र (Planetary movement and Eclipse) – ग्रहों का संचार, अगस्त्य चार, सप्तर्षि चार, ग्रहण, ग्रहयुद्ध, ग्रहों का उदयास्त, ग्रहवर्ण, ग्रहसमागम, धूमकेतू, उल्कापतन आदि खगोलीय विषयों के कारण, लक्षण और फलों का प्रतिपादन संहिता शास्त्रों में विस्तार से किया गया है। बृहत्संहिता में आचार्य वराहमिहिर ने सप्तर्षि का भी चलन प्रतिपादित किया।

९.आपदाएं एवं उनके पूर्वानुमान के उपाय (disasters and their prediction methods) – जैसी भूकम्पादि आपदाएं आज लोक में दिखाई देती हैं उसी प्रकार प्राचीन काल में भी ऐसी आपदाएं आती रही हैं। प्राचीन आचार्यों ने इस प्रकार से आपदाओं का निरन्तर निदर्शन किया होगा और विस्तार से उनका विवेचन भी किया। विविध आपदाओं के लक्षण, कारण, पूर्वानुमान की विधियां, आपदाओं से रक्षा के उपाय और आपदाओं के शमन हेतु भी उपायों का वर्णन किया। भूकम्प के सन्दर्भ में तो आचार्य वराहमिहिर एक विशेष अध्याय ही बृहत्संहिता में प्रस्तुत कर दिया। अध्याय में भूकम्पों के चार भेद बताते हुए उनका विवेचन किया गया है।

१०.वृक्षायुर्वेद और पादप विज्ञान (Arbore-Horticulture and Flora) – संहिताग्रन्थों में पादप विज्ञान का भी विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है। पादपों का संरक्षण, संवर्धन और चिकित्सा कैसे हो, वृक्षों की चिकित्सा का वर्णन भी संहिता स्कन्ध में प्राप्त होता है, उसकी 'वृक्षायुर्वेद' संज्ञा दी गई।

3.8 अन्य विषय –

स्वास्थ्य, रोग और औषधियां (Health, Disease and Medicine) – विविध रोग और उनके शमन हेतु उपाय (कान्दर्पिका), विविध चूर्णों के निर्माण की विधियां संहिता ग्रन्थों में वर्णित की गई हैं।

अन्नपानादि (Food and Drinks) – संहिता ग्रन्थों में खाद्यान्न और पानीय पदार्थों के विषय में भी विस्तार से चर्चा प्राप्त होती है। विविध धान्य, मसाले, दुग्धपदार्थ, मिष्ठान, विशेष व्यञ्जन, शाक, फल, मद्य आदि के विषय में चर्चा प्राप्त होती है।

वस्त्राणि आभूषणाणि च (Dress and Ornaments) – विविध वस्त्र, परिधान, वस्त्रों के वर्ण,

विविध आभूषण, सज्जा वस्तुएँ (चामर छत्र) इत्यादि का वर्णन संहिता ग्रन्थों में उपलब्ध होता है।

सुगन्ध द्रव्य और स्नानागार की वस्तुएँ (Perfumery and toilets) – गन्ध युक्ति,

गन्ध द्रव्य, तैल, मुखवास, स्नानचूर्ण, धूप, पुत्वास, मूर्धज, राग, ताम्बूल, माला इत्यादि द्रव्यों के निर्माण के प्रकार का वर्णन किया गया है।

आवश्यक गृह उपकरण (Furniture and Miscellaneous Material) – शय्या, पलंग,

भद्रासन, पात्र और आवश्यक वस्तुओं के निर्माण व रख रखाव के विषय में वर्णन प्राप्त होता है।

पुष्प (Fauna) – उस काल में भारत में समुपलब्ध होने वाले विविध पुष्पों की प्रजातियों के

सन्दर्भ में संहिताग्रन्थों में वर्णन प्राप्त होता है। उन पुष्पों का वैशिष्ट्य और उनकी हासवृद्धि के अनुसार लोक में विविध वस्तुओं की हास और वृद्धि का फल बृहत्संहिता के “कुसुमलताध्याय” में वर्णित किया गया है।

कला तथा कुटीर (Arts and Crafts) – प्राचीन भारत में विविध कलाएँ प्रसिद्ध थीं।

विविध हस्तनिर्मित वस्तुओं के उद्योगों के नाम संहिता ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। एक विशेष कार्य करने वाले समुदाय की भी विशेष संज्ञाएँ प्राप्त होती हैं।

अर्थशास्त्र (Trade) – कुछ वस्तु प्रदान करते हुए अन्य वस्तु का लाभ कैसे हो, अर्थ का

विनिमय और व्यापार कैसे करना चाहिये। इन सभी की मानक प्रक्रिया का वर्णन भी संहिता शास्त्र का विषय है।

आभूषण विज्ञान (Jewel Industry) – विविध आभूषण, उनके निर्माण की प्रक्रिया, उनके

धारण की विधि, उनकी देश के विभिन्न क्षेत्रों में समुपलब्धता और विशेष समुदाय के साथ उनकी संबद्धता का वर्णन प्राप्त होता है। विभिन्न प्रकार के रत्न, उनका वैशिष्ट्य, लक्षण और उनकी प्राप्ति के स्थान का वर्णन किया गया है।

मापन विज्ञान (Weights and Measurements) – वस्तुओं के भार मापन के और

वस्त्रादि के दैर्घ्य मापन के सिद्धान्त, मापक वस्तुएँ, उनके द्वारा मापन की प्रक्रिया का भी वर्णन संहिता स्कन्ध में प्राप्त होता है।

मुद्रा विनिमय (Coinage) – मुद्रा के विविध प्रकार, मुद्रा निर्माण हेतु प्रयुक्त धातुएँ, मुद्रा

टङ्कण की पद्धतियाँ, मुद्राओं के आदान प्रदान की प्रक्रिया और मुद्रारूप में प्रयुक्त होने

वाली विविध वस्तुओं का वर्णन संहिता स्कन्ध में किया गया है।

संगीत शास्त्र और चित्र शास्त्र (Sculpture, Music, Painting) – संगीत शास्त्र, मूर्तिकला

शास्त्र और चित्रकला से संबंधित विविध विषयों का संहिता शास्त्र में वर्णन किया गया है।

दर्शन शास्त्र (Philosophy) – ज्योतिषशास्त्र का मूल दर्शनशास्त्र में ही विद्यमान है। संहिता स्कन्ध में दर्शनशास्त्र के भी अनेक विषयों का वर्णन किया गया है। जैसे – कर्मवाद, पुनर्जन्मवाद, सृष्टि उत्पत्ति इत्यादि

धर्मशास्त्र (Religion) – धर्म द्वारा विहित कर्तव्याकर्तव्य का बोधक शास्त्र “धर्मशास्त्र” कहा जाता है। धर्मशास्त्र के भी अनेक विषय संहिता स्कन्ध के अन्तर्गत वर्णित हैं।

न्याय शास्त्र (Law) – विधिविरुद्ध कर्मों का सम्पादन करने वाले व्यक्ति हेतु दण्ड का विधान किया गया। दण्ड का स्वरूप, दण्ड की प्रक्रिया इत्यादि न्याय संबद्ध विषयों का संहिताशास्त्र में वर्णन किया गया।

3.9 सारांश

वैदिक काल में याग को एक अत्यन्त महत्वपूर्ण क्रिया माना गया। और उन वैदिक यागों का सम्पादन एक निश्चित काल में ग्रह नक्षत्रों की विशेष स्थिति में किया जाता था, जो कि मुहूर्त शास्त्र का विषय है। यागों के सम्पादन हेतु कुण्ड मण्डप की सिद्धि हेतु माप व निर्माण विधान का वर्णन वास्तुशास्त्र का विषय है। मुहूर्त व वास्तुदोनों ही संहिता स्कन्ध में समाहित है, अतः संहिता स्कन्ध ज्योतिषशास्त्र का प्राचीनतम स्कन्ध माना जाता है। ज्योतिषशास्त्र का यह स्कन्ध समष्टिहितकारि भावनाओं से अर्थात् राष्ट्रहितकारि भावनाओं से परिपूर्ण है। किसी शास्त्र के ज्ञान के लिये उस शास्त्र के प्रमुख आचार्य व मुख्य विषयों का ज्ञान आवश्यक होता है। इस स्कन्ध में विषयों का अत्यन्त विस्तार है। यह पाठ केवल परिचय मात्र ही है। इस पाठ में संहिता स्कन्ध के प्रमुख ग्रन्थ, प्रमुख आचार्य, प्रमुख ग्रन्थ और प्रमुख विषयों का संक्षेप में वर्णन किया गया।

3.10 पारिभाषिक शब्दावली

दैवचिन्तक – “पूर्व जन्मकृतं कर्म तदेवमिति कथ्यते” शास्त्र कथन के अनुसार पूर्वजन्मार्जित कर्मों को दैव कहा जाता है। अथवा जो नियति परमात्मा के द्वारा तय है वह भी ‘दैव’ कहलाती है। जो व्यक्ति दैव के विषय में चिन्तन करता है। उसके अनुसार सम्भावित घटनाओं का निदर्शन करता है और शुभाशुभ फलों का विवेचन करता है।

सांवत्सर – मुख्य रूप से आचार्य वराहमिहिर ने दैवज्ञ हेतु “सांवत्सर” शब्द का प्रयोग किया। जो

ज्योतिषशास्त्र के तीनों स्कन्धों का ज्ञाता हो उसे ही दैवज्ञ अथवा सांवत्सर कहा गया। साथ ही एक अच्छे दैवज्ञ के सभी लक्षणों व गुणों का आचार्य वराहमिहिर ने विस्तार से प्रतिपादन भी किया।

उत्पात – “प्रकृतेरन्यथोत्पातः” जो घटना प्रकृति से भिन्न व विचित्र दिखाई देती है, उसकी उत्पात संज्ञा की गई। उत्पातों को भी तीन भागों में बांटा गया – १. दिव्य २. भौम और ३. आन्तरिक्ष। जो उत्पात आकाश मण्डल में दिखाई दिये उन्हें दिव्य उत्पात कहा, जैसे धूमकेतू, ग्रहों का वर्ण परिवर्तन, ग्रहण इत्यादि। जो विचित्र घटनाएँ भूमि पर दिखाई दीं उन्हें भौमिक उत्पात कहा, जैसे – भूकम्प, नदीयों का अचानक सूख जाना, वृक्ष का अचानक सूख जाना, मन्दिर में मूर्तियों का खिसकना, हसना या रोना, पशु पक्षियों का विचित्र व्यवहार इत्यादि। और वायुमण्डल में जो विचित्र घटनाएँ दिखाई दीं उन्हें आन्तरिक्ष उत्पात कहा गया। जैसे उल्कापात, विद्युत, प्रचण्ड वात, मेघों की विचित्र आकृति आदि।

दकार्गल – भारत में अनेक स्थल ऐसे हैं जहां अत्यल्प वृष्टि होती है, वहां के निवासी कुओं, बावडी के भूमिगत स्रोतों पर ही आश्रित रहते हैं। प्राचीन आचार्यों ने प्रतिपादित किया कि जिस प्रकार शरीर में रक्त वाहिनियों का जाल होता है उसी प्रकार भूमि में भी जल की अनेक शिराओं का जंजाल होता है, व अनेक स्थलों पर उन शिराओं के जल का भूमि में एकत्रिकरण भी होता रहता है। जल के उन भूमिगत भण्डारों का ज्ञान जिस विधि से होता था, उसे दकार्गल कहा गया।

वृक्षायुर्वेद – वृक्षायुर्वेद अर्थात् ‘वृक्षों का चिकित्साशास्त्र’। जिस प्रकार मनुष्य का शरीर विविध रोगों से ग्रस्त होता है उसी प्रकार से वृक्षों को भी अनेक प्रकार के रोग होते हैं। उनके उपचार की विधियों का वर्णन वृक्षायुर्वेद में किया गया। यदि किसी वृक्ष को एक स्थान से हटाकर अन्य स्थाप प्रत्यारोपित करना हो तो उसे किस प्रकार से यथास्थिति (जिसे उसके पत्ते भी उसी स्थिति में रहें) स्थानान्तरित किया जाय, उसका भी वर्णन संहिता ग्रन्थों में किया। कुछ वृक्षों के बीजों का अंकुरण कठिनाई से होता है, अतः उनके बीजों को तैयार करने की विधियां भी विस्तार से वर्णित की गईं।

निमित्त – वे लक्षण जो भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं के सूचक होते हैं, उन्हें निमित्त कहा गया।

जैसे – पशु पक्षियों का विचित्र व्यवहार, वायु, विद्युत, ग्रहण इत्यादि।

अभ्यास प्रश्न

१. बहुविकल्पात्मक प्रश्न

(क) ज्योतिष शास्त्र के कितने स्कन्ध हैं –

(i) तीन (ii) पांच (iii) दस (iv) सात

(ख) ज्योतिष शास्त्र का स्कन्ध नहीं है –

- (i) होरा (ii) संहिता (iii) साहित्य (iv) सिद्धान्त
- (ग) संहितापारग कौन होता है –
- (i) नक्षत्रकसूचक (ii) दैवचिन्तक (iii) योगी (iv) वेदान्ती
- (घ) संहिता स्कन्ध से संबद्ध ग्रन्थ नहीं है –
- (i) बृहत्संहिता (ii) भद्रबाहुसंहिता (iii) वेदान्तसार (iv) कादम्बिनी
- (ङ) बृहत्संहिता ग्रन्थ के कर्ता है –
- (i) नारायण दैवज्ञ (ii) आचार्य वराहमिहिर (iii) नारद (iv) वसिष्ठ
- (च) संहिता संबद्ध विषय नहीं है –
- (i) सामुद्रिकशास्त्र (ii) वास्तुशास्त्र (iii) ब्रह्मज्ञान (iv) दकार्गल
- (छ) अद्भुतसागर ग्रन्थ के कर्ता है –
- (i) आचार्य वराहमिहिर (ii) नारायण दैवज्ञ (iii) वसिष्ठ (iv) बल्लालसेन
- (ज) कादम्बिनी ग्रन्थ के रचयिता है –
- (i) वसिष्ठ (ii) पं.श्रीमधुसूदन ओझा (iii) आचार्य वराहमिहिर (iv) बल्लालसेन
- (झ) भद्रबाहु संहिता ग्रन्थ के रचयिता है –
- (i) नारायण दैवज्ञ (ii) आचार्य भद्रबाहु (iii) आचार्य वराहमिहिर (iv) बल्लालसेन

२. लघूत्तरात्मक प्रश्न –

- (क) ज्योतिष शास्त्र का प्राचीनतम स्कन्ध कौनसा है?
- (ख) ज्योतिषशास्त्र के किस स्कन्ध में गणित से संबद्ध विषयों का वर्णन है?
- (ग) संहिता स्कन्ध का सर्वप्रमुख ग्रन्थ कौनसा है?
- (घ) संहिता स्कन्ध में वास्तुशास्त्र का अन्तर्भाव होता है या नहीं?
- (ङ) बृहत्संहिता ग्रन्थ में कितने अध्याय हैं?
- (च) “टोडरानन्द” ग्रन्थ का रचनाकार कौन है?
- (छ) संहिताशास्त्र में वृष्टि संबद्ध विषयों का वर्णन है या नहीं?
- (ज) सामुद्रिकशास्त्र का संहितास्कन्ध में अन्तर्भाव है, सत्य अथवा असत्य?
- (झ) भूजल का वर्णन संहिता शास्त्रों में किस अध्याय में किया गया है?
- (ञ) वृक्षों की चिकित्सा का वर्णन किस नाम से किया गया है?

3.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

१. बहुविकल्पात्मक प्रश्नों के उत्तर –

- (क) (i)
- (ख) (iii)
- (ग) (ii)
- (घ) (iii)
- (ङ) (ii)
- (च) (iii)
- (छ) (iv)
- (ज) (ii)
- (झ) (ii)

२. लघूत्तरात्मक प्रश्नों के उत्तर –

- (क) संहिता
- (ख) सिद्धान्त स्कन्ध में
- (ग) बृहत्संहिता
- (घ) है
- (ङ) 106 अध्याय
- (च) राजा टोडरमल्ल
- (छ) है
- (ज) सत्य
- (झ) दकार्गलाध्याय में
- (ञ) वृक्षायुर्वेद अध्याय

3.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- अद्भुतसागरः, श्रीमद्वल्लासेनदेवप्रणीत, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, २००६
- नारदसंहिता, नारदमहामुनिप्रणीता, चौखम्बा संस्कृत भवन, वाराणसी, संवत् २०६५
 - बृहत्संहिता, वराहमिहिरविरचित, चौखम्बाविद्याभवन, वाराणसी, २००९

- बृहत्संहिता (भाग १ व २), आचार्य वराहमिहिर, व्याख्या – नागेन्द्र पाण्डेय, संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, २००२
- बृहत्संहिता, वराहमिहिरविरचिता, भट्टोत्पलटीकासहिता, व्याख्याकार:- अच्युतानन्द झा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी १९९७

3.14 सहायक पाठ्य सामग्री

- मयूरचित्रकम्, देवर्षि नारद विरचितम्, चौखम्बा संस्कृत भवन, वाराणसी, संवत् २०६५
- वसंतराजशाकुनम्, भट्टवसंतराजविरचितं, टीका – भानुचन्द्रगणि, खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई, सन् -१९९७
- वशिष्टसंहिता, ब्रह्मर्षिवृद्धवशिष्टविरचिता, चौखम्बा संस्कृत भवन, वाराणसी, संवत् २०६५
- India as seen in The Brhatsamhita of Varahamihira, Ajay Mitra Shastri, Motilal Banarasidas, 1969

3.15 निबन्धात्मक प्रश्न –

१. ज्योतिष शास्त्र के तीनों स्कन्धों का संक्षिप्त परिचय प्रदान करें।
२. संहिता शास्त्र के प्रमुख ग्रन्थकारों का परिचय प्रदान करें।
३. संहिता स्कन्ध के प्रमुख ग्रन्थों का परिचय प्रदान करें।
४. संहिता स्कन्ध के प्रमुख विषयों का विस्तार से वर्णन करें।
५. आधुनिक परिप्रेक्ष्य में संहिता शास्त्र की उपयोगिता पर प्रकाश डालें।

इकाई – 4 पञ्च-बहुस्कन्धात्मक ज्योतिष विवेचन

इकाई की संरचना

- 4.1 प्रस्तावना
- 4.2 उद्देश्य
- 4.3 पंच स्कन्धात्मक ज्योतिष
- 4.4 बहुस्कन्धात्मक ज्योतिष
- 4.5 सारांश
- 4.6 पारिभाषिक शब्दावली
- 4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 4.8 सहायक पाठ्यसामग्री
- 4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई द्वितीय खण्ड की चौथी इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है— पंच-बहुस्कन्धात्मक विवेचना। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने ज्योतिष शास्त्र का परिचय, इतिहास आदि का अध्ययन कर लिया है। अब आप इसी क्रम में उसके स्कन्धों का अध्ययन करने जा रहे हैं।

ज्योतिष शास्त्र का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है, इसके कई स्कन्ध हैं। इसीलिए बहुस्कन्धात्मक ज्योतिष की बात कही गई है। यदि हम ज्योतिषशास्त्र को कल्पवृक्ष के रूप में जानें, तो उस वृक्ष की कई शाखायें हैं। शाखायें ही स्कन्ध रूप में व्याप्त हैं।

आइए अब हम प्रधान रूप से और विस्तृत रूप से ज्योतिष के स्कन्धों की जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करते हैं।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- ज्योतिष शास्त्र के विविध स्कन्धों को समझ लेंगे।
- प्रधान स्कन्धों को समझ सकेंगे।
- बहुस्कन्धात्मक ज्योतिष को समझा सकेंगे।
- त्रि-पंच- बहुस्कन्धात्मक ज्योतिष का विवेचन कर सकेंगे।

4.3 त्रि-स्कन्ध ज्योतिष

ज्योतिषशास्त्र ब्रह्माण्डोत्पत्ति के साथ ही अपने अस्तित्व को लेकर प्रकट हुआ था। अतः उसका आरम्भ ब्रह्माण्डोत्पत्ति के साथ ही हुआ है, इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं। कालान्तर में उसके रूपों में परिवर्तन होता चला गया। इस शास्त्र के अनेकों प्रवर्तक हुए, जिनमें ब्रह्मा जी से लेकर शौनकादि पर्यन्त विविध नामों का उल्लेख मिलता है। ज्योतिषशास्त्र अपने विविध स्कन्धों के साथ सृष्टि में कल्पवृक्ष की भाँति व्याप्त होकर युग-युगान्तर से लोकोपकारी रहा है। 'त्रि' शब्द का अर्थ तीन (3) होता है, जो संख्यावाची है। प्रधानता के दृष्टिकोण से ज्योतिषशास्त्र के तीन स्कन्ध हुए -

१. सिद्धान्त या गणित
२. होरा या फलित
३. संहिता

इन्हीं तीनों स्कन्धों को 'त्रिस्कन्ध ज्योतिष' के नाम से जाना जाता है। इसका विस्तृत विश्लेषण आगे की इकाईयों में किया जायेगा। यहाँ सामान्य रूप से आप इन्हें समझ लीजिये।

१. सिद्धान्त या गणित – ज्योतिष के प्रमुख स्कन्धों में यह पहला स्कन्ध है, जिसमें काल की सूक्ष्मतम इकाई 'त्रुटि' से लेकर प्रलय काल पर्यन्त काल-गणना, सौर-चान्द्रमासों का प्रतिपादन, ग्रहगतियों का निरूपण, व्यक्ताव्यक्त गणित का प्रयोजन, विविध प्रश्नोत्तर विधि, ग्रह-नक्षत्र की स्थिति, नाना प्रकार के तुरीय, नलिका इत्यादि यन्त्रों की निर्माण विधि, दिक्-देश-काल ज्ञान के अनन्यतम उपयोगी अंग, अक्षक्षेत्र सम्बन्धी अक्षज्या, लम्बज्या, द्युज्या, कुज्या, तद्धृति, समशंकु इत्यादि का आनयन किया जाता है। जैसा कि आचार्य भास्कराचार्य जी ने इसकी परिभाषा बताते हुए कहा है-

त्रुट्यादिप्रलयान्तकालकलना मानप्रभेदः क्रमा-
 चचारश्च द्युसदां द्विधा च गणितं प्रश्नास्तथा सोत्तराः।
 भूधिष्यग्रहसंस्थितेश्च कथनं यन्त्रादियत्रोच्यते।
 सिद्धान्त स उदाहृतोऽत्र गणितस्कन्धस्तृतीयोऽपरः॥

इसके अतिरिक्त सामान्यतया सिद्धान्त को हम इस रूप में भी जानते हैं कि - सिद्धः अन्ते यस्य सः सिद्धान्तः। अर्थात् अन्त में जाकर जो सिद्ध हो जाये, उसका नाम सिद्धान्त है। गण्यते संख्यायते तद् गणितम्। यह गणित की परिभाषा है। प्राचीनकाल में इसकी परिभाषा केवल सिद्धान्त गणित के रूप में मानी जाती थी। आदिकाल में अंकगणित द्वारा ही अहर्गण मान साधित कर ग्रहों का आनयन करना इस शास्त्र का प्रधान प्रतिपाद्य विषय था। पूर्वमध्यकाल में इसकी यह परिभाषा ज्यों की त्यों अवस्थित रही। उत्तरमध्यकाल में इसने अनेक पहलुओं के पल्लों को पकड़ा और इस युग के प्रारम्भ से वासनात्मक होती हुयी भी व्यक्त गणित को अपनाती रही, इसलिए इस काल में गणित के सिद्धान्त, तन्त्र व करण तीन भेद प्रकट हुए।

जिसमें सृष्ट्यादि से इष्ट दिन पर्यन्त अहर्गण बनाकर ग्रह सिद्ध किये जायें वह 'सिद्धान्त'; जिसमें युगादि से इष्ट दिन पर्यन्त अहर्गण बनाकर ग्रहगणित किया जाये वह 'तन्त्र' और जिसमें कल्पित इष्ट वर्ष का युग के भीतर ही किसी अभीष्ट दिन का अहर्गण लाकर ग्रहानयन किया जाये उसे 'करण' कहते हैं।

२. होरा या फलित – प्रमुख स्कन्धों के क्रम में यह दूसरा स्कन्ध है। यह पूर्णतः सिद्धान्त या गणित ज्योतिष पर आधारित है। गणित के द्वारा जब हम ग्रहों को सिद्ध कर लेते हैं, तब उसी आधार पर मानव जीवन के उपर उनका (ग्रहों का) पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण जिस स्कन्ध में हम करते हैं, उसी का नाम ‘होरा या फलित’ ज्योतिष है। इसका दूसरा नाम जातकशास्त्र है। इसकी उत्पत्ति अहोरात्र शब्द से है। आदि शब्द ‘अ’ और अन्तिम शब्द ‘त्र’ का लोप कर देने से होरा शब्द बनता है। होराशास्त्र मानवजीवन का पथप्रदर्शक है। जन्मकुण्डली के आधार पर द्वादश भावों के शुभाशुभ फल का विवेचन करना होराशास्त्र का प्रधान विषय है। जैसा कि आचार्य भट्टोत्पल ने कहा है – ‘प्रतिष्ठायात्राविवाहादीनां लग्नग्रहवशेन च शुभाशुभफलं जगति यया निश्चियते सा होरा’।

३. संहिता – प्रमुख स्कन्धों में यह तीसरा है। इसमें समष्टिपरक फलादेश आदि कर्तव्य किये जाते हैं। इसमें भूशोधन, दिक्शोधन, शल्योद्धार, गृहोपकरण, गृहारम्भ, गृहप्रवेश, वास्तु, दकार्गल, समर्घ-महर्घ, प्राकृतिक आपदा, वृष्टि, जलाशय निर्माण, ग्रहों के उदयास्त का फल, ग्रहचार आदि इत्यादि समस्त प्रकल्प इसी स्कन्ध के अन्तर्गत आते हैं। ऐसा शास्त्र जो जन सामान्य के हितकारक अथवा लोकहितपरक विषयों का सम्यक्तया प्रतिपादन करता हो, उसे संहिता कहा जाता है। व्याकरणदृष्ट्या ‘संहित’ शब्द में टाप प्रत्यय करने पर ‘संहिता’ शब्द की निष्पत्ति होती है।

उपर्युक्त ये तीनों स्कन्ध ज्योतिषशास्त्र के प्रमुख शाखायें हैं, जिनका ज्ञान ज्योतिषशास्त्र के अध्येताओं को होना परमावश्यक है। आइये अब पंच-स्कन्ध ज्योतिष को जानते हैं।

4.4 पंच स्कन्धात्मक ज्योतिष

त्रिस्कन्ध ज्योतिष में ‘प्रश्न एवं शकुन’ को मिलाकर कुल पाँच स्कन्धों को पंच-स्कन्धात्मक ज्योतिष कहा जाता है। होरा स्कन्ध से ‘प्रश्न’ एवं संहिता स्कन्ध से शकुन की उत्पत्ति हुई है। प्रश्न ज्योतिष के अनेकों ग्रन्थ आज प्राप्त होते हैं, क्योंकि ज्योतिष जगत में प्रश्न का बड़ा महत्व है।

किसी व्यक्ति का कोई भी कार्य होगा या नहीं, किस प्रकार होगा ? इत्यादि अनेक प्रश्न लोग दैवज्ञों (ज्योतिषियों) से पूछते हैं। प्रश्न का उत्तर बताने की कई रीतियाँ हैं। कुछ लोग प्रश्नकालीन लग्न के अनुसार फल बताते हैं, इसलिए प्रश्न होरास्कन्ध का एक अंग कहा जा सकता है परन्तु कुछ रीतियाँ ऐसी

हैं, जिनका ज्योतिष से कोई सम्बन्ध नहीं है। फिर भी लोगों की यह धारणा है कि ज्योतिषी सभी प्रकार के भविष्य बताते हैं, इसलिए हर एक प्रकार का प्रश्न ज्योतिष का विषय समझा जाता है और सभी प्रश्न ग्रन्थों की गणना ज्योतिषग्रन्थों में की जाती है। यथार्थ में ज्योतिष से इतर विषय सम्बन्धित प्रश्न ज्योतिष के प्रश्न स्कन्ध में नहीं आता है।

संहितास्कन्ध का ही एक अंग शकुन है। इस पर आचार्य नरपतिकृत नरपतिजयचर्या नामक एक बड़ा प्राचीन अर्थात् विक्रम संवत् १२३२ का ग्रन्थ है। नरपति जैन प्रतीत होते हैं। इसे उन्होंने अन्हिलपट्टन में बनाया था। इनके पिता आम्रदेव धारानगरी में रहते थे। वे बहुत बड़े विद्वान थे। इस ग्रन्थ में स्वर द्वारा मुख्यतः राजाओं के लिए शुभाशुभ फल बताये हैं। ग्रन्थकार ने इसकी ग्रन्थसंख्या ४५०० लिखी है। प्रतीत होता है इसे स्वरोदय और सारोद्धार भी कहते हैं। जिन ग्रन्थों के आधार पर यह बना है उनके नाम ग्रन्थकार ने आरम्भ में इस प्रकार लिखे हैं –

श्रुत्वादौ यामलान् सप्त तथा युद्धजयार्णवम्।

कौमारीकौशलंचैव योगिनां योगसम्भवम्॥

रक्तत्रिमूर्तिकं च स्वरसिंहं स्वरार्णवम्।

भूबलं गारूडं नाम लम्पटं स्वरभैरवम्॥

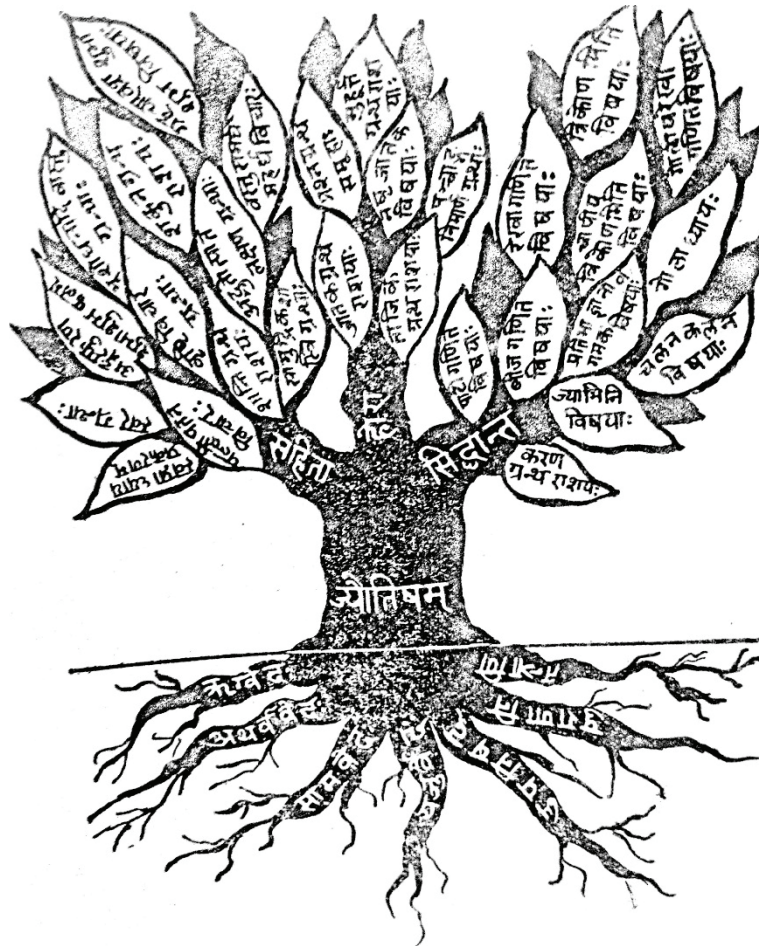
तन्त्रबलंच ताख्यं च सिद्धान्तं जयपद्धतिम्।

पुस्तकेन्द्रं पटौश्रीदप्रणं ज्योतिषार्णवम्॥

इनके अतिरिक्त इसमें वसन्तराज ग्रन्थकार तथा चूडामणि और गणितसार ग्रन्थों के नाम भी आये हैं, अतः ये सभी शके १०९७ के पहले के हैं। इस पर हरिवंशकृत जयलक्ष्मी नाम्नी तथा नरहरि, भूधर और रामनाथ की टीकायें हैं। नैमिषक्षेत्रवासी सूरदास के पुत्र राम वाजपेयी का स्वरशास्त्र पर समरसार नामक ग्रन्थ है। उस पर उनके भाई भरत की टीका है। यह स्वरशास्त्र मुख्यतः नासिका से निकले हुए वायु के आधार पर बनाया गया है। इस विषय के अन्य भी बहुत से ग्रन्थ हैं।

4.5 बहुस्कन्धात्मक ज्योतिष

विदित हो कि ज्योतिषशास्त्र के अनेकों स्कन्ध हैं। सभी का वर्णन करना यहाँ करना सम्भव नहीं, परन्तु प्रमुखता और व्यावहारिकता के दृष्टिकोण से यहाँ अन्य स्कन्धों का उल्लेख किया जा रहा है। सर्वप्रथम आप यहाँ नीचे दिए गए क्षेत्र में बहुस्कन्धात्मक ज्योतिष को समझिये -



ज्योतिष कल्पद्रुम

आप चित्र में ज्योतिषशास्त्र रूपी कल्पवृक्ष को देख रहे हैं, जिसके मूल में चारों वेद - ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद हैं। साथ ही उपनिषद, पुराण एवं तन्त्र का भी उल्लेख है। उसी मूल से उपर आप ज्योतिषशास्त्र और उसके स्कन्धों को देख रहे हैं। सिद्धान्त, संहिता एवं होरा स्कन्ध के भी विभिन्न स्कन्ध आपको वृक्ष की शाखाओं में परिलक्षित हो रहा है।

सिद्धान्त स्कन्ध में पाटी गणित, बीजगणित, रेखागणित, त्रिकोणमिति, ज्यामिति, चलनकलन, गोलाध्याय, करण ग्रन्थ, तन्त्र ग्रन्थ, चापीयत्रिकोणमिति, गोलीयरेखागणित, प्रतिभाबोधकम्, यन्त्रनिर्माण, वेधशाला, श्रृंगोन्नति आदि प्रमुख हैं।

होरा स्कन्ध के अन्तर्गत जातक ग्रन्थ, ताजिक ग्रन्थ, पंचांग निर्माण ग्रन्थ, लघुजातक, मुहूर्त ग्रन्थ एवं प्रश्न ग्रन्थादि प्रमुख हैं।

संहिता स्कन्ध के अन्तर्गत सामुद्रिक, वास्तु, वृष्टि, अद्भुतोत्पात, शकुन, शान्ति, स्वर, ग्रहचार शुभाशुभ, भूशोधनादि, पल्लीपतन विचार, स्वप्न, अंगस्फुरण विचार, रमल आदि प्रमुख हैं।

उपर्युक्त इन स्कन्धों के भी उपस्कन्ध हैं। इसीलिए ज्योतिषशास्त्र अत्यन्त विस्तृत है। मेरी दृष्टि में इसके किसी एक विधा में ही मानव जीवन का यदि सम्पूर्ण काल लगा दिया जाय, तो कदाचित् वो भी अपूर्ण ही रह जाय, तथापि स्थूल रूप से इन सभी का अध्ययन आवश्यक है।

गोलाध्याय - गणित स्कन्ध में गोलाध्याय प्रमुख है जिसकी प्रशंसा करते हुए भास्कराचार्य कहते हैं कि –

भोज्यं यथा सर्वरसं विनाज्यं राज्यं यथा राज्यविवर्जितं च।

सभा न भातीव सुवकतीहीना गोलानभिज्ञो गणकस्तथाऽत्र॥

अर्थात् भोजन में सभी व्यंजन उपलब्ध हो और घी न हों तो भोजन व्यर्थ है, राजा के बिना राज्य तथा अच्छे वक्ता के बिना सभा व्यर्थ है। उसी प्रकार गोल से अनभिज्ञ गणक (ज्योतिषी) नहीं हो सकता। अतः ग्रहों के समुचित ज्ञान के लिए 'गोल' का ज्ञान होना परमावश्यक है। इसकी महत्ता को देखते हुए आचार्य भास्कर ने सिद्धान्तशिरोमणि में 'गोलाध्याय' का स्वतन्त्र रूप से प्रतिपादन किया है।

त्रिकोणमिति – जिस प्रकार ज्योतिषशास्त्रीय त्रिकोणमिति में ज्या अ, कोज्या अ, स्प अ, कोस्प अ, छे अ, तथा कोछे अ का प्रयोग समस्त समीकरणों में करते हैं, उसी प्रकार आधुनिक गणित में हम **Sinθ, Cosθ, tanθ, Cosecθ, Secθ**, तथा **Cotθ** का प्रयोग करते हैं। अन्य सूत्रों को साधने के शेष सभी नियम लगभग समान होते हैं। मेरी दृष्टि में ज्योतिषशास्त्रीय विधि वैदिक पद्धति के अनुसार है, इसीलिए वो आधुनिक से श्रेष्ठ है।

इसी प्रकार बीजगणित, रेखागणित, गोलीयरेखागणित, ज्यामिति, चलनकलन तथा अन्य स्कन्ध भी महत्वपूर्ण हैं।

अभ्यास प्रश्न – 1

1. 'त्रि' शब्द का अर्थ होता है –

क. 3 ख. 4 ग. 5 घ. 6

2. प्रधानतया ज्योतिष शास्त्र के कितने स्कन्ध हैं –
क. पाँच ख. चार ग. छः घ. तीन
3. काल की सूक्ष्मतम इकाई क्या है?
क. रेणु ख. त्रुटि ग. निमेष घ. घटी
4. सिद्धः अन्ते यस्य सः ?
क. होरा ख. गणित ग. सिद्धान्तः घ. संहिता
5. 'ज्योतिषी' का पर्याय है?
क. दैवज्ञ ख. गणक ग. कालवेत्ता घ. उपयुक्त सभी

यन्त्र वेध - वेध शब्द का निर्माण 'विध्' धातु से हुआ है जिसका अर्थ है किसी आकाशीय ग्रह अथवा तारे को दृष्टि के द्वारा वेधना अर्थात् विद्ध करना। ग्रहों तथा तारों की स्थिति के ज्ञान हेतु आकाश में उन्हें देखा जाता था। आकाश में ग्रहादिकों को देखकर उनकी स्थिति का निर्धारण ही वेध है। परिभाषा रूप में "नगनेत्र या शलाका, यष्टि, नलिका, दूरदर्शक इत्यादि यन्त्रों के द्वारा आकाशीय पिण्डों का निरीक्षण ही वेध है।" नलिकादि यन्त्रों से ग्रहों के विद्ध होने के कारण ही इस क्रिया का नाम 'वेध' विश्वविश्रुत है।

दृष्टि तथा यन्त्रभेद से वेध दो प्रकार का होता है-दृष्टि वेध भी अन्तर्दृष्टिवेध तथा बाह्यदृष्टिवेध से दो प्रकार का होता है। यहाँ महर्षियों द्वारा यम-नियम, आसन, प्राणायामादि तपस्याओं से भक्तिज्ञानजन्य नेत्र द्वारा ब्रह्माण्डस्थ पिण्डों के अवलोकन को **अन्तर्दृष्टिवेध** तथा स्व-स्व नग्न नेत्र द्वारा आकाशस्थ पिण्डावलोकन को **बाह्यदृष्टिवेध** माना जाता है। जब हम चक्रनलिका, शंकु, दूरदर्शक आदि वेध-उपकरणों से सूर्यादि ज्योतिःपिण्डों को देखते हैं तो **यन्त्रवेध** होता है।

मुहूर्त – मुहूर्त ज्योतिषशास्त्र का अभिन्न अंग है। 'मुह' धातु में उरट प्रत्यय लगने से मुहूर्त शब्द बना है। इसके बिना हम किसी भी कार्य के शुभाशुभ परिणाम की कल्पना नहीं कर सकते हैं। यथा- व्रत, पर्व, उत्सव, विवाह, षोडशसंस्कार, यज्ञकर्म अथवा अन्य कोई भी शुभ कार्य हो अथवा श्राद्धादि (अशुभ कर्म) कार्य हो हम मुहूर्त के बिना उसका अनुशासन सम्यक रूप से नहीं कर सकते हैं। अतः मुहूर्त का ज्ञान ज्योतिष के अध्येताओं के लिए परमावश्यक है। सामान्यतया लोग ज्योतिषी के पास शुभाशुभ मुहूर्त ज्ञान के लिए ही जाते हैं, अथवा ज्योतिषी से शुभाशुभ मुहूर्त जानने की अपनी इच्छा प्रकट करते हैं।

यदि देखा जाय तो ज्योतिषशास्त्र के उदयकाल में ही मुहूर्त सम्बन्धी साहित्य का निर्माण होने लग गया था तथा आदिकाल और पूर्वमध्यकाल में संहिताशास्त्र के अन्तर्गत ही इस विषय की रचनाएँ हुई थीं, पर उत्तरमध्यकाल में इस अंग पर स्वतन्त्र रचनाएँ दर्जनों की संख्या में हुई हैं। शक संवत् १४२० में नन्दिग्रामवासी केशवाचार्य कृत मुहूर्ततत्त्व, शक संवत् १४१३ में नारायण कृत मुहूर्त मार्तण्ड, शक संवत् १५२२ में रामभट्ट कृत मुहूर्तचिन्तामणि, शक संवत् १५४९ में विठ्ठल दीक्षित कृत मुहूर्तकल्पद्रुम आदि मुहूर्त सम्बन्धी रचनाएँ हुई हैं। इस युग में मानव के भी आवश्यक कार्यों के लिए शुभाशुभ समय का विचार किया गया है।

प्रश्नशास्त्र – यह तत्काल फल बतलाने वाला शास्त्र है। इसमें प्रश्नकर्ता के उच्चारित अक्षरों पर से फल का प्रतिपादन किया जाता है। ईसवी सन् की ५वीं और ६ठी शती में केवल पृच्छक के उच्चारित अक्षरों से फल बतलाना ही प्रश्नकर्ता के अन्तर्गत था; लेकिन आगे जाकर इस शास्त्र में तीन सिद्धान्तों का प्रवेश हुआ – १. प्रश्नाक्षर सिद्धान्त २. प्रश्न लग्न सिद्धान्त, ३. स्वरविज्ञान सिद्धान्त। दिगम्बर जैन ग्रन्थों की अधिकतर रचनाएँ दक्षिण भारत में होने के कारण प्रायः सभी प्रश्न ग्रन्थ प्रश्नाक्षर सिद्धान्त को लेकर निर्मित हुए हैं। अन्वेषण करने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि, चन्द्रोन्मीलन प्रश्न, आयज्ञानतिलक, अर्हच्चूडामणि आदि ग्रन्थों के आधार पर ही आधुनिक काल में केरल प्रश्नशास्त्र की रचना हुई है।

वराहमिहिर के पुत्र पृथुयशा के समय से प्रश्नलग्नवाले सिद्धान्त का प्रचार भारत में तीव्रता से हुआ है। ९वीं १०वीं और ११वीं शती में इस सिद्धान्त को विकसित होने के लिए पूर्ण अवसर मिला है, जिससे अनेक स्वतन्त्र रचनायें भी इस विषय पर लिखी गयी हैं। इस शास्त्र की परिभाषा में उत्तर मध्यकाल तक अनेक संशोधन और परिवर्द्धन होते रहे हैं। चर्या, चेष्टा, हाव-भाव आदि के द्वारा मनोगत भावों का वैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषण करना भी इस शास्त्र के अन्तर्गत आता है।

रमल – रमल का प्रचार विदेशियों के संसर्ग से भारत में हुआ है। संस्कृत भाषा में रमल की पाँच-सात पुस्तकें प्रधान रूप से मिलती हैं। रमलनवरत्नम् नामक ग्रन्थ में पाशा बनाने की विधि का कथन करते हुए कहा गया है कि – ‘वेदतत्त्वोपरिकृतं रमलशास्त्रं च सूरिभिः। तेषां भेदाः षोडशैव न्यूनाधिक्यं न जायते।’

अर्थात् अग्नि, वायु, जल और पृथ्वी इन चार तत्त्वों पर विद्वानों ने रमलशास्त्र बनाया है एवं इन चार तत्त्वों के सोलह भेद कहे हैं, अतः रमल के पाशों में १६ शकलें बतायी गयी हैं।

‘रमलनवरत्न’ के मंगलाचरण में पूर्व के रमलशास्त्रियों को नमस्कार किया गया है: -

नत्वा श्रीरमलाचार्यान् परमाद्यसुखाभिधैः। उद्धृतं रमलाम्भोधेर्नवरत्नं सुशोभनम्॥

अर्थात् प्राचीन रमलाचार्यों को नमस्कार करके परमसुख नामक ग्रन्थकर्ता ने रमलशास्त्ररूपी समुद्र में से सुन्दर नवरत्न को निकाला है। इस ग्रन्थ का रचनाकाल १७ वीं शती है।

शकुनशास्त्र – इसका अन्य नाम निमित्त शास्त्र भी मिलता है। पूर्वमध्यकाल तक इसने पृथक् स्थान प्राप्त नहीं किया था, किन्तु संहिता के अन्तर्गत ही इसका विषय आता था। कालान्तर में ईसवी सन् की १०वीं, ११वीं, और १२वीं शतियों में इस विषय पर स्वतन्त्र विचार होने लग गया था, जिससे इसने अलग शास्त्र का रूप प्राप्त कर लिया। वि०सं० १०८९ में आचार्य दुर्गदेव ने अरिष्ट विषय को भी शकुनशास्त्र में मिला दिया था। आगे चलकर इस शास्त्र की परिभाषा और भी अधिक विकसित हुई और इसकी विषयसीमा में प्रत्येक कार्य के पूर्व में होने वाले शुभाशुभों का ज्ञान प्राप्त करना भी आ गया। वि०सं० १२३२ में अद्विपट्टण के नरपति नामक कवि ने नरपतिचर्या नामक एक शुभाशुभ फल का बोध कराने वाला अपूर्व ग्रन्थ की रचना की थी। इस ग्रन्थ में प्रधान रूप से स्वरविज्ञान द्वारा शुभाशुभ फल का निरूपण किया गया है। वसन्तराज नामक कवि ने अपने नाम पर वसन्तराज शकुन नाम का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ रचा है। इस ग्रन्थ में प्रत्येक कार्य के पूर्ण होने वाले शुभाशुभ शकुनों का प्रतिपादन आकर्षक ढंग से किया गया है। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त मिथिला के महाराज लक्ष्मणसेना के पुत्र बल्लालसेन ने श.सं. १०९२ में अद्भुतसागर नाम का एक संग्रह ग्रन्थ रचा है, जिसमें अपने समय के पूर्ववर्ती ज्योतिर्विदों की संहिता सम्बन्धी रचनाओं का संग्रह किया है। कई जैन मुनियों ने शकुन के उपर वृहद् परिमाण में रचनायें लिखी हैं। यद्यपि शकुनशास्त्र के मूलतत्त्व आदिकाल के ही थे, पर इस युग में उन्हीं तत्त्वों की विस्तृत विवेचनाएँ लिखी गयी हैं।

ताजिक शास्त्र - यवनाचार्य ने फारसी भाषा में ज्योतिष शास्त्र के अंगभूत वर्ष, मास के फल को नाना प्रकार से व्यक्त करनेवाले ताजिक शास्त्र की रचना की थी। ताजिक शास्त्र में इकबाल आदि षोडश (16) प्रमुख योगों की और पुण्यादि 50 सहमों की चर्चा है।

इसके अतिरिक्त भी ज्योतिष के कई स्कन्ध एवं उपस्कन्ध हैं। अत्यधिक विस्तार हो जाने के कारण यहाँ सभी का उल्लेख सम्भव नहीं है।

वास्तु - “वास्तु” शब्द का सामान्य अर्थ निवास है। “वस निवासे” धातु से उणादि सूत्र “वसेस्तुन” के द्वारा “तुन” प्रत्यय करने पर वास्तु शब्द की निष्पत्ति होती है। वास्तु का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ “वसन्त्यस्मिन्नितिवास्तु” है। जब किसी अनियोजित भूखण्ड को सुनियोजित स्वरूप प्रदान कर उसे निवास के योग्य बनाया जाता है, तो उसे वास्तु कहा जाता है। अतः भवन, दुर्ग, प्रासाद, महल, मठ, मन्दिर

और नगरादि समस्त रचनाएँ जिनमें मनुष्य वास करते हैं उन्हें 'वास्तु' पद से सम्बोधित किया जाता है। ब्रह्मा जी को वास्तुशास्त्र के प्रवर्तक के रूप में माना जाता है। वास्तुशास्त्र के प्रमुख आचार्यों का उल्लेख वास्तुशास्त्र के अनेक ग्रन्थों और पुराणों में प्राप्त होता है। मत्स्यपुराण में भृगु, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वकर्मा, मय, नारद, नग्नजित, विशालाक्ष, पुरन्दर, ब्रह्मा, कुमार, नन्दीश, शौनक, गर्ग, वासुदेव, अनिरुद्ध, शुक्र तथा बृहस्पति इन अठारह आचार्यों का वर्णन किया गया है।

अभ्यास प्रश्न – 2

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये –

1. वेध शब्द का निर्माण धातु से हुआ है।
2. पृथुयश के पुत्र थे।
3. रमल के पाशों में शकलें बतायी गयी है।
4. अब्धुतसागर की रचना है।
5. ताजिकशास्त्र में सहर्षों का उल्लेख किया गया है।
6. वास्तु शब्द में प्रत्यय है।

4.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि ज्योतिषशास्त्र ब्रह्माण्डोत्पत्ति के साथ ही अपने अस्तित्व को लेकर प्रकट हुआ था। अतः उसका आरम्भ ब्रह्माण्डोत्पत्ति के साथ ही हुआ है, इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं। कालान्तर में उसके रूपों में परिवर्तन होता चला गया। इस शास्त्र के अनेकों प्रवर्तक हुए, जिनमें ब्रह्मा जी से लेकर शौनकादि पर्यन्त विविध नामों का उल्लेख मिलता है। ज्योतिषशास्त्र अपने विविध स्कन्धों के साथ सृष्टि में कल्पवृक्ष की भाँति व्याप्त होकर युग-युगान्तर से लोकोपकारी रहा है। 'त्रि' शब्द का अर्थ तीन (3) होता है, जो संख्यावाची है। प्रधानता के दृष्टिकोण से ज्योतिषशास्त्र के तीन स्कन्ध हुए – १. सिद्धान्त या गणित २. होरा या फलित ३. संहिता। इन्हीं तीनों स्कन्धों को 'त्रिस्कन्ध ज्योतिष' के नाम से जाना जाता है। इन्हीं स्कन्धों के कई उपस्कन्ध हुए, जिन्हें 'बहुस्कन्धात्मक ज्योतिष' के नाम से जाना जाता है।

4.7 पारिभाषिक शब्दावली

त्रि – ‘त्रि’ संस्कृत का शब्द है, जिसका अर्थ तीन (3) होता है। यह संख्यावाची है।

पंच – पंच का शाब्दिक अर्थ है – पाँच। यह भी संख्यावाची है।

बहुस्कन्धात्मक – बहु का अर्थ है – अनेक। विविध प्रकार के स्कन्ध को बहुस्कन्धात्मक कहा जाता है।

गणित – गण्यते संख्यायते तद् गणितम्। जिसकी गणना की जाय, और जो संख्यावाची हो, उसे गणित कहते हैं।

सिद्धान्त – सिद्धः अन्ते यस्य सः सिद्धान्तः। जो अन्त में जाकर सिद्ध हो जाय, उसे सिद्धान्त कहते हैं।

होरा – अहोरात्र शब्द के आदि और अन्त शब्द का लोप होन पर होरा शब्द का निर्माण हुआ है। जिसका अर्थ समय होता है।

संहिता – जिस स्कन्ध के अन्तर्गत समष्टिपरक फलादेश आदि कर्तव्य किये जाते हैं, उसे संहिता कहते हैं।

4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – 1 की उत्तरमाला

1. क 2. घ 3. ख 4. ग 5. घ

अभ्यास प्रश्न – 2 की उत्तरमाला

1. विधू 2. वराहमिहिर 3. १६ 4. बल्लालसेन 5. ५० 6. तुन्

4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) भारतीय ज्योतिष – श्री शंकर बाल कृष्ण दीक्षित

(ख) वेदांग ज्योतिष – मूल लेखक – महात्मा लगध

(ग) भारतीय ज्योतिष – नेमिचन्द्र शास्त्री

(घ) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक – आचार्य भास्कराचार्य

4.10 सहायक पाठ्यसामग्री

ज्योतिष शास्त्र का इतिहास – लोकमणि दहाल

भारतीय ज्योतिष – शंकरबालकृष्णदीक्षित / नेमिचन्द्र शास्त्री

ज्योतिष सिद्धान्त मंजूषा – प्रोफेसर विनय कुमार पाण्डेय

सुलभ ज्योतिष ज्ञान – पं. वासुदेव सदाशिव खानखोजे

4.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. त्रिस्कन्ध ज्योतिष से क्या तात्पर्य है? वर्णन कीजिये।
2. पंचस्कन्धात्मक ज्योतिष का विवेचन कीजिये।
3. बहुस्कन्धात्मक ज्योतिष से आप क्या समझते हैं? स्पष्ट कीजिये।
4. प्रस्तुत इकाई के अनुसार आप ज्योतिष के विविध स्कन्धों का वर्णन अपने शब्दों में कीजिये।
5. ज्योतिषशास्त्र के विविध स्वरूपों पर प्रकाश डालिये।

खण्ड-3

ज्योतिष शास्त्र की वैज्ञानिकता, उपादेयता एवं अन्य
- मानादि विचार

इकाई - 1 ज्योतिष शास्त्र की वैज्ञानिकता

इकाई की संरचना

- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 उद्देश्य
- 1.3 ज्योतिष शास्त्र का उद्देश्य
- 1.4 ज्योतिष शास्त्र की वैज्ञानिकता
- 1.5 सारांश
- 1.6 पारिभाषिक शब्दावली
- 1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
- 1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 1.9 सहायक पाठ्यसामग्री
- 1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई BAJY(N)222 से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है- ‘ज्योतिष शास्त्र की वैज्ञानिकता’। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने त्रिस्कन्ध ज्योतिष के बारे में अध्ययन कर लिया है। अब आप ज्योतिष की वैज्ञानिकता का अध्ययन करने जा रहे हैं।

वस्तुतः ज्योतिषशास्त्र स्वयं एक महाविज्ञान है। यदि आज से 2000 से 3000 वर्ष पहले विज्ञान के इतिहास की बात करें, तब उस समय केवल दो ही विज्ञान सर्वाधिक प्रचलित थे - एक ज्योतिर्विज्ञान एवं दूसरा आयुर्वेद विज्ञान। कालान्तर में ज्योतिर्विज्ञान से ही अनेक विज्ञान निकलकर पृथक्-पृथक् सत्ता में आने लगे और उनका वर्चस्व बढ़ने लगा, धीरे-धीरे वो स्वतन्त्र रूप से स्थापित हो गये।

आइए इस इकाई में ज्योतिष शास्त्र की वैज्ञानिकता को समझने का प्रयास करते हैं।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप जान लेंगे कि –

- ज्योतिष शास्त्र एक महाविज्ञान है।
- ज्योतिष शास्त्र की वैज्ञानिकता स्वयंसिद्ध है।
- ज्योतिष की वैज्ञानिकता के क्या-क्या प्रमाण है।
- ज्योतिष कैसे एक महाविज्ञान के रूप में सृष्ट्यारम्भ से स्थापित है।
- ज्योतिष कालविधायक होकर समस्त जगत को कैसे प्रभावित करता है।

1.3 ज्योतिष शास्त्र का उद्देश्य

ज्योतिषशास्त्र वेद का ही नहीं अपितु लोक (संसार) का भी नेत्र है। आज भारतवर्ष में ही नहीं अपितु विश्व के अन्यान्य देशों में भी ज्योतिष का प्रचलन किसी-न-किसी रूप में होता है। ज्योतिष केवल हिन्दुओं के लिए ही नहीं वरन् सभी धर्मावलम्बियों के लिए एक अपरिहार्य शास्त्र है, क्योंकि जान-

बूझकर अथवा अनजाने में जैसे भी आग में हाथ जायगा वह जलेगा ही। ज्योतिष में कोई आस्था रखे या न रखे ग्रहों का प्रभाव तो भोगना ही पड़ेगा। परमात्मा ही ग्रहों के रूप में सुख-दुःख का नियन्त्रण करते रहते हैं, जैसा कि पराशर, गर्ग, लोमशादि ऋषियों का कथन भी है - अवताराण्यनेकानि अजस्य परमात्मनः। जीवानां कर्मफलदो ग्रहरूपो जनार्दनः॥ यही बात अन्यत्र भी कही गयी है-

देवता ग्रहरूपेण मनुष्याणां शुभाशुभम् ।

फलं प्रागर्जितं यच्च तद्दाति स्वकीयकम् ॥

सृष्टिरक्षणसंहाराः सर्वे चापि ग्रहानुगाः ।

कर्मणः फलदातारः सूचकाश्च ग्रहाः सदा॥

ज्योतिषशास्त्र का मूल उद्देश्य काल-विधान है। जितना कुछ वैदिक कृत्य, यज्ञानुष्ठान अथवा संस्कारादि कृत्य किये जाते हैं उनमें इस बात पर विचार किया जाता है कि यह विधान किस मुहूर्त में अर्थात् किस दिन, किस नक्षत्र में, किस लग्न में, कैसे योग में प्रारम्भ किया जाय। यदि समय में थोड़ी भी असावधानी हो जाय तो सफलता सन्दिग्ध बन जाती है। अतः मुहूर्त का लोप नहीं होने दिया जाय बल्कि करणीय कार्य स्थगित कर देना चाहिए। समय का इतना सूक्ष्म ज्ञान गणित पर ही आधारित है। इसी गणित के आधारपर ज्योतिष शास्त्र में ग्रहों एवं नक्षत्रों की गति का पूर्ण विवरण संग्रह किया गया है और आचार्यों द्वारा सूक्ष्म अनुभव से यह भी निश्चय किया गया है कि किस अवस्था में, किस मुहूर्त में, किस प्रकार का कार्य करने से क्या फल होता है। किस काल में लग्न-विशेष में जन्म लेने वाले जातक का क्या भविष्य होगा। हमारा प्रत्येक दैनिक जीवन इसी काल-विधान के आधार पर केही निर्धारित किया गया है। यहाँ तक कि कृषकों को कब किस नक्षत्र में खेत जोतना तथा बीज बोना चाहिए, किस मुहूर्त में फसल काटनी चाहिए, कब ओषधियों को ग्रहण करना चाहिए, फसलों को घर में कब ले आवे तथा नवान्न भक्षण करने का मुहूर्त कौन हो, यात्रा, युद्ध, विवाद अथवा मुकदमे आदि के लिए कब प्रस्थान करे, नया घर बनाना कब आरम्भ करे, प्रवेश कब करे, पशुओं के क्रय, विक्रय का मुहूर्त यह सब ज्योतिषशास्त्र में निश्चित कर दिया गया है। किस प्रकार ऋषियों द्वारा नक्षत्रों, ग्रहों, राशियों तथा उनकी गतियों का उनके स्वरूप को, उनकी उत्पत्ति और प्रभाव को जाना गया था। उनकी गणनाएँ इतनी सटीक होती थीं कि कहीं पल भर का भी अन्तर नहीं दिखायी देता। आज इस ज्योतिष विद्या ने इतनी उन्नति कर ली है कि इसके आधार पर की गयी

भविष्यवाणी सर्वथा सत्य घटित होती है। उपर्युक्त ये सभी तथ्य ज्योतिषशास्त्र की वैज्ञानिकता सिद्ध करती है।

आजकल ज्योतिष के सम्बन्ध में जो थोड़ी अनास्था लोगों में देखने को मिलती है उसका कारण यही है कि प्राचीन आचार्यों द्वारा जिस सूक्ष्मता एवं वैज्ञानिकता के साथ विचार किया जाता था उतना न तो आजकल अध्ययन होता है और नहीं परिश्रम। गुरुकुल परम्पराएँ समाप्त होते चली जा रही हैं। शुचिता एवं सदाचार की कमी भी फलादेश की सत्यता में बाधक बन रहा है। ज्योतिषी कैसा हो इस विषय में महर्षि अत्रि का कथन है –

शान्तो विनीतः शुद्धात्मा देवब्राह्मणपूजकः ।

विमुखः परनिन्दासु वेदपाठी जितेन्द्रियः ॥

देवताराधनासक्तः सिद्धान्तसंहितावेत्ता जातके च कृतश्रमः ॥

स्वरशास्त्रविशारदः। प्रश्नज्ञः शकुनज्ञश्च प्रशस्तो गणकः स्मृतः।

प्रमाणं वचनं तस्य भवत्येव न संशयः ॥

अतः बिना ऋषि बने ज्योतिषशास्त्र को सम्यक् रूप से नहीं जाना जा सकता है। जैसा कि आचार्य विष्णुगुप्त का कथन है कि तैरता हुआ मनुष्य कदाचित् वायु के वेग से समुद्र को पार कर सकता है पर कालपुरुष संज्ञक ज्योतिषशास्त्र रूप महासमुद्र को ऋषियों के अतिरिक्त कोई भी मनुष्य मन से भी पार नहीं कर सकता है। यथा - अचानक अप्यर्णवस्य पुरुषः प्रतरन् कदाचिदासादयेदनिलवेगवशेन पारम्। न त्वस्य कालपुरुषाख्य महार्णवस्य गच्छेत्कदाचिदनृषिर्मनसापि पारम् ॥ वर्तमान युग में ऋषि से अभिप्राय सात्त्विकमय आचरण से है। केवलमानवों पर ही नहीं, चराचर जगत् पर ग्रहों का प्रभाव प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है। कभी सामान्य रूप से व्यतीत होती दिनचर्या में अचानक बहुत बड़ी विपत्ति तथा विपत्ति के ही क्षण में अचानक राजयोग भी ग्रहों के द्वारा ही होता है ऐसा देखा जाता है। इस विषय में भारतवर्ष के पूर्व प्रधानमन्त्री स्वर्गीय राजीव गांधी का उदाहरण द्रष्टव्य है। वे वायुसेना में कार्यरत थे, भयंकर हादसे में माँ को गोली लगी, असह्य कष्ट लेकिन तत्क्षण प्रधानमन्त्री के पद पर बैठा दिये गये। अतः “ग्रहाः राज्यं प्रयच्छन्ति ग्रहाः राज्यं हरन्ति च” कथन सर्वथा सत्य है। यह ज्योतिषशास्त्र ही इस तथ्य का आभास कराता है कि मनुष्य से भी अधिक सामर्थ्यवान् कोई अन्य शक्ति भी है। ज्योतिषशास्त्र नास्तिकजनों को भी आस्तिक बना देता है। पुनर्जन्म का ज्ञान भी ज्योतिषशास्त्र द्वारा ही सम्भव है। योग दर्शन में “सति मूले जात्यादयः तद्विपाकाः” अर्थात् जन्म,

आयु और भोग जो दर्शन के निखार हैं, इन तीनों का सम्यक्स्वरूप ज्योतिषशास्त्र ही कर सकता है।
 तदेजति तन्नैजति तदूरे तद्वन्तिके। तदन्तरस्य सर्वस्य तदु
 सर्वस्यास्यबाह्यतः॥ (ईशावास्योपनिषद्)

वह परमात्मा समस्त हलचल करता है, चर होकर भी स्वयं स्थिर है तथा वह दूर और पास भी है, वह जगत में अन्तरंग एवं बहिरंग भी है। वह सर्वव्यापक है। समस्त गति का एकमात्र कारण परमात्मा है और वह स्वयं गतिहीन है।

1.4 ज्योतिष शास्त्र की वैज्ञानिकता

ज्योतिष शास्त्र पूर्णतः विज्ञान है। भारतवर्ष के प्राचीन ऋषियों की देन है- ज्योतिषशास्त्र। ऋषियों के कालखण्ड में आज के सादृश्य जब कोई संसाधन नहीं था, तब भी वह अपनी अध्यात्म की शक्ति से खगोल में स्थित ग्रहपिण्ड, नक्षत्र, राशिचक्र आदि का ज्ञान भली-भाँति कर लिया करते थे। यह अपने आप में आश्चर्यजनक विषय है कि पृथ्वी से करोड़ों मील दूर ग्रहपिण्ड और नक्षत्रों का ज्ञान करके पृथ्वी पर उनके पड़ने वाले प्रभावों को तपःबल के आधार पर जान लेना और उसका सटीक विश्लेषण करके बताना। ऋषि वैदिककाल से ही मानवजीवन को ज्योतिषशास्त्र के माध्यम से उपकृत करते रहें हैं। भारतवर्ष के प्रत्येक प्राचीन ऋषि अलौकिक ज्ञानी, अनुसन्धाता और वैज्ञानिक थे, इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं करना चाहिये। वैज्ञानिकता की कसौटी पर यदि ज्योतिषशास्त्र को देखा जाय, तो निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है –

1. भू-आकर्षण का सिद्धान्त – ज्योतिष के सुप्रसिद्ध आचार्य भास्कराचार्य की देन है।
2. सम्पूर्ण विश्व को वार-क्रम का ज्ञान – ज्योतिषशास्त्र की देन है।
3. दशमलव प्रणाली को क्रमिक व्याख्या करने वाला – ज्योतिषशास्त्र है।
4. मानव जीवन में भूतकाल (व्यतीत हो चुका) का ज्ञान बतलाने का सामर्थ्य - केवल ज्योतिषशास्त्र के पास है।
5. मानव जीवन के भविष्य में होने वाली घटनाओं का पूर्वानुमान कर बताने का सामर्थ्य – ज्योतिष शास्त्र में है।
6. काल का सम्यक्तया ज्ञान करने की क्षमता – केवल ज्योतिष शास्त्र के पास है।
7. तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण का सिद्धान्त – ज्योतिष के पास है।

8. पक्ष, मास, अयन, ऋतु, वर्ष तथा गोल का सिद्धान्त – ज्योतिष के पास है।
9. त्रुटिकाल काल की सबसे सूक्ष्मतम इकाई से लेकर प्रलय काल पर्यन्त की घटना को बताने का सामर्थ्य - ज्योतिषशास्त्र के पास है।
10. विश्व में होने वाली प्राकृतिक आपदाओं का पूर्वानुमान कर बतलाने का सामर्थ्य – ज्योतिष के पास है।
11. आकाश, पाताल, अन्तरिक्ष सभी स्थलों से जुड़े अनेक विषयों को कालानुरोधेन व्यक्त करने का सामर्थ्य - ज्योतिष के पास है।

उक्तानुरूप ये समस्त तत्व जिस शास्त्र के पास है, उसकी वैज्ञानिकता स्वतः ही सिद्ध है। इसके अतिरिक्त भी बहुत सारे विषयों का ज्ञान ज्योतिषशास्त्र के माध्यम से किया जा सकता है। निःसन्देह शिक्षार्थियों को यह समझ लेना चाहिये कि ज्योतिषशास्त्र विज्ञानों का भी विज्ञान है अर्थात् महाविज्ञान है।

भारतीय आर्ष ग्रन्थों में ज्योतिष को वेदपुरुष का चक्षुभूत कहा गया है। मानव के समस्त कार्य व्यापारों को संचालित करने में नेत्रों की भूमिका जिस प्रकार अग्रगण्य है उसी प्रकार ज्ञान के क्षेत्र में ज्योतिषशास्त्र 'द्रष्टा' का कार्य करता है। आज के बौद्धिक समाज को गम्भीरता से समझना होगा कि आधुनिक भौतिक विज्ञान का विकास जो ऊर्जा, काल और दिक् का शास्त्र है वह क्यों कुंठित होता जा रहा है। परमाणु भौतिकी के क्वांटम सिद्धान्त से ऐसे विरोधाभास वैज्ञानिकों के समक्ष उपस्थित हो रहे हैं जिससे आधुनिक विज्ञान की अपूर्णता प्रतिभासित होने लगी है। आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में ज्योतिष, तंत्र और योग उपहास के नहीं, चिन्तन के शास्त्र हैं। ज्योतिषशास्त्र में आधुनिक भौतिकी का अतीत ही नहीं, भविष्य भी अन्तर्निहित है। ज्योतिषशास्त्र के प्रवर्तक वे अठारह महर्षि रहे हैं जिन्होंने ऊर्जा, काल और अनन्त के सम्बन्ध में शास्त्रीय धारणाएँ प्रस्तुत कीं -

सूर्यः पितामहो व्यासो वशिष्ठोऽत्रिः पराशरः।

कश्यपो नारदो गर्गः मरीचिर्मनुरंगिराः।

लोमशः पौलशश्चैव च्यवनो यवनो भृगुः।

शौनकोऽष्टादशश्चैते ज्योतिःशास्त्र प्रवर्तकाः॥

ज्योतिष के सिद्धान्त ग्रन्थों में सूर्य सिद्धान्त प्रमुख है जिसमें ब्रह्म के द्वारा ही सम्पूर्ण चराचर जगत् विश्व और ब्रह्माण्ड का प्रादुर्भाव हुआ बतलाया गया है। इस रहस्य को उद्घाटित करते हुए

‘सूर्यसिद्धान्त’ में स्पष्टतः उल्लिखित है –

वसुदेवः परं ब्रह्म तन्मूर्तिः पुरुषः परः। अव्यक्तो निर्गुणः शान्तः पंचविंशतपरोऽव्ययः॥

अर्थात् वह परम ब्रह्म वासुदेव रूप प्रधान पुरुष पुरुषोत्तम अव्यक्त निर्गुण, शान्त तथा पच्चीस तत्त्वों से परे हैं। सूर्य सिद्धान्त के अनुसार इसी ब्रह्म से सृष्टि का सृजन हुआ। भास्कराचार्य ने ज्योतिषशास्त्र के सिद्धान्त शिरोमणि में ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति का विस्तृत वर्णन किया है। सर्वाधिक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि सूर्य सिद्धान्त, सिद्धान्त शिरोमणि जैसे अन्यान्य ज्योतिषशास्त्र के ग्रंथों में ब्रह्माण्ड के उत्पत्ति की जो विवेचना की गयी है उसी विवेचना को कालान्तर में आधुनिक भौतिकी ने प्रस्तुत की। ब्रिटिश वैज्ञानिक तथा रेडियो ज्योतिर्विद् सर बर्नार्ड लावेल के आधुनिक अनुसंधानों से ज्ञात हुआ कि हमारे विश्व के बाहरी भाग में जो आकाशगंगाएँ हैं वे पहले बड़ी तेजी से दूर हटती जा रही थीं। अब उनके हटने की गति दिन-प्रतिदिन मन्द होती जा रही है। सम्भव है कि यह गति धीमी होते-होते बिल्कुल बन्द हो जाय। खगोलशास्त्रियों की धारणा के अनुसार ब्रह्माण्ड के संकुचन एवं विस्तरण का क्रम निरन्तर चलता रहता है। संकुचन की प्रक्रिया में सारे तारामण्डल, सारी निहारिकाएँ संकुचित होते-होते एक छोटे-से विन्दु में समाहित हो जायँगी। बर्नार्ड लावेल ने ब्रह्माण्ड तथा ग्रह नक्षत्रों की उत्पत्ति, विकास और विनाश के सम्बन्ध में अनेक सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए बतलाया कि आदिकालिक ब्रह्माण्ड की तुलना आज के न्यूट्रान से की जाती है। संकुचित होते-होते ब्रह्माण्ड ने जब एक विन्दु का आकार ग्रहण किया होगा तो वही ब्रह्म है। ज्योतिषशास्त्र के ग्रंथों में इसके नाप तौल की कल्पना नहीं की गयी पर वैज्ञानिक इस विन्दु का वजन १०४६ टन बतलाते हैं। आधुनिक भौतिकी की धारणा है कि उतने घनीभूत आकार में अरबों वर्ष पहले भीषण विस्फोट होने से हमारी पृथ्वी, अन्य ग्रहों, उपग्रहों, नक्षत्रों, निहारिकाओं, आकाशगंगाओं आदि की उत्पत्ति हुई। न्यूजर्सी अमेरिका में स्थित बेल प्रयोगशाला के यन्त्रों द्वारा लगभग २५ वर्ष पूर्व ऐसी ध्वनि सुनी गयी जिसके सम्बन्ध में वैज्ञानिकों की धारणा है कि यह सृष्टि काल के प्रारम्भ में उत्पन्न हुई थी। भास्कराचार्य ने सिद्धान्त शिरोमणि में ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति का जो प्रतिपादन किया वही आज का महाविस्फोट सिद्धान्त है - यस्मात् क्षुब्ध प्रकृति पुरुषाभ्यां महानस्य गर्भे-ऽहंकारोऽभूत् खकशिखिजलोर्व्यस्त्रतः संहतेश्चब्रह्माण्डं यज्जठरगमही पृष्ठ निष्ठाद्विरज्वे- विश्वं शश्वज्जयति परमं ब्रह्म तत तत्त्वमाद्यम्

अर्थात् आद्य तत्त्व वह परम ब्रह्म है जिससे सभी तत्त्वों की उत्पत्ति होती है। वह तत्त्व वासुदेव रूप है। जब उसकी सृष्टि की इच्छा होती है तब उससे संकर्षण नामक अंश की उत्पत्ति होती है। यह संकर्षण प्रकृति और पुरुष में क्षोभ उत्पन्न करता है। प्रकृति-पुरुष के क्षोभ से महत्त्व उत्पन्न होता है। यही ब्रह्म उपनिषदों का सच्चिदानन्द है - सत्+चित्+आनन्द, सत् का तात्पर्य है नैसर्गिक नियम जो सार्वकालिक सत्य होते हैं। इन्हीं नियमों के अन्तर्गत ब्रह्माण्ड का संकुचन होता है। यह शाश्वत प्राकृतिक नियम है। इसका कोई अपवाद सम्भव नहीं है। चित् का अर्थ चेतना है। व्यवहार में प्राकृतिक नियमों में कोई शिथिलता नहीं होती। लय में ही उत्पत्ति का बीज होता है। यह चक्र निरन्तर चलता रहता है। सतत गति ही चेतना है। तीसरे शब्द आनन्द का भाव है साम्यावस्था। अस्तु, ब्रह्म का अर्थ जो ज्योतिषशास्त्र और उपनिषद प्रतिपादित करते हैं उसके अनुसार ब्रह्म साम्यावस्था में चेतनशील प्राकृतिक नियम हैं। महाकाल की रात्रि में निद्रा की साम्यवस्था। आधुनिक विज्ञान के वैचारिक तंत्र में चेतना की अभिधारणा का समायोजन सम्भव नहीं है। वस्तुतः आधुनिक विज्ञान का विरोधाभास और उसके विकास की कुंठा के मूल में चेतना को न समझ पाने की अक्षमता है। इस रूप में ज्योतिषशास्त्र उसकी मदद कर सकता है। यही नहीं, ज्योतिषशास्त्र के सिद्धान्त ग्रन्थों में 'काल', 'शून्य' आदि तत्त्वों की जो विवेचना की गयी उससे आधुनिक विज्ञान को गति मिल सकती है। सूर्यसिद्धान्तकार काल को भी ईश्वर के रूप में अनादि, अनन्त तथा व्यापक विभु मानता है - 'लोकानामन्त कृतकालः' अर्थात् काल समस्त लोकों का अन्त करनेवाला है। कला काष्ठादिरूपेण निमेषघटिकादिना यो वंचयति भूतानि तस्मै कालात्मने नमः जो कला, काष्ठा, निमेष और घटी के रूप में प्राणियों को छलता जाता है मृत्यु के समीप पहुँचाता है उस कालात्मा को नमस्कार है। काल को विश्वनियन्ता के रूप में प्रतिष्ठित किया गया। कालः पचति भूतानि सर्वाण्येव सहात्मना काले सपक्वस्तेनैव सहाऽव्यक्ते लयं व्रजेत् तंत्रशास्त्र और महायोग के सिद्धान्त ग्रन्थों में सृष्टि को विद्या रूपा कहा गया है। दस महाविद्याएँ महाकाली, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, छिन्नमस्ता, भैरवी, घूमावती, वल्गामुखी, मातंगी तथा कमला सृष्टि के विकास के विभिन्न स्तरों पर ऊर्जा के विभिन्न रूपों में सृष्टि का संचालन करती है। इन दस महाविद्याओं में ही वस्तुतः सारा अध्यात्म और आधुनिक विज्ञान समाहित है।

आज विज्ञान की कोई भी शाखा हो भौतिकी, अन्तरिक्ष, संचार, इंजीनियरिंग, रसायन, जैव रसायन, वनस्पति, प्राणि विज्ञान, आयुर्विज्ञान सभी क्षेत्रों में आधुनिकतम शोधकार्य, ऊर्जा (शक्ति) के साथ ही जुड़ा हुआ है। आज आवश्यकता है कि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति से लेकर पृथ्वी पर जीव की उत्पत्ति और मानव जीवन के अध्ययन ने विज्ञान की जिन शाखाओं, प्रशाखाओं को जन्म दिया है उनमें प्रतिपादित सिद्धान्तों का विकास महाविद्याओं के साथ ही अब सम्भव हो सकेगा। यह एक ऐसा सत्य है जिसके सम्बन्ध में विद्वत् समाज को शैक्षिक दृष्टि से समझना होगा। दश महाविद्याएँ गूढतम ऊर्जा विज्ञान हैं। ब्रिटेन के लीड विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों में प्रमुख रिचर्ड नील ने अपने एक शोध में इस तथ्य का उल्लेख किया है कि पूर्णिमा के दिन प्राणियों में मानसिक तनाव, बेचैनी और पागलपन में वृद्धि होती है। पूर्णिमा की रात आत्महत्या को भी प्रेरित करती है। जीवों में भूख बढ़ जाती है। मछलियाँ सुस्त रहती हैं। वस्तुतः चन्द्रमा सौरमण्डल में पृथ्वी का उपग्रह मात्र नहीं है। ऋग्वेद में पुरुष सूक्त के अनुसार चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षौ सूर्योः अजायत' यह विराट् पुरुष के मन से उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार चन्द्रमा पृथ्वी के समस्त प्राणियों के मन का देवता है। मन के स्वामी चन्द्रमा की गतिविधियाँ हमारे मन को प्रभावित करती हैं। वैशेषिक दर्शन जो आधुनिक विज्ञान के अत्यन्त निकट है मन को नौवाँ द्रव्य मानता है जिसके द्वारा आत्मा ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान के सम्पर्क में आता है। इसी प्रकार सूर्य जो विराट् पुरुष के चक्षु से उत्पन्न हुआ, समस्त प्राणियों के प्राण का देवता और स्वामी है। पृथ्वी पर प्राणियों के अस्तित्व की कल्पना सूर्य के बिना नहीं की जा सकती। बृहस्पति को बुद्धि का देवता कहा गया है। ज्ञान के क्षेत्र में विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय की आवश्यकता है।

इस देश में साधना की दो धाराएँ निरन्तर प्रवहमान रही हैं। एक सब का साधन श्रद्धा और बोध रहा है, दूसरे का साधन तर्क और बुद्धि। श्रद्धा और बोध की साधना में हृदय तत्त्व की प्रधानता रहती है यह मानने में विश्वास करता है जबकि तर्क और बुद्धि की साधना में जानने की प्रधानता रहती है। एक साधना श्रद्धाजन्य है तो दूसरी प्रज्ञाजन्य। श्रद्धा और प्रज्ञा की सत्ता स्वतंत्र नहीं होती। श्रद्धा के साथ प्रज्ञाशून्यता और प्रज्ञा के साथ श्रद्धाशून्यता नहीं रहती। वस्तुतः मान लेने में विवेक के साथ श्रद्धा की प्रधानता रहती है अर्थात् इस धारा में साधक मानकर जानता है। इसी प्रकार जान लेने में श्रद्धा के साथ विवेक की प्रधानता रहती है अर्थात् दूसरी धारा में साधक जानकर मानता है। इन दोनों धाराओं

में केवल प्रक्रिया का अन्तर है, मौलिक चित्तवृत्तियों का अन्तर है। एक अध्यात्म की धारा है तो दूसरी विज्ञान की। ज्योतिष, तंत्र और योग के साथ आधुनिक विज्ञान के समन्वय से ही हम ऋत की सत्ता का वास्तविक दिग्दर्शन कर सकेंगे।

नक्षत्रों के उदय तथा अस्त का जो समय भारतीय गणित-ज्योतिष के आधार पर लिख दिया जाता है, वह पूर्णतः सत्य होता है। ज्योतिष के प्राचीन आचार्यों में आर्यभट्ट का नाम उल्लेखनीय है, भारत ही, नहीं विश्व के ज्योतिषाचार्यों में वे अपना विशिष्ट स्थान रखते थे। पाँचवीं शताब्दी में ही उन्होंने नक्षत्रों की वैज्ञानिक खोज कर डाली थी। ग्रहण की भविष्यवाणी करने की पद्धति का ज्ञान संसार को सर्वप्रथम उन्होंने ही दिया था। उनके बाद आचार्य ब्रह्मगुप्त का नाम लिया जा सकता है। ब्रह्मगुप्त ने ज्योतिष विद्या को एक सुव्यवस्थित विज्ञान बनाने का प्रयत्न किया। वराह मिहिर का 'सूर्य-सिद्धान्त' तो ज्योतिष का अच्छा ग्रन्थ है ही, भास्कराचार्य का 'सिद्धान्त-शिरोमणि' भी ज्योतिष का एक श्रेष्ठ ग्रन्थ कहा जा सकता है। भास्कराचार्य ने लिखा है –

आकृष्टशक्तिश्च महीतया यत्खस्थं गुरुत्वाभिमुखं स्वशक्त्या।

आकृष्यते तत् पततीव भातिससमन्तात् क्व पतत्वित्थं खे।

अर्थात् पृथ्वी आकर्षण-शक्ति से युक्त है। इसी शक्ति से वह आकाश की सारी वस्तुओं को अपनी ओर आकर्षित करती है। पृथ्वी कहीं नहीं गिरसकती। सब ओर के समान आकाश में यह कहाँ गिर सकती है? भास्कराचार्य के उपर्युक्त आकर्षण-शक्ति के सिद्धान्त से अपरिचित विश्व ने छह सौ (६००) वर्ष पश्चात् आकर्षण-शक्ति का पता लगानेवाले न्यूटन को सर्वाधिक सम्मान दिया। भास्कराचार्य ने ग्रहों की गणना की सरल रीतियाँ बतायी हैं। जिससे पंचांग बनाने में बड़ी सहायता मिलती है। भास्कराचार्य की कृतियों का अनेक भाषाओं में अनुवाद हुआ है। आर्यभट्ट का 'आर्यभट्टीय' ज्योतिष का एक प्रामाणिक ग्रन्थ है। आर्यभट्ट नाम के दो विद्वान् हुए हैं, पहले ५वीं शताब्दी में जन्मे थे तथा आर्यभट्ट द्वितीय जो लगभग ६५० ई० में कुसुमपुर अर्थात् वर्तमान पटना में जन्मे थे। आर्यभट्ट द्वितीय ने ही 'आर्यभट्टीय' नामक ग्रन्थ की रचना की थी जिसे उन्होंने मात्र २३ वर्ष की आयु में रचा था। उन्होंने 'महासिद्धान्त' जिसे 'आर्यसिद्धान्त' भी कहा जाता है की रचना की थी। इन्होंने ही सर्वप्रथम विश्व को यह ज्ञान दिया था कि सूर्य स्थिर है तथा पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है जिससे दिन और रात होते हैं। भास्कराचार्य कृत अनूठा 'सिद्धान्तशिरोमणि' नामक ग्रन्थ सन् ११५० ई० में लिखा गया था जबकि कॉपरनिकस का जन्म १६ फरवरी, १४७३ ई० को तथा

गैलीलियो का जन्म सन् १५६४ ई० में हुआ था। आजहै'- जैसे सिद्धान्तों को कॉपरनिकस तथा गैलीलियो ने संसार को दिया है। हमें कहा जाता है कि 'पृथ्वी गोल है' तथा 'पृथ्वी सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती यह दुःख नहीं है कि कॉपरनिकस तथा गैलीलियो को यह गौरव क्यों दिया गया वरन् यह दुःख अवश्य है कि भास्कराचार्य के इस सिद्धान्त पर ध्यान-क्यों नहीं दिया गया कि –

"भपञ्जरः स्थिरो भूरेवावृत्यावृत्यावृत्योदयास्तमयो कल्पयति नक्षत्र ग्रहाणाम् ॥"

वैसे तो भास्कराचार्य दो हुए हैं। प्रथम सातवीं शताब्दी में हुए थे तथा द्वितीय बारहवीं शताब्दी के आसपास। कतिपय विद्वानों के अनुसार भास्कराचार्यकृत 'सिद्धान्तशिरोमणि' और अधिक प्राचीन ग्रन्थ है परन्तु अधिक मान्य विद्वत्मतों का अनुसरण करते हुए यदि इस ग्रन्थ का रचनाकाल ११५० ई० के आसपास भी मानें तो भी निश्चिततः यह सिद्धान्त गैलीलियो तथा कॉपरनिकस से तो पूर्व का ही है। वराहमिहिर के जन्म के समय की सही जानकारी तो नहीं है परन्तु उनकी मृत्यु का सही समय ज्ञात है जो ५८७ ई० है। उन्होंने 'पंचसिद्धान्तिका' नामक ग्रन्थ की रचना ५०५ ई० के आसपास की थी। यह ग्रन्थ वराहमिहिरसे पूर्व एवं तत्समय प्रचलित पाँच ज्योतिष सिद्धान्तों का संग्रह है। ये सिद्धान्त हैं - 'पितामह, वसिष्ठ, रोमक, पौलिश तथा सूर्य'। आज केवल 'सूर्य सिद्धान्त' की ही पाण्डुलिपि प्राप्त है। शेष अप्राप्य हैं तथा उनका ज्ञान हमें केवल 'पंचसिद्धान्तिका' से ही मिलता है। पंचसिद्धान्तिका बहुत दिनों तक अप्राप्य थी। प्रोफेसर बूलर ने इसकी दो प्रतियों की खोज की तथा पण्डित सुधाकरद्विवेदी ने १८८६ में डॉ० थीबॉ के साथ संस्कृत टीका तथा अंग्रेजी अनुवाद सहित इसे प्रकाशित किया। वराहमिहिर उज्जयिनी के निवासी थे तथा इन्होंने बृहज्जातक ग्रन्थ की भी रचना की थी। उन्होंने अपने 'पंचसिद्धान्तिका' ग्रन्थ में कहा है - पञ्चमहाभूतमयस्तारागणपञ्जरे महीगोलः। खेज्यस्कान्ता स्थो लोह इवावस्थितो वृत्तः॥ तारागणों के पिंजरे में घिरा हुआ वैसे ही स्थित है जैसे आकाश में चुम्बकों के अर्थात् पंचमहाभूतों का बना हुआ यह पृथ्वी का गोला है और यह मध्य लोहा पड़ा हो। वराहमिहिर आर्यभट्ट के समकालीन थे। उपर्युक्त श्लोक से स्पष्ट है कि पृथ्वी का गोल होना, ऊपर-नीचे आधारहीन एवं ग्रहों की आकर्षण शक्ति से स्थिर होना जैसे महत्वपूर्ण भौगोलिक तथ्यों की खोज हो चुकी थी। वराहमिहिर ने सूर्य-सिद्धान्त के भूगोलाध्याय में लिखा है - सर्वत्रैव महगोले स्वस्थानपरिस्थितम्। मयन्ते खे यतो गोलस्तस्य क्वोर्ध्व क्ववाप्यधः ॥ यह पृथ्वी

की स्थिति के विषय में एवं ऊपर-नीचे की दिशाओं के सम्बन्ध में कितनी यथार्थ उक्ति है। आर्यभट्ट एवं भास्कराचार्य के ज्योतिषशास्त्र एवं खगोलशास्त्र कालोहा सारा संसार मानता था। उनके प्रति स्वतन्त्र भारत में भी महान् आदरभाव है तभी तो हमने अपने प्रथम भू-उपग्रह का नाम 'आर्यभट्ट' रखा जो अप्रैल, सन् १९७५ ई० में तथा दूसरा जिसका नाम 'भास्कर' रखा गया, जून १९७६ में अन्तरिक्ष में प्रक्षेपित किया गया। ज्योतिष को विज्ञान कहना समीचीन है अथवा नहीं, इस बारे में आज बहुत बहस चल रही है किन्तु इस बहस में हिस्सा लेने से पूर्व विज्ञान की प्रकृति को समझना होगा। विज्ञान की प्रकृति एवं सीमाएँ ज्ञान की एक विशिष्ट शाखा का नाम विज्ञान है। यद्यपि विज्ञान कोई विषय-वस्तु नहीं है तथा इसे किसी शास्त्र तक सीमित रखना उचित नहीं है तथापि आज विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में इसे ज्ञान की एक शाखा ही माना जाता है। जब हम किसी वस्तु को देखते हैं तो उस वस्तु के प्रति हमारी कुछ भावात्मक प्रतिक्रिया होती है। यह प्रतिक्रिया अस्थायी होती है जबकि मत्कुछ अधिक स्थायी होता है। प्रतिक्रियाएँ तथा मत कभी-कभी परस्पर विरोधी हो जाते हैं। जब हम मत का गम्भीरता पूर्वक अध्ययन करके कुछ निष्कर्ष निकालते हैं तो हमारा मत अधिक विश्वसनीय हो जाता है। इस प्रकार हम अपने अनुभवों को व्यवस्थित करके चलते हैं। यही व्यवस्थित ज्ञान ही विज्ञान कहलाता है। व्यवस्था के क्रम में निष्कर्ष तक पहुँचने के लिए निम्न ७ सोपानों को पार करना पड़ता है –

१. परिकल्पना का निर्माण
२. प्रदत्तों का संकलन
३. प्रदत्तों का विश्लेषण
४. प्रदत्तों का वर्गीकरण
५. प्रदत्तों में सम्बन्ध की खोज
६. कार्य-कारण सम्बन्ध की स्थापना
७. परिकल्पना की जाँच एवं सिद्धान्त की स्थापना।

इन क्रियाओं को करने के पश्चात् ही वैज्ञानिक किसी विषय का निर्धारण करता है। इसलिए वैज्ञानिक सिद्धान्त सुस्पष्ट, निश्चित, व्यापक, अधिक विश्वसनीय, शुद्ध एवं व्यवस्थित होते हैं। विज्ञान की इस प्रक्रिया का सहारा सभी विषयों में लिया जाता है। सभी प्रकार की खोजों में लोग अस्थायी धारणा,

पूर्वधारणा आदि से प्रेरणान लेकर अनुसंधानों द्वारा निकाले गये निष्कर्षों से प्रेरणा लेते हैं। अनुसंधान की प्रक्रिया में परिकल्पना की जाँच-निरीक्षण, साक्षात्कार एवं प्रयोगों द्वारा एकत्रित प्रदत्तों के परीक्षणों के पश्चात् ही की जाती है और तभी निष्कर्ष निकाले जाते हैं। इसीलिए कुछ लोग ज्योतिष को विज्ञान मानना अधिक पसन्द करते हैं। किन्तु विज्ञान का क्षेत्र सीमित है। प्राकृतिक विज्ञानों का कार्यक्षेत्र प्रकृति है। प्रकृति की अभिव्यक्ति स्थूल रूप में होती है। ज्योतिष केवलबाह्य स्थूल रूप तक ही सीमित नहीं है। इसका कार्यक्षेत्र मनुष्य का आन्तरिकपक्ष भी है। ज्योतिष द्वारा हम व्यक्ति के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना चाहते हैं। इस कार्य में हमें दर्शन और मनोविज्ञान से भी सहायता मिलती है। दर्शन यथार्थ का तार्किक विश्लेषण है। विज्ञान की ही भाँति दर्शन भीमतों एवं तथ्यों को व्यवस्थित करता है। दर्शन में भी व्यापक नियमों की खोज होती है। इसीलिए बहुत-से उच्चकोटि के दार्शनिक, उच्चकोटि के वैज्ञानिक भी रहे हैं। प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तू विज्ञान का जन्मदाता था। डेकार्ट प्रसिद्ध गणितज्ञ था। लायबनीज भी गणित का वेत्ता था। काण्ट भौतिक विज्ञानवेत्ता तथा भूगोलवेत्ता था। ह्वाइटहेड तथा बट्रेण्ड रसेल का गणित ज्ञान प्रसिद्ध है। किन्तु दर्शन तथा विज्ञान में भी भेद है। विज्ञान का क्षेत्र सीमित है जबकि दर्शन का क्षेत्र अधिक व्यापक है। विज्ञान सत्ता के किसी एक भाग से सम्बन्धित है जबकि दर्शन सम्पूर्ण सत्ता को ही अपना विषय बनाता है। विज्ञान के निष्कर्षों में कभी-कभी विरोध हो जाता है, दर्शन इस विरोध का समाधान प्रस्तुत करता है। अतः दर्शन ज्योतिष के क्षेत्रों में अधिक सहायक सिद्ध होता है। जिस प्रकार दर्शन केवल विश्लेषण को अधिक महत्त्व नहीं देता, उसी प्रकार ज्योतिष भी विश्लेषण को संश्लेषण की अपेक्षा कम महत्त्व देता है। यदि किसी मनुष्य की मृत्यु की घटना घट जाती है तो वैज्ञानिक-डॉक्टर उस मौत के कारण का विश्लेषण कर देंगे। ध्यान रहे पोस्टमार्टम के विश्लेषण से कारण-कार्य का विश्लेषण काफी सही रीति से हो जायेगा। किन्तु किसी वैज्ञानिक से यह आशा नहीं की जा सकती कि वह व्यक्ति, समाज या राष्ट्र के भविष्य को देख सके और भविष्य में घटनेवाली घटनाओं का पूर्वाभास दे सके। ज्योतिषशास्त्र का कार्य अतीत के आधार पर वर्तमान का विश्लेषण और तदनुसार भविष्य का अनुमान लगाना होता है। भविष्य फल की व्याख्या करना होता है। इस व्याख्या के शत-प्रतिशत सही होने की आकांक्षा या अपेक्षा क्यों की जाये? पोस्टमार्टम की व्याख्या भी तो शत-प्रतिशत सही नहीं हो सकती। तो ज्योतिष से ही यह आशा क्यों की जाती है? हाँ, ज्योतिष की भी भविष्यवाणी पर्याप्त सीमा तक सही होती है इसी से व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र को संतोष कर लेना चाहिए। फलित ज्योतिष में ज्योतिषी केवल विश्लेषण

का ही आश्रय नहीं लेता है। किसी व्यक्ति, समाज या राष्ट्र के अतीत का विश्लेषण करके ज्योतिषी समग्र व्यक्ति, समाज या राष्ट्र के जीवन को संश्लेषणात्मक दृष्टि से देखकर, मनोविज्ञान या दर्शन का आश्रय लेकर भविष्य में झाँकता है। कारण सम्बन्ध इतिहास अतीत की ओर देखता है। घटनाओं में कार्य-की व्याख्या वह अतीत के आधार पर करता है। विज्ञान भी कार्य-कारण विश्लेषण में अतीत की ओर देखता है। जब घटना घट जाती है तो वैज्ञानिक उसका विश्लेषण करता है। विकास के क्रम का अध्ययन उसने इसी प्रक्रिया से किया। उसका निष्कर्ष है कि अमीबा से विकास करते-करते, कीड़े-मकोड़ों से होते हुए यह प्रक्रिया पशु-पक्षी तक पहुँचती है और उसके पश्चात् इसी क्रम में मनुष्य का विकास हो गया। डार्विन तथा लामार्क का विकास का सिद्धान्त यही है। किन्तु विकास का विश्लेषण करते-करते डार्विन को रुकना पड़ा। अब विज्ञान की गति आगे नहीं है। भविष्य में मनुष्य जाति के विकास का क्या रूप होगा इस पर वैज्ञानिक चुप हैं। जब फिर विकास की कोई नयी घटना घट जायेगी तो वह उसका विश्लेषण कर देगा। उपर्युक्त विश्लेषण से हम और आप सरलता से यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि ज्योतिषशास्त्र को एक विज्ञान कहने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए तथा इसके अध्ययन-अध्यापन की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। ज्योतिष का अध्ययन-अध्यापन वैज्ञानिक रीति से करने की आवश्यकता है। इसमें अनुसंधान कार्य भी होना चाहिए। अनुसंधान के उन सोपानों का अनुसरण करना चाहिए जिनका उल्लेख मैंने पहले किया है। इस विधि से ज्योतिष में अनुसंधान को बढ़ावा मिलना चाहिए। ज्योतिषशास्त्र आगमशास्त्र है। यह पूर्णतया धर्म पर आधारित है, अतः ज्योतिष अध्येताओं को किसी भी परिस्थिति में धर्म का त्याग नहीं करना चाहिए। न्यायमूर्ति जी ने कहा-हम ज्योतिष शिक्षकों से अपेक्षा करते हैं कि वे अपने संस्थानों में वैदिक गणित की शिक्षा अवश्य दें। वैदिक गणित द्वारा बड़ी-से-बड़ी संख्या का गुणा भाग आदि पल भर में दिया जा सकता है। इस क्षेत्र में उन्होंने शकुन्तला देवी के गणित ज्ञान की चर्चा की। उन्होंने कहा, आज कम्प्यूटर का युग है किन्तु यदि बिजली न हो तो अथवा वायरस आदि के द्वारा कम्प्यूटर काम न करें तो गणित ज्ञान से दिहीन ज्योतिषी फलादेश कैसे करेगा? पाश्चात्य ज्योतिषियों की भविष्यवाणी अधिकतम ३० प्रतिशत तक ही सत्य घटित हो पाती है जबकि हमारे यहाँ के भारतीय ज्योतिर्विदों की भविष्यवाणियाँ ७० प्रतिशत, कभी-कभी इससे भी अधिक सत्य होती हैं। अमेरिका के एक राष्ट्रपति की पत्नी का जिक्र करते हुए उन्होंने कहा कि वह अपने कम्प्यूटर में अपनी जन्मकुण्डली सुरक्षित रखती थी तथा समय-समय पर अपने ज्योतिषी से सलाह लेती रहती थी। भारतवर्ष में

चन्द्रमा को आधार बनाकर राशि नाम तथा राशि का फल कहा जाता है जबकि पाश्चात्य देशों में सूर्य की राशि को ही राशि फल अथवा सूर्य को आधार बनाकर फलादेश किया जाता है। अपने जीवन की एक घटना बताते हुए न्यायमूर्ति जी ने कहा कि उन दिनों मैं एक विपत्ति में था किन्तु हमारे यहाँ आये हुए एक ज्योतिर्विद् ने पूछा कि आपकी कुण्डली में गुरु ग्रह कहाँ है? यह बताने पर कि कर्म स्थान में है, ज्योतिषी ने कहा आपका कुछ बिगड़ नहीं सकता, कारण गुरु केन्द्रवर्ती है। किम् कुर्वन्ति ग्रहाः सर्वे यस्य केन्द्रे बृहस्पतिः। ज्योतिषशास्त्र में अनन्त शोध विषय हैं। पाश्चात्य देशों में ज्योतिष में शोध अधिक हो रहे हैं। उनकी तुलना में भारत में ज्योतिषीय शोध नगण्य ही है। उन्होंने छात्रों से कुछ मूलभूत तथ्यों पर विचार करने के लिए कहा। यथा यदि गुरु केन्द्र में है तो दोषों का परिमार्जन कैसे हो सकता है। यह विचारणीय विषय है। दूसरा विवाह मेलापक में वर-कन्या की कुण्डली नहीं, अपितु जीवित होने पर सास, ससुर और बहू की भी कुण्डली मिलानी चाहिए- किसी भी जातक/जातिका की कुण्डली के मेलापक के समय इन बातों का ध्यान रखना चाहिए। प्रथम तो दोनों के मेलापक में घर की शान्ति, मंगली विचार, वैधव्य विचार, पुनः सन्तान सुख का विचार करना चाहिए। बेतिया राज की एक घटना का जिक्र करते हुए उन्होंने बताया कि राज ज्योतिषी के द्वारा मना करने पर या वैधव्य योग बताने पर विवाह किया गया तथा विवाहित स्त्री वैधव्यता को प्राप्त हो गयी। आजकल कुण्डली बदल दी जाती है। परिणामस्वरूप विवाह होने पर जीवन कटुमय हो जाता है। ज्योतिष के छात्रों को आगाह करते हुए उन्होंने कहा कि आज लोग कुण्डली बदलने का कार्य कदापि न करें। कुण्डली के द्वादश भाव में सास का, ससुर का, दादा-दादी का कौन-सा स्थान है इसका भली-भाँति निर्णय कर लेना चाहिए। कारण ज्योतिष ग्रन्थों में इसका उल्लेख कम ही प्राप्त होता है। गणेश जी प्रथम पूज्य हैं। इनकी सँड़ दायें हो या बायें तथा ये घर के किस भाग में रखे जायें प्रवेश द्वार, गृह के मध्य, पूजा-गृह अथवा कोष के स्थान में इसका निर्णय अवश्य करना चाहिए। प्रायः न्याय से सम्बन्धित व्यक्तियों की कुण्डली में शनि एवं गुरु का योगदान होता है। प्रायः अधिकांश न्यायविद् एवं वकीलों की कुण्डली में यही ग्रह प्रधान होते हैं। हाँ, जिनकी कुण्डली में मंगल प्रबल होता है वे क्रिमिनल की वकालत करते हैं। छात्रों को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा कि सूर्य, शनि परस्पर पिता-पुत्र हैं तो ये परस्पर शत्रु कैसे? जन्म के समय जातक मुट्ठी बाँधे रहता है तथा मृत्यु के- समय उसका हाथ खुला रहता है। अतः प्रारब्ध लेकर आया है यही मुट्ठी बाँधना है तथा हाथ खुला रहना

प्रारब्ध भोग समाप्त करके जाना। ज्योतिष में कर्म भाव दसवाँ है तथा धर्म का स्थान नवाँ है अतः पूर्वकृत धर्म ही व्यक्ति को कर्म के लिए प्रेरित करता है।

बोध प्रश्न –

1. निम्न में ज्योतिष किसका 'नेत्र' है।
क. पुराण ख. उपनिषद ग. वेद घ. स्मृति
2. महाविद्याओं की संख्या कितनी है।
क. 18 ख. 10 ग. 14 घ. 15
3. ज्योतिष शास्त्र किसकी देन है।
क. प्राचीन ऋषियों की ख. पाश्चात्य विद्वानों की ग. भास्कराचार्य की घ. कोई नहीं
4. सिद्धान्तशिरोमणि किसकी रचना है।
क. भास्कराचार्य ख. कमलाकर ग. गणेश घ. रामदैवज्ञ
5. त्रुटिकाल से प्रलयकाल पर्यन्त कालगणना किस शास्त्र में की जाती है।
क. वेद में ख. पुराण में ग. ज्योतिष में घ. उपनिषद में
6. ज्योतिषशास्त्र के कितने प्रवर्तक हैं?
क. 15 ख. 16 ग. 18 घ. 20

1.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आपने जान लिया है कि ज्योतिषशास्त्र एक महाविज्ञान है, जिसके भीतर समस्त विज्ञान समाहित है। भारतवर्ष के प्राचीन ऋषियों की देन है- ज्योतिषशास्त्र। ऋषियों के कालखण्ड में आज के सादृश्य जब कोई संसाधन नहीं था, तब भी वह अपनी अध्यात्म की शक्ति से खगोल में स्थित ग्रहपिण्ड, नक्षत्र, राशिचक्र आदि का ज्ञान भली-भाँति कर लिया करते थे। यह अपने आप में आश्चर्यजनक विषय है कि पृथ्वी से करोड़ों मील दूर ग्रहपिण्ड और नक्षत्रों का ज्ञान करके पृथ्वी पर उनके पड़ने वाले प्रभावों को तपःबल के आधार पर जान लेना और उसका सटीक विश्लेषण करके बताना। ऋषि वैदिककाल से ही मानवजीवन को ज्योतिषशास्त्र के माध्यम से

उपकृत करते रहें हैं। भारतवर्ष के प्राचीन ऋषि अलौकिक ज्ञानी, अनुसन्धाता और वैज्ञानिक थे, इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं करना चाहिये।

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

वैदिककाल – वेदों का काल

उपकृत – उपकार

अनुसन्धाता – अनुसन्धान (शोध) करने वाला

सादृश्य – समान

त्रुटि – काल की सूक्ष्मतम इकाई

ज्योतिषशास्त्र – काल को बतलाने वाला शास्त्र

भू-आकर्षण – पृथ्वी के पास का आकर्षण शक्ति, जिसे आज गुरुत्वाकर्षण के नाम से जानते हैं।

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ग

2. ख

3. क

4. क

5. ग

6. ग

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सूर्यसिद्धान्त –

सिद्धान्तशिरोमणि –

वेदांग ज्योतिष –

भारतीय ज्योतिष -

भारतीय ज्योतिष –

आर्यभटीयम् -

1.9 सहायक पाठ्यसामग्री

सूर्यसिद्धान्त –

सिद्धान्तशिरोमणि –

वेदांग ज्योतिष –

भारतीय ज्योतिष -

भारतीय ज्योतिष –

आर्यभटीयम् -

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ज्योतिषशास्त्र की वैज्ञानिकता का विश्लेषण कीजिये।
2. ज्योतिषशास्त्र के उद्देश्य का लेखन कीजिये।
3. ज्योतिषशास्त्र की वैज्ञानिकता पर प्रकाश डालिये।
4. तथ्यों द्वारा स्पष्ट कीजिये कि ज्योतिष एक पूर्ण विज्ञान है।

इकाई - 2 ज्योतिष शास्त्र की उपादेयता

इकाई की संरचना

- 2.1 प्रस्तावना
- 2.2 उद्देश्य
- 2.3 ज्योतिष शास्त्र की उपादेयता
- 2.4 सारांश
- 2.5 पारिभाषिक शब्दावली
- 2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
- 2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 2.8 सहायक पाठ्यसामग्री
- 2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई BAJY(N)222 से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है- ‘ज्योतिष शास्त्र की उपादेयता’। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने ज्योतिष की वैज्ञानिकता का बारे में अध्ययन कर लिया है। अब आप ज्योतिष शास्त्र की उपादेयता अध्ययन करने जा रहे हैं।

ज्योतिषशास्त्र अपने उद्भवकाल से ही मानवजीवन को कालानुरोधेन उपकृत करते रहा है। मानव जीवन के उत्पत्ति से लेकर उसके मृत्यु पर्यन्त जितने भी कालखण्ड है सबमें ज्योतिष का प्रभाव प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ा रहता है। अतः ज्योतिषशास्त्र की उपादेयता सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक है।

आइए इस इकाई में ज्योतिष शास्त्र की उपादेयता को समझने का प्रयास करते हैं।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप जान लेंगे कि –

- ज्योतिष शास्त्र कैसे मानव जीवन से आद्योपान्त जुड़ा है।
- ज्योतिष शास्त्र की उपादेयता सार्वकालिक है।
- ज्योतिष की उपादेयता सार्वभौमिक है।
- ज्योतिष विभिन्न प्रकार से मानव जीवन के लिए उपयोगी है।
- ज्योतिष कालविधायक होकर समस्त जगत को कैसे प्रभावित करता है।

2.3 ज्योतिष शास्त्र की उपादेयता

ज्योतिषशास्त्र एक प्रत्यक्ष शास्त्र है जिसके साक्षीभूत सूर्य एवं चन्द्रमा है। जैसा कि कहा भी गया है-

अप्रत्यक्षाणि शास्त्राणि विवादास्तेषु केवलम्।

प्रत्यक्षं ज्योतिषं शास्त्रं चन्द्राकौ यत्र साक्षिणौ॥

अतः यह स्पष्ट है कि ज्योतिषशास्त्र प्रत्यक्षानुरोधेन व्यवहार करता है। हम सब जानते हैं कि प्रत्यक्ष

को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती है। इसलिए ज्योतिषशास्त्र की उपादेयता भी प्रत्यक्ष रूप से सिद्ध है।

ज्योतिष शास्त्र का प्रयोजन को लेकर आचार्यों में मतभेद रहा है। आचार्यों का एक वर्ग जो अनुसन्धान, गणित एवं परिकल्पना में डूबा रहा वह ज्योतिष का उद्देश्य कालगणना मानता है। वस्तुतः वेदों में ज्योतिष की उपस्थिति इष्टि, दर्श, पौर्णमास, पक्ष, मास, अयन, ऋतु आदि विषयों के स्पष्टार्थ ही रही। अतः ज्योतिष के इस प्रयोजन को मुख्य और आद्य मानना युक्तियुक्त होगा। महर्षि वसिष्ठ ने अपनी संहिता में ज्योतिषशास्त्र के प्रयोजन को इस प्रकार लिखा है –

ऋतुक्रियार्थं श्रुतयः प्रवृत्ताः।

कालाश्रयास्ते ऋतवो निरूक्ताः॥

शास्त्रादमुष्मात् किल कालबोधो

वेदांगताऽमुष्य ततः प्रसिद्धाः॥

बाद के सभी सिद्धान्तज्ञ आचार्यों ने वसिष्ठ के मत को ही माना है। जैसे-जैसे होरा स्कन्ध का विकास होता गया मनुष्य व्यक्तिगत स्तर पर अपनी समस्याओं से निष्कृति पाने के लिए फलित की अपेक्षा करने लगा। परिणाम यह निकला कि ज्योतिष जातक-शास्त्र का पर्याय बन कर रह गया और शेष दो स्कन्ध (सिद्धान्त और संहिता) अन्वेषण और जनसम्पर्क से दूर होने के कारण धूमिल पड़ते गये। प्राचीन आचार्यों में वराहमिहिर ही एक ऐसे प्रख्यात ज्योतिर्विद रहे हैं जिनका तीनों स्कन्धों पर समान अधिकार रहा है।

मनुष्य के समस्त कार्य ज्योतिष के द्वारा ही चलते हैं। व्यवहार के लिए अत्यन्त उपयोगी दिन, सप्ताह, पक्ष, मास, अयन, ऋतु, वर्ष एवं उत्सवतिथि आदि का परिज्ञान इसी शास्त्र से होता है। यदि मानव-समाज को इसका ज्ञान न हो तो धार्मिक उत्सव, सामाजिक त्यौहार, महापुरुषों के जन्मदिन, अपनी प्राचीन गौरव गाथा का इतिहास प्रभृति किसी भी बात का ठीक-ठीक पता न लग सकेगा और न कोई उचित कृत्य ही यथासमय सम्पन्न किया जा सकेगा। शिक्षित या सभ्य समाज की तो बात ही क्या, भारतीय अपढ़ कृषक भी व्यवहारोपयोगी ज्योतिष ज्ञान से परिचित है; वह भलीभाँति जानता है किस नक्षत्र में वर्षा अच्छी होती है, अतः कब बोना चाहिए जिससे फ़सल अच्छी हो। यदि कृषक ज्योतिषशास्त्र के उपयोगी तत्त्वों को न जानता तो उसका अधिकांश श्रम निष्फल जाता। कुछ महानुभाव यह तर्क

उपस्थित कर सकते हैं कि आज के वैज्ञानिक युग में कृषिशाल के मर्मज्ञ असमय में ही आवश्यकतानुसार वर्षा का आयोजन या निवारण कर कृषि कर्म को सम्पन्न कर लेते हैं; इस दशा में कृषक के लिए ज्योतिष ज्ञान की आवश्यकता नहीं। पर उन्हें यह भूलना न चाहिए कि आज का विज्ञान भी प्राचीन ज्योतिष का एक लघु शिष्य है। ज्योतिषशास्त्र के तत्त्वों से पूर्णतया परिचित हुए बिना विज्ञान भी असमय में वर्षा का आयोजन और निवारण नहीं कर सकता है। वास्तविक बात यह है कि चन्द्रमा जिस समय जलचर राशि और जलचर नक्षत्रों पर रहता है, उसी समय वर्षा होती है। वैज्ञानिक प्रकृति के रहस्य को ज्ञात कर जब चन्द्रमा जलचर नक्षत्रों का भोग करता है, वृष्टि का आयोजन कर लेता है। वराहीसंहिता में भी कुछ ऐसे सिद्धान्त आये हैं जिनके द्वारा जलचर चान्द्र नक्षत्रों के दिनों में वर्षा का आयोजन किया जा सकता है। प्राचीन मन्त्रशास्त्र में जो वृष्टि के आयोजन और निवारण की प्रक्रिया बतायी गयी है, उसमें जलचर नक्षत्रों को आलोडित करने का विधान है। सारांश यह है कि वैज्ञानिक जलचर चन्द्रमा के तत्त्वों को ज्ञात कर जलचर नक्षत्रों के दिनों में उन तत्त्वों का संयोजन कर असमय में वृष्टि कार्य को कर लेता है। इसी प्रकार वृष्टि का निवारण जलचर चन्द्रमा के जलीय परमाणुओं के विघटन द्वारा सम्पन्न किया जा सकता है। प्राचीन ज्योतिष के अनन्यतम अंग संहिताशास्त्र में इस प्रकार की चर्चाएँ भी आयी हैं। भद्रबाहु संहिता के शुक्रचार अध्याय में शुक्र की गति के अध्ययन द्वारा वृष्टि का निवारण किया गया है। अतएव यह मानना पड़ेगा कि ज्योतिष तत्त्वों की जानकारी के बिना कृषिकर्म सम्यक्तया सम्पन्न करना सम्भव नहीं। जहाज के कप्तान को ज्योतिष की नित्य बड़ी आवश्यकता होती है; क्योंकि वे ज्योतिष के द्वारा ही समुद्र में जहाज की स्थिति का पता लगाते हैं। घड़ी के अभाव में सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रों के पिण्डों को देखकर आसानी से समय का पता लगाया जा सकता है। ज्योतिष ज्ञानके अभाव में लम्बी यात्रा तय करना निरापद नहीं है, क्योंकि ज्योतिष - ज्ञान के द्वारा ही नयेदेशों और रेगिस्तानों में रास्ता निकाला जा सकता है तथा अक्षांश और देशान्तर के द्वारा उस स्थान की स्थिति और उसकी दिशा आदि का निर्णय लिया जाता है। जहाँ की सीमापैमायश द्वारा निश्चित नहीं की जा सकती है, वहाँ ज्योतिष के द्वारा प्रतिपादित अक्षांश और देशान्तर के आधार पर सीमाएँ निश्चित की गयी हैं। भूगोल का अध्ययन तो इस शास्त्र के ज्ञान के बिना अधूरा ही समझा जायेगा। अन्वेषण कार्य को सम्पन्न करना भी ज्योतिष ज्ञान के बिना सम्भव नहीं। आज तकजितने भी नवीन अन्वेषक हुए हैं वे या तो स्वयं ज्योतिषी होते थे अथवा अपने साथ किसीज्योतिषी को रखते थे। एक बार अमेरिका के एक विद्वान् ने कहा था कि

ग्रह नक्षत्रों के ज्ञान के बिना नवीन देश का पता लगाना सम्भव नहीं है। जहाँ आधुनिक वैज्ञानिक यन्त्र कार्य नहीं करते, अधिक गरमी या सर्दी के कारण उनकी शक्ति क्षीण हो जाती है, वहाँ चन्द्र-सूर्यादि ग्रह-नक्षत्रों के ज्ञान द्वारा दिक्, देश का बोध सरलतापूर्वक किया जा सकता है। किसी उच्चतम पहाड़ की ऊँचाई और अति गम्भीर नदी की गहराई का ज्ञान ज्योतिषशास्त्र के द्वारा किया जा सकता है। शायद यहाँ यह शंका की जाये कि पहाड़ की ऊँचाई और नदी की गहराई का ज्ञान रेखागणित के द्वारा किया जाता है, ज्योतिष के द्वारा नहीं; पर गम्भीरता से विचार करने पर मालूम हो जायेगा कि रेखागणित ज्योतिष का अभिन्न अंग है। प्राचीन ज्योतिर्विदों ने रेखागणित के मुख्य सिद्धान्तों का निरूपण ईसवी सन् ५वीं और छठी शताब्दी में ही कर दिया है। इतिहास को भी ज्योतिष ने बड़ी सहायता पहुँचायी है। जिन बातों की तिथि का पता अन्य साधनों के द्वारा नहीं लग सकता है, ज्योतिष के द्वारा सहज में ही लगाया जा सकता है। यदि ज्योतिषशास्त्र का ज्ञान नहीं होता तो वेद की प्राचीनता कदापि सिद्ध नहीं की जा सकती थी। श्रद्धेय लोकमान्य तिलक ने वेदों में प्रतिपादित नक्षत्र, अयन और ऋतु आदि के आधार पर ही वेदों का समय निर्धारित किया है। सूर्य और चन्द्र ग्रहणों के आधार पर अनेक प्राचीन ऐतिहासिक तिथियाँ क्रम-बद्ध की जा सकती हैं। भूगर्भ से प्राप्त विभिन्न वस्तुओं का काल ज्योतिषशास्त्र के द्वारा जितनी सरलता और प्रामाणिकता के साथ निश्चित किया जा सकता है, उतना अन्य शास्त्रों के द्वारा नहीं। एक बार श्री गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा ने बताया था कि पुरातत्त्व की वस्तुओं के यथार्थ समय को जानने के लिए ज्योतिषज्ञान की आवश्यकता है। सृष्टि के रहस्य का पता भी ज्योतिष से ही लगता है। प्राचीन काल से ही भारतवर्ष में सृष्टि के रहस्य की छान-बीन करने के लिए ज्योतिषशास्त्र का उपयोग किया जा रहा है। इसी कारण सिद्धान्त ज्योतिष के ग्रन्थों में सृष्टि का विवेचन अवश्य रहता है। प्रकृति के अणु-अणु का रहस्य ज्योतिष में बताया गया है जिससे प्रत्येक व्यक्ति सृष्टि के रहस्य को ज्ञात कर अपने कार्यों का सम्पादन कर सकता है। जड़-चेतन सभी पदार्थों की आयु, आकार-प्रकार, उपयोगिता एवं उनके भेद-प्रभेद का जितना सुन्दर विज्ञानसम्मत कथन इस शास्त्र में रहता है उतना अन्य में नहीं। आयुर्वेद तो ज्योतिष का चचेरा भाई है। ज्योतिषविज्ञान के बिना औषधियों का निर्माण यथासमय सम्पन्न नहीं किया जा सकता। कारण स्पष्ट है कि ग्रहों के तत्त्व और स्वभाव को ज्ञात कर उन्हीं के अनुसार उसी तत्त्व और स्वभाववाली दवा का निर्माण करने से वह दवा विशेष गुणकारी होती है। जो भिषक् इस शास्त्र के ज्ञान से अपरिचित रहते हैं वे सुन्दर और अपूर्व गुणकारी दवाओं का

निर्माण नहीं कर सकते। एक अन्य बात यह है कि इस शास्त्र के ज्ञान द्वारा रोगी की चर्चा और चेष्टा को अवगत कर बहुत कुछ अंशों में रोग की मर्यादा जानी जा सकती है। संवेगरंगशाला नामक ज्योतिष ग्रन्थ में रोगी की रोग-मर्यादा जानने के अनेक नियम आये हैं। अतएव जो चिकित्सक आवश्यक ज्योतिष तत्त्वों को जानकर चिकित्सा कर्म को सम्पन्न करता है, वह अपने इस कार्य में अधिक सफल होता है। साधारण व्यक्ति भी इस शास्त्र के सम्यक् ज्ञान से अनेक रोगों से बच सकता है; क्योंकि अधिकांश रोग सूर्य और चन्द्रमा के विशेष प्रभावों से उत्पन्न होते हैं। फायलेरिया रोग चन्द्रमा के प्रभाव के कारण ही एकादशी और अमावस्या को बढ़ता है। ज्योतिर्विदों का अनुमान है कि जिस प्रकार चन्द्रमा समुद्र के जल में उथल-पुथल मचा डालता है, उसी प्रकार शरीर के रुधिर-प्रवाह में भी अपना प्रभाव डालकर निर्बल मनुष्यों को रोगी बना डालता है। अतएव ज्योतिष द्वारा चन्द्रमा के तत्त्वों को अवगत कर एकादशी और अमावस्या को वैसे तत्त्वों वाले पदार्थों के सेवन से बचने पर फायलेरिया रोग छूट जाता है तथा निर्बल मनुष्य रोगों के आक्रमण से अपनी रक्षा कर सकता है। इस शास्त्र की सबसे बड़ी उपयोगिता यही है कि यह समस्त मानव-जीवन के प्रत्येक और परोक्ष रहस्यों का विवेचन करता है और प्रतीकों द्वारा समस्त जीवन को प्रत्यक्ष रूप में उस प्रकार प्रकट करता है जिस प्रकार दीपक अन्धकार में रखी हुई वस्तु को दिखलाता है। मानव का व्यावहारिक कोई भी कार्य इस शास्त्र के ज्ञान बिना नहीं चल सकता है।

ज्योतिषशास्त्र का सम्बन्ध मनुष्य के जन्म-जन्मान्तों से जुड़ा हुआ है। इसलिए ज्ञात-अज्ञात अवस्था में भी निरन्तर हमें ज्योतिषशास्त्र किसी न किसी रूप में प्रभावित करता रहता है। ज्योतिषशास्त्र का दूसरा नाम कालविधान शास्त्र है। क्योंकि काल का निरूपण भी ज्योतिषशास्त्र द्वारा ही होता है। काल के प्रभाव के सम्बन्ध में “कालाधीनं जगत् सर्वम् ” तथा “कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः” ये सूक्तियाँ ही पर्याप्त हैं। मानव जीवन काल तथा कर्म के आधीन होता है। जैसा कि आचार्य वराहमिहिर ने लिखा है-

“यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मणः पंक्तिम्। व्यञ्जयति शास्त्रमेतत् तमसि द्रव्याणि दीपइवा॥”
अर्थात् पूर्वजन्म के कर्मानुसार ही मनुष्य का जन्म उसकी प्रवृत्तियाँ उसके भाग्य का निर्माण होता है। कर्म का विवेचन करते हुए कर्मविपाकसंहिता कहती है—कर्मणा नरकं सूत स्वर्गं याति च कर्मणा। देवत्वं प्राप्नुयाज् जीवो राक्षसत्वं च कर्मणा॥ कर्मणा बन्धमायाति मोक्षमायाति कर्मणा। कर्मणा पतनोच्छ्रायौ नृणां जन्मनि जन्मनि ।। (वृद्धसूर्यारुणकर्मविपाकसंहिता) इन सिद्धान्तों से

यह स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य अपने कर्मों के आधीन अपने भविष्य का निर्माण करता है। जब हम शरीर के केवल सुख और दुःख का विचार करते हैं तो सर्वप्रथम मनुष्य का आयु तथा स्वास्थ्य का प्रश्न सामने आता है। लिखा भी है-

" पूर्वमायुः परीक्ष्येत ततो लक्षणमादिशेत् " (पंचस्वराः)

अर्थात् जब मनुष्य का जीवन रहेगा तभी वह अपने शारीरिक सुखों एवं दुःखों का उपयोग करेगा। "शरीरं व्याधिमन्दिरम् " यह उक्ति स्पष्ट दर्शाती है कि व्याधियों का स्थान शरीर ही है। व्याधियाँ शरीर नष्ट होने के बाद भी जीवका साथ नहीं छोड़ती हैं। ये अन्य जन्मों में भी शारीरिक कष्ट देती रहती हैं। इसलिए आचार्यों ने कहा है "कर्मजा व्याधयः केचित् दोषजाः सन्ति चापरे" अर्थात् कुछ व्याधियाँ कर्मों के कारण होती हैं तथा कुछ वात, पित्त, पूर्वजन्मकृत पापकफ आदि दोषों के कारण होती हैं। इसकी प्रकार व्याधिरूपेण जायते" यह उक्ति भी उक्त तथ्य की पुष्टि करती है। प्रमुख रूप से व्याधियाँ तीन प्रकार की होती हैं। साध्य, असाध्य एवं याप्य। इनमें असाध्य व्याधियाँ प्रायः कर्मज होती हैं। साध्य व्याधियाँ प्रायः दोषज होती हैं। याप्य व्याधियों में प्रायः दोनों की संभावना होती है। असाध्य व्याधियों की प्रायः दो अवस्थाएं होती हैं। १. गर्भस्थ विकृतिजन्य । २. प्रसवोत्तर विकृतिजन्य।

१. गर्भस्थ विकृतिजन्य - गर्भस्थ शिशु के विकास में अवरोध उत्पन्न कर विभिन्न अवयवों में विकार उत्पन्न होना, अंगहीनता, अधिकांग, विकलाङ्ग आदि स्थितियाँ प्रायः असाध्य होती हैं। इनके ज्ञान के लिए ज्योतिषशास्त्र में आंधानकाल के आधार पर ग्रहों की स्थितियों का अवलोकन करने का विधान है। गर्भ के मासानुसार विकास क्रम तथा प्रत्येक मासों के अधिपति ग्रह पूर्व निर्दिष्ट हैं-

कललघनावयवास्थित्वग्रोमस्मृतिसमुद्भवाः क्रमशः ।

मासेषु शुक्रकुजजीवसूर्यचन्द्रार्किसौम्यानाम् । लघुजातक - आधानाध्याय श्लो. ६

शीर्षमुखबाहुहृदयोदराणि कटिवस्तिगुह्यसंज्ञानि । उरू जानू जङ्घे चरणाविति राशयोऽजाद्याः । कालनरस्यावयवान् पुरुषाणां चिन्तयेत्प्रसवकाले । सदसद्ग्रहसंयोगात् पुष्टाः सोपद्रवास्ते च ॥ ल. जा. रा. बलाध्याय श्लो. ४, ५।

प्रत्येक मासों के अधिपति ग्रहों के अनुसार गर्भस्थ शिशु के विकासक्रम का तथा अवरोध या विकृति का ज्ञान किया जाता है। ग्रहों के प्रभाव से प्रसवकाल से पूर्व गर्भपात अथवा समय से पूर्व प्रसव का

ज्ञान	भी	सम्भव	होता
ज्ञान	भी	सम्भव	होता

है।
“सभानुजे शीतकरे विलम्नात् दिवाकरे रिष्फगृहोपयाते ।धरासुते बन्धुगते तदानीं विपद्यते साजननी सगर्भा” ॥ जा. परि. अ. ४ श्लो. ९।

२. प्रसवोत्तर व्याधि: - कभी-कभी प्रसव के अनन्तर किसी व्याधि के परिणामस्वरूप अथवा किसी घटना के फलस्वरूप अंग-क्षतिग्रस्त हो जाते हैं। जिनमें कुछ की चिकित्सा सम्भव हो पाती है तथा कुछ की चिकित्सा असम्भव होने के कारण असाध्य हो जाती है। इस प्रकार के रोगों के पूर्वज्ञान का स्रोत एकमात्र ज्योतिषशास्त्र है। उदाहरणार्थ कुछ योग प्रस्तुत हैं जिनसे कुछ असाध्य रोगों का ज्ञान सहज में किया जा सकता है।
ह्रस्वदीर्घांग- लग्नादिराशयः शिरः प्रभृतिकालाङ्गेषु कल्प्या : ॥

दीर्घराशिर्दीर्घभपश्चयत्राङ्गोह्रस्वं मिश्रमिश्रतदीर्घं व्यस्ते ।ग्रहानाक्रान्तराशिश्चेद्राशि यत् ॥बुधात्सप्तमे भौमे दीर्घदेहः ॥ लग्ने दीर्घभे दीर्घदेहः ॥ जातकतत्त्वम् - प्रथमविवेक सूत्र-२९-३२

अर्थात् लग्नादि राशियों को कालपुरुष के विभिन्न अङ्गों में स्थापित करना चाहिए। जिस अङ्ग में दीर्घ, ह्रस्व राशि और उसका स्वामी जिस अङ्ग में हो वह ह्रस्व अथवा दुर्बल राशि का होता है। मिश्रराशि (कर्क, मिथुन, धनुमकर) और उनके स्वामी जिन अंशों में हो वह अङ्ग सामान्य आकार का होता बुध से सप्तम भाव में यदि भौम स्थित हो तो जातक दीर्घतनु होता है। लग्नेश यदि दीर्घराशि में स्थित हो तो भी जातक दीर्घतनु होता है। है।

यह सर्वविदित है कि सूर्य समस्त ग्रहों का पिता तथा केन्द्र है, ग्रीक द्वारा निर्मित जन्मांग जो २००० वर्षों पुराना है वह आज भी ब्रिटिश म्यूजियम में सुरक्षित रखा है। चीन के प्राचीन इतिहास से स्पष्ट होता है कि वहाँ के शासक समय-समय पर ज्योतिषियों की सलाह लिया करते थे। दिन की गणना सम्पूर्ण विश्व में भारत की ही भाँति प्रचलित है और यह सर्वथा वैज्ञानिक है। तिथियाँ भी पूर्णतः वैज्ञानिक हैं। ज्योतिष की आलोचना करनेवाले देखें कि क्या कभी ग्रहण अष्टमी, सप्तमी आदि तिथियोंमें हुआ है अथवा अमावस्या की रात्रि में चन्द्रमा आकाश के मध्य में चमकता है। विज्ञान के प्रायः अनेक सिद्धान्त कालान्तर में परिवर्तित होते देखे जाते हैं। आज से १०० वर्ष पूर्व विज्ञान पेड़, पौधों में जीवन नहीं मानता था, किन्तु अब मानने लगा है कि वृक्षों में भी प्राणत्व है। पहले डॉक्टर चाय पीना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक मानते थे, और आज कैन्सर जैसे जटिल रोग सेलड़ने की क्षमता चाय में है- ऐसा भरोसा डॉक्टर दिखाने लगे हैं। आज के

वैज्ञानिक भी इस बात को निःसंकोच स्वीकार करते हैं। पहले भारत की दासता तथा आर्थिक रूप से कमजोर होने का कुप्रभाव भारत की सभ्यता, संस्कृति और विज्ञान पर पड़ा तो ज्योतिष भी इससे अछूता नहीं रह सका। परन्तु जैसे-जैसे भारत विकास कर रहा है, ज्योतिष को भी अपना खोया सम्मान प्राप्त हो रहा है, यह आश्चर्य नहीं गर्व की बात है। आज के वैज्ञानिक भी यह स्वीकार करते हैं कि सूर्य पर होनेवाले विस्फोट का प्रभाव मानव पर पड़ता है। सूर्य का हमारी पृथ्वी पर हर क्षेत्र में प्रभाव पड़ता है। क्योंकि हमारे सौर मण्डल का पिता सूर्य, पृथ्वी पर जीवन प्रदान कर रहा है और तनिक भी उसमें किसी भी प्रकार की बाधा हमारे जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालती है। बरसात में यदि सूर्य ४/५ दिन के लिए बादलों में छिप जाता है तो हमारे जीवन में कठिनाइयाँ आने लगती हैं। और रोग व कठिनाइयों से जीवन दुष्कर हो जाता है। रूस के एक वैज्ञानिक चीजेवास्की ने खोजा कि सूर्य पर ११ वर्ष पर छोटा विस्फोट तथा ६० वर्ष पर बड़ा विस्फोट होता है जिसका प्रभाव हमारे जीवन पर पड़ता है और इन्हीं वर्षों में प्राणी पर हिंसा क्रान्ति या युद्ध बढ़ जाया करता है। यह सिद्धान्त रूस के तानाशाह स्टैलिन को पसन्द नहीं आया। चूँकि कम्युनिस्टों की मान्यता है कि क्रान्ति के लिए मजदूरों का शोषण ही प्रमुख है, अतः चीजेवास्की को एक लम्बे समय के लिए जेल में डाल दिया। ज्योतिषशास्त्र में चन्द्रमा को जल का कारक माना गया है। उसका जल पर गया और 'स्टैलिन' के मरने के बाद ही उसे मुक्ति मिल पायी। इसी प्रकार प्रभाव स्पष्ट हो चुका है। ध्यान देने की बात है कि हमारे शरीर में भी जल रक्त के रूप में विद्यमान है और उसमें नमक का अनुपात भी वही है जो समुद्र में है, निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि जब चन्द्रमा समुद्र पर अपना प्रभाव डालता है तो हमारे ऊपर भी अवश्य पड़ता होगा। चन्द्रमा मन का भी कारक है और मानसिक अस्पतालों में पूर्णिमा व अमावस्या के दिनों में रोगियों की संख्या बढ़ जाती है। चन्द्रमा माता का भी प्रतिनिधित्व करता है और बिना गाँ के जीवन सम्भव नहीं होगा हमने यह सोचा भी नहीं होगा कि चन्द्रमा के बिना हमारा जीवन क्या सम्भव है? आइये देखें कि यदि ब्रह्माण्ड में चन्द्रमा को निकाल दें तो क्या होगा। सबसे पहले तो रात पूरी तरह से अन्धकारपूर्ण हो जायगी और जिन्दगी दिन में ही सिकुड़कर रह जायगी। चन्द्रमा से ही समुद्र में लहरें उठ रही हैं और यदि लहरें न उठें तो समुद्र का नमक नीचे बैठ जायगा। समुद्र के तल

में कीड़ों द्वारा बहुत-से रसायन व गन्दगी पनपेगी जिसके कारण बारिश से भी दूषित जल बरसेगा और हमारा जीवन जीने के लिए असम्भव हो जायगा। और स्वच्छ जल के अभाव से प्राणियों का जीवन समाप्त हो जायगा। चन्द्रमा से ही जीवन, स्पन्दन तथा संवेदन होता है।

इस प्रकार सम्पूर्ण ज्योतिषशास्त्र मानवमात्र के लिए उपयोगी है। मानव जीवन के गर्भाधान से लेकर अंत्येष्टि पर्यन्त सर्वत्र ज्योतिष शास्त्र की आवश्यकता है। इतना ही नहीं, वरन् गर्भाधान से पूर्व का भी विचार करने का सामर्थ्य केवल ज्योतिषशास्त्र के पास ही है।

बोध प्रश्न

- ज्योतिषशास्त्र के प्रत्यक्षता के साक्षीभूत है?
क. सूर्य ख. सूर्य-चन्द्र ग. ग्रह घ. राशियाँ
- शुभाशुभ कर्मों को कौन प्रकाशित करता है ?
क. वेद ख. पुराण ग. ज्योतिष घ. दर्शन
- ऋतुओं की संख्या कितनी है?
क. 5 ख. 6 ग. 7 घ. 8
- किस नक्षत्र में वर्षा होगी, इसका निर्धारण कौन करता है।
क. ज्योतिष ख. मौसम वैज्ञानिक ग. कृषक घ. इन्द्र
- वर्षा का कारण ग्रह कौन है?
क. सूर्य ख. चन्द्र ग. गुरु घ. शुक्र
- व्रत, पर्व, पक्ष, मास, ऋतु, अयन एवं गोलादि का ज्ञान किसके द्वारा होता है।
क. ज्योतिष ख. भौतिक विज्ञान ग. रसायन विज्ञान घ. जीव विज्ञान

2.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप ने जान लिया है कि मनुष्य के समस्त कार्य ज्योतिष के द्वारा ही चलते हैं। व्यवहार के लिए अत्यन्त उपयोगी दिन, सप्ताह, पक्ष, मास, अयन, ऋतु, वर्ष एवं उत्सवतिथि आदि का परिज्ञान इसी शास्त्र से होता है। यदि मानव-समाज को इसका ज्ञान न हो तो धार्मिक उत्सव, सामाजिक त्यौहार, महापुरुषों के जन्मदिन, अपनी प्राचीन गौरव गाथा का इतिहास प्रभृति किसी भी बात का ठीक-ठीक पता न लग सकेगा और न कोई उचित कृत्य ही यथासमय

सम्पन्न किया जा सकेगा। शिक्षित या सभ्य समाज की तो बात ही क्या, भारतीय अपढ़ कृषक भी व्यवहारोपयोगी ज्योतिष ज्ञान से परिचित है; वह भली-भाँति जानता है किस नक्षत्र में वर्षा अच्छी होती है, अतः कब बोना चाहिए जिससे फ़सल अच्छी हो। यदि कृषक ज्योतिषशास्त्र के उपयोगी तत्त्वों को न जानता तो उसका अधिकांश श्रम निष्फल जाता। कुछ महानुभाव यह तर्क उपस्थित कर सकते हैं कि आज के वैज्ञानिक युग में कृषिशास्त्र के मर्मज्ञ असमय में ही आवश्यकतानुसार वर्षा का आयोजन या निवारण कर कृषि कर्म को सम्पन्न कर लेते हैं; इस दशा में कृषक के लिए ज्योतिष ज्ञान की आवश्यकता नहीं। पर उन्हें यह भूलना न चाहिए कि आज का विज्ञान भी प्राचीन ज्योतिष का एक लघु शिष्य है। ज्योतिषशास्त्र के तत्त्वों से पूर्णतया परिचित हुए बिना विज्ञान भी असमय में वर्षा का आयोजन और निवारण नहीं कर सकता है। वास्तविक बात यह है कि चन्द्रमा जिस समय जलचर राशि और जलचर नक्षत्रों पर रहता है, उसी समय वर्षा होती है।

2.5 पारिभाषिक शब्दावली

अप्रत्यक्ष – जो सामने दिखलाई न पड़े

ज्योतिष – प्रत्यक्ष शास्त्र, वेद का चक्षु रूपी अंग

साक्षीभूत – साक्ष्य

संस्कृत वांगमय – ऋग्वेद से लेकर हनुमान चालीसा तक

उपादेयता – उपयोगिता

कृषक – किसान

जलचर – जल में विचरण करने वाला, जलचर राशियाँ – कर्क, मीन, वृश्चिक

वर्षा का कारक ग्रह – चन्द्रमा

जन्म – जन्मान्तर – कई जन्मों तक

2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ख
2. ग
3. ख
4. क
5. ख
6. क

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय ज्योतिष - शंकरबालकृष्ण दीक्षित
 लघुजातक - कमलाकान्त पाण्डेय
 जातकपारिजात - वैद्यनाथ
 नारद संहिता - पं. रामजन्म मिश्र
 वेदांग ज्योतिष - मूल लेखक - महात्मा लगध

2.8 सहायक पाठ्यसामग्री

भारतीय ज्योतिष - शंकरबालकृष्ण दीक्षित
 लघुजातक - कमलाकान्त पाण्डेय
 जातकपारिजात - वैद्यनाथ
 नारद संहिता - पं. रामजन्म मिश्र
 वेदांग ज्योतिष - मूल लेखक - महात्मा लगध
 मानसागरी – टीकाकार - प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ज्योतिष शास्त्र का परिचय दीजिये।
2. मानव जीवन में ज्योतिष शास्त्र की उपादेयता पर प्रकाश डालिये।
3. ज्योतिष की उपयोगिता का विस्तृत वर्णन कीजिये।

इकाई – 3 व्यावहारिक ज्योतिष

इकाई की संरचना

- 3.1 प्रस्तावना
- 3.2 उद्देश्य
- 3.3 ज्योतिष शास्त्र की उपयोगिता
- 3.4 ज्योतिष शास्त्र की उपादेयता
- 3.5 सारांश
- 3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
- 3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 3.8 सहायक पाठ्यसामग्री
- 3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई BAJY(N)222 से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है- 'व्यावहारिक ज्योतिष'। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने ज्योतिष की वैज्ञानिकता तथा उपादेयता के बारे में अध्ययन कर लिया है। अब आप व्यावहारिक ज्योतिष का अध्ययन करने जा रहे हैं।

वस्तुतः सम्पूर्ण ज्योतिषशास्त्र व्यावहारिक है, इसमें कहीं भी ऐसा कुछ नहीं है जो अव्यावहारिक हो। किन्तु प्रमुखता के दृष्टिकोण से मानव जीवन में व्यवहार में आने वाले ज्योतिष के कौन-कौन से अंग है आइए इस इकाई में उन विषयों को समझने का प्रयास करते हैं।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप जान लेंगे कि –

- व्यावहारिक ज्योतिष क्या है।
- मानव जीवन में व्यवहार में आने वाले प्रमुख ज्योतिष के अंग कौन-कौन से है।
- दैनिक रूप से व्यवहार में आने वाले ज्योतिष के अंग कौन है।
- ज्योतिष कैसे सबके लिए उपयोगी है।

3.3 व्यावहारिक ज्योतिष

व्यावहारिक ज्योतिष से तात्पर्य है – मानव जीवन के कार्य व्यवहार में आने वाला। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि ज्योतिषशास्त्र में ऐसा कुछ भी नहीं है जो मानव जीवन में अव्यावहारिक हो सकता है, अर्थात् सम्पूर्ण ज्योतिषशास्त्र ही व्यावहारिक है। अब प्रश्न उठता है कि जब सम्पूर्ण ज्योतिषशास्त्र ही व्यावहारिक है तो अलग से व्यावहारिक ज्योतिष की बात क्यों की जा रही है। तो इसका उत्तर है कि ज्योतिष शास्त्र का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि प्रत्येक मानव उसके सम्पूर्ण भाग को न तो देख सकता है और न ही समझ सकता है। इसलिए कम से कम मानव जीवन में जिसका उपयोग वह करता है उसमें कहाँ-कहाँ ज्योतिष व्यावहारिकता के धरातल पर दृष्टिगोचर होता है। उसी की बात अलग से इस इकाई के माध्यम से आप सभी शिक्षार्थियों के लिए की जा रही है। सर्वप्रथम मानव जीवन के आरम्भ काल से बात करते हैं –

- गर्भाधान काल - ज्योतिषशास्त्र के माध्यम से गर्भ में आने के पूर्व से लेकर गर्भस्थ होने तक तथा गर्भ में आने के पश्चात् प्रथम मास से नवम मास तक और उसके बाद जन्म हो जाने तक की समस्त गतिविधियों को ज्योतिष शास्त्र के माध्यम से स्पष्ट बतलाया जा सकता है। गर्भस्थ शिशु के नौ मास तक की स्थिति, उसकी रक्षा तथा सम्यक्तया उसका पालन एवं उत्पत्ति सब ज्योतिषशास्त्र में स्पष्ट निर्देशित किया गया है।
- जातकर्म या नामकरण – जातक की उत्पत्ति के पश्चात् संसार में उसकी पहचान उसके नाम से होती है। और जातक का नामकरण भी ज्योतिषशास्त्र के माध्यम से ही किया जाता है।
- अन्नप्राशन – बालक को अन्नप्राशन कब कराना चाहिये, इसका निर्देश भी ज्योतिषशास्त्र ही देता है।
- भूम्युपवेशन संस्कार – बालक को प्रथम बार भूमि पर बैठाना तथा किस बालक किस विधा में निपुण होगा इसका ज्ञान भी इस संस्कार के माध्यम से ज्योतिषशास्त्र द्वारा ही बताया जाता है।

उक्तानुसार प्रचलित समस्त ‘षोडश संस्कारों’ का कालज्ञान ज्योतिषशास्त्र के माध्यम से ही व्यवहार किया जाता है।

मानव जीवन में व्यवहार में आने वाले दिन-रात, पक्ष, मास, वर्ष, अयन, ऋतु, गोल, व्रत, पर्व, वारादि इत्यादि समस्त का ज्ञान ज्योतिषशास्त्र के माध्यम से ही किया जाता है।

व्यक्तिपरक से समष्टिपरक समस्त व्यवहार का विचार ज्योतिष से ही किया जाता है। पृथ्वी, आकाश, पाताल, ग्रह, नक्षत्र, तारें, उल्का, धूमकेतु आदि समस्त खगोलीय एवं भगोलीय पदार्थों का विश्लेषण भी ज्योतिष के माध्यम से ही किया जाता है। त्रुटि से लेकर प्रलय काल पर्यन्त काल गणना भी ज्योतिष से व्यवहृत होता है।

इसके अतिरिक्त ‘रोगों का विचार’ भी ज्योतिष से ही किया जा सकता है। किस कालखण्ड में किस ग्रह के कारण कौन सा रोग होगा? ग्रह किस प्रकार शरीर के विभिन्न अंगों पर प्रभाव डालती है? साध्यासाध्य समस्त रोगों का विचार आदि इत्यादि समस्त का विचार भी ज्योतिषशास्त्र में किया जाता है।

संहिता ज्योतिष के अन्तर्गत तो व्यक्तिपरक से लेकर सम्पूर्ण सृष्टि का विचार का उल्लेख मिलता है। इस प्रकार ज्योतिष शास्त्र के व्यावहारिक पक्ष को देखें तो मनुष्य के जीवन में प्रत्येक पथ पर ज्योतिषशास्त्र मार्गदर्शक का कार्य करता है।

इस इकाई में एक ही स्थल पर सम्पूर्ण ज्योतिष का उल्लेख तो नहीं किया जा सकता, परन्तु आपके

ज्ञानार्थ कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों का उल्लेख किया जा रहा है।

आकाशीय ज्योतिषिण्डों का विवेचन भारतीय ज्योतिषशास्त्र में विविध प्रकार से किया गया है। ग्रहों का स्वरूप, कक्षा, परिभ्रमणकाल, उदय-अस्त आदि विषयों का गणितशास्त्रीय विश्लेषण आज भी अपना विशिष्ट स्थान रखता है। विना किसी यन्त्र या उपकरण के अभीष्ट समय में समस्त ग्रहों की स्थिति ज्ञात करने की क्षमता केवल भारतीय ज्योतिष शास्त्र में है यद्यपि ग्रहों के सम्बन्ध में भौतिक एवं सैद्धान्तिक ज्ञान हेतु आधुनिक विज्ञान भी सतत प्रयत्नशील है; परन्तु इनका समस्त प्रयास यन्त्राधीन होने के कारण सर्वजन सुलभ नहीं है। भारतीय ज्योतिष-शास्त्र की दूसरी तथा महत्वपूर्ण विशेषता है इन आकाशीय पिण्डों का पृथ्वी अथवा पृथ्वी वासियों पर पड़ने वाले प्रभाव का तलस्पर्शी विवेचन। भारतीय ज्योतिष शास्त्र की यही विशेषता इसकी लोकप्रियता का हेतु है एवं इसे जन-मानस से जोड़ती है। करोड़ों मील दूर स्थित ग्रहों का हमसे कितना निकटतम सम्बन्ध है तथा हम उनसे कितने अधिक प्रभावित हैं इस गूढ़ ग्रन्थि को सुलझाने का श्रेय भारतीय ज्योतिष को है। अनन्त आकाश में बिखरे हुये तारों के बीच हमारे सौर मण्डल के ग्रह भी रात्रि में टिमटिमाते हुए दिखाई देते हैं। उन्हीं में हमारी पृथ्वी भी प्रकाशित ग्रह के रूप में अन्य ग्रह पिण्डों से देखी जा सकती है। जैसे अन्य ग्रहपिण्डों की रचना हुई है लगभग उन्हीं तत्वों से पृथ्वी की रचना हुई है तथा पृथ्वी भी सूर्य की परिक्रमा उसी प्रकार करती है जैसे अन्य ग्रह पिण्ड। इस सौर परिवार की रचना के सम्बन्ध में भगवान भास्कर ने सूर्यसिद्धान्त में लिखा है –

अग्निसोमो भानुचन्द्रौ ततस्त्वङ्गारकादयः। तेजो भूखाम्बुवतेभ्यः क्रमशः पञ्च जज्ञिरे ॥

सू. सि. १२।२४।

अभिप्राय यह कि सूर्य पूर्ण रूप से तैजस है क्योंकि इसकी उत्पत्ति अग्नि तत्त्व से हुई है। आधुनिक अनुसन्धानों से भी ज्ञात होता है कि सूर्य हीलियम नामक दाहक गैस का समूह है। सूर्य मण्डल के चारों तरफ लाखों मील लम्बी- लम्बी ज्वालायें निकलती रहती है तथा विम्ब के मध्य में भी ज्वालाओं का तूफान उठता रहा है। चन्द्रमा सोमात्मक है। सोम शब्द का प्रयोग वैदिक साहित्य में कई अर्थों में किया गया है। सोम एक प्रकार का रस भी होता है। यहाँ रसात्मक सोम ही अभीष्ट है। चन्द्रमा ही रसोत्पादक है। वनस्पतियों का विकास, पुष्पों का विकसित होना आदि प्राकृतिक प्रभाव चन्द्रमा का सोमात्मक होना सिद्ध करता है।

भौमादि पाँच तारा ग्रहों की उत्पत्ति भी क्रम से अग्नि, भू, आकाश, जल और वायु तत्वों से हुई हैं। यद्यपि सभी पिण्डों में पञ्च महाभूतों का मिश्रण है। सभी तत्वों के सम्मिश्रण से ही भौतिक पिण्डों की रचना हुई है परन्तु भौम में अग्नि तत्व की प्रधानता या आधिक्य होने से उसे अग्नि तत्व से उत्पन्न

कहा गया है। इसी प्रकार बुध में पृथ्वी तत्त्व की, गुरु में आकाश तत्त्व की, शुक्र में जल तत्त्व तथा शनि में वायु तत्त्व की प्रधानता है। इनके अतिरिक्त दो ग्रह राहु और केतु नाम से विख्यात हैं जिनका भौतिक अस्तित्व आकाश में नहीं है। ये दोनों ही आकाश मण्डल में दो निश्चित स्थानों के सूचक हैं। चन्द्र विमण्डल (कक्षा) और सूर्य कक्षा (क्रान्ति मण्डल, आधुनिक मतानुसार मूत्रमण मार्ग) के दोनों सम्पातों को राहु और केतु कहा जाता है। यही कारण है कि राहु से केतु की दूरी निरन्तर ६ राशि (३० × ६ - १८०० अंश) तुल्य होती है। इन्हें तमो ग्रह भी कहा जाता है। आकाश में पिण्ड के रूप में न होने से वराह मिहिर प्रमृति कुछ आचार्यों ने इन दोनों ग्रहों स्वीकार नहीं किया है। को ग्रह कोटि में इस प्रकार नवग्रहों को चार कोटि में विभक्त कर आचार्यों ने यह व्यक्त कर दिया कि सूर्य और चन्द्रमा का पृथक्-पृथक् गुण-धर्म और अस्तित्व है। पाँचतारा ग्रह (भौम, बुध, गुरु, शुक्र, शनि) एक कोटि में गिने गये हैं इनका भौतिक और आकाशीय लक्षणों के आधार पर पृथक् वर्गीकरण किया है। राहु और केतु दोनों पात ग्रह हैं। ग्रहण काल में इनका विशेष महत्त्व होता है। सूर्य या चन्द्र ग्रहण इन्हीं राहु और केतु नामक पात स्थानों में ही होता है। ग्रह गणित की दृष्टि से इन पातस्थानों का अपना महत्त्व है अतः इन पात स्थानों की भी गणना ग्रहों की ही तरह की जाती है। तथा इन पात स्थानों से ग्रहों पर पड़ने वाले प्रभावों का भी अध्ययन कर भारतीय मनीषियों ने इन्हें भी ग्रह का स्थान दिया है। आधुनिक मतानुसार सूर्य को तारा, चन्द्रमा को उपग्रह, मंगल, पृथ्वी, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, हर्शल (यूरेनस), नेपच्यून और प्लूटो को ग्रह, राहु और केतु को पात ग्रह माना जाता है सभी ग्रह सूर्य से ही उत्पन्न हुये हैं।" तथा सूर्य की विभिन्न किरण पृथक्-पृथक् पुराणों ने भी सूर्य का अस्तित्व ग्रहों से भिन्न माना है। पुराणों के अनुसार ग्रहों को प्रकाशित करती है। सूर्य की प्रत्येक राशि का नाम, गुण और धर्म जाती है तब उनमें तत्तद् ग्रहों के भी गुण धर्म मिश्रित हो जाते हैं। कम पृथक्-पृथक् है। प्रत्येक ग्रह पिण्ड से परावर्तित होकर जब वे रश्मियाँ पृथ्वी पर पुराण के आधार पर सूर्य रश्मियाँ तथा उनसे पोषित ग्रहों के नाम इस प्रकार हैं।

सूर्यरश्मि

प्रकाशितग्रह

१. सुषुम्ना	चन्द्रमा
२. हरिकेश	नक्षत्र
३. विश्वकर्मा	बुध
४. विश्वव्यचा	शुक्र
५. संयद्वसु	भौम
६. अर्वावसु	बृहस्पति
७. सुराट्	शनि

मानव शरीर भी पाञ्चभौतिक ही है। रचना में भेद है। अस्थि-मांस-रक्त-स्नायु-चर्म प्रभृति शारीरिक द्रव्यों से निर्मित शरीर पर सभी ग्रहों का समान रूप से प्रभाव नहीं पड़ता है अपितु प्रत्येक ग्रह किसी अवयव विशिष्ट से सम्बन्धित प्रभाव उनसे सम्बन्धित अवयवों पर विशेष होते हैं तथा उन ग्रहों के रूप से पड़ते हैं। यथा—

ग्रह	प्रभावित अंग
सूर्य	पित्त, अस्थि एवं केश
चन्द्रमा	कफ, वायु, रूधिर और वाणी
मंगल	पित्त, रक्त और मज्जा
बुध	त्रिधातु, चर्म, स्नायु और वाणी
गुरु	कफ, मांस, अस्थि और बुद्धि
शुक्र	कफ, वायु, शुक्र तथा केश
शनि	वायु, स्नायु, नख, दांत, और रोम
राहु तथा केतु	वायु, दांत और ओष्ठ

इस प्रकार हम समझ सकते हैं कि ये दूरस्थ ग्रह हमारे अत्यन्त समीपस्थ हैं। ग्रहों का सम्बन्ध मात्र शारीरिक अवयवों से संक्षेप में दर्शाया गया है इस सम्बन्ध में विस्तृत ज्ञान अन्य ग्रन्थों से किया जा सकता है। इन ग्रहों का प्रभाव विभिन्न राशियों के संसर्ग से तथा जन्म लग्न के पृथक् रूप से दृष्टिगत होता है इनका समुचित ज्ञान तथा जन्म पत्रों के अभ्यास से ही सम्भव है। सम्बन्ध से प्रत्येक व्यक्ति के लिए पृथक्-ग्रन्थों के अवलोकन मानचित्र होता है। जन्म समय में आकाश के किस भाग में कौन सी राशि थी तथा किन-किन राशियों से ग्रहों का सम्बन्ध था इस मानचित्र से ज्ञात हो जाता है।

जन्मराशियों से किन ग्रहों का जन्म लग्न आकाशीय राशिचक्र (क्रान्ति वृत्त) काकाल में स्थानीय क्षितिज को स्पर्श करता है। क्षितिज पर जो राशि होती है उसी को लग्न तथा मध्य आकाश में जो राशि होती है उसे दशम भाव या दशमलग्न तथा नीचे आकाश मध्य में जो राशि होती है उसे चतुर्थ भाव तथा अस्त क्षितिज पर जो राशि होती है उसे सप्तम भाव कहते हैं। इन्हीं चारों स्थानों की केन्द्र संज्ञा होती है। इस चक्र के निर्माण की विधि इसी ग्रन्थ में देखें।

इस शास्त्र के माध्यम से मनुष्य अपनी शारीरिक एवं मानसिक हास-वृद्धि का समयानुसार ज्ञान कर सकता है। इतना ही नहीं मनुष्य जीवन के हर क्षेत्र में जातक शास्त्र का सहयोग प्राप्त कर सकता है। वराह मिहिर के लिखा है कि मनुष्य पूर्वजन्म के शुभाशुभ कर्मों का परिणाम किस प्रकार इस जन्म में प्राप्त करेगा इसे ज्योतिष शास्त्र उसी प्रकार प्रकट कर देता है जैसे अन्धकार में पड़ी हुई वस्तु को

प्रकाश। शुभाशुभ कहने का अभिप्राय यह कि मनुष्य का जन्म अपने पूर्वजन्म के कर्मानुसार योगों में होता है। मनुष्य का भविष्य अन्धकार में होता है। आगे आने वाले क्षणों को कोई नहीं जानता। मनुष्य अज्ञात एवं अन्धकार पूर्ण मार्ग में भटकता है यदि उसे प्रकाश की एक रेखा मिल जाय तो वह अपना गन्तव्य स्थल और गन्तव्य मार्ग ज्ञात कर लेता है तथा सरलता पूर्वक पहुंचने का प्रयास करता है। यह प्रकाश ज्योतिषशास्त्र के होरा भाग से प्राप्त होता है। भास्कराचार्य ने कहा है-- “ज्योतिःशास्त्रफलं पुराणगणकैरादेश इत्युच्यते ” प्राचीन दैवज्ञों ने ज्योतिषशास्त्र के फल को आदेश कहा है। अर्थात् उन्हें इनकी प्रामाणिकता पर खमामात्र भी सन्देह नहीं था।

ज्योतिष शास्त्र में सहस्रों प्रकार के योग बनते हैं – राजयोग, पंचमहापुरुष योग, नाभस योग और उसके कई प्रभेद आदि।

शारीरिक दृष्टि से ज्योतिष का व्यावहारिक विचार -

यदि केन्द्र क्रूराक्रान्त हो केन्द्र में सूर्य और चन्द्रमा स्थित हो, लग्नस्थ शुक्र शनि से दृष्टि हो तो कटिभाग से, चतुर्थ भाव में शुक्र हो और मंगल, शनि या बुध के साथ बृहस्पति का योग हो तो क्रमशः पैर, हाथ या कटि भाग से, दशम भाव में चन्द्रमा, सप्तम भाव में मंगल और शनि वेशिस्थान में स्थित हो, पंचम अथवा नवम भाव में स्थित भौम पापग्रहों से दृष्ट हो, द्वितीय भाव में शनि, दशम भाव में चन्द्रमा तथा सप्तम भाव में बुध हो, शुक्र चन्द्रमा और शनि नीचराशिगत हो और कुम्भराशिगत सूर्य हो तो उक्त सभी योगों में जातक विकलाङ्ग होता है। आयुर्वेद के अनुसार कभी-कभी साधारण रोग भी असाध्य हो जाते हैं यथा ज्वर एक सामान्य रोग है किन्तु कभी-कभी ज्वर भी विशेष लक्षणों के उत्पन्न होने पर असाध्य एवं घातक हो जाता है,

यथा—आरम्भाद्विषमो यस्तु चयश्च वा दैर्घरात्रिकः । क्षीणस्य चातिरुक्षस्य गम्भीरो यस्य हन्ति तम् । विसंज्ञस्ताम्यते यस्तु शेते निपतितोऽपि वा । शीतार्दितोऽन्तरुष्णश्च ज्वरेण म्रियते नरः । यो हृष्टरोमा रक्ताक्षो हृदि संघातशूलवान् । वक्त्रेण चैवोच्छ्वसिति तं ज्वरो हन्ति मानवम् ॥ हिककाश्वासतृषायुक्तं मूढं विभ्रान्तलोचनम् । सन्ततोच्छवासिनं क्षीणं नर क्षपयति ज्वरः । हतप्रभेन्द्रियं क्षीणमरोचकनिपीडितम् । गम्भीरतवीक्षणवेगार्तं ज्वरितं परिवर्जयेत् ॥ माधवनिदान (ज्वररोगनिदान श्लो. ६९-७४)

अर्थात् जिसका ज्वर प्रारम्भ से विषम हो जाता है, (कोई समय न हो या) जो बहुत दिनों तक ज्वर बना रहे, ज्वर से पुरुष अतिक्षीण हो अथवा शरीरबहुत रूखा हो तो वह गम्भीर ज्वर उसे मार डालता है। ज्वर वाला मूर्च्छित हो, मोह में पड़ा रहे, विस्तर पर पड़ा सोता रहे, बिना उठाए उठ न सके और ऊपर से बहुत जाड़ा लगे परन्तु अन्तःकरण में दाह बना रहे यह ज्वर असाध्य होता है, इससे प्राणी

नहीं जीता, मर जाता है। जिस ज्वर वाले के रोम सदाखड़े रहें, नेत्र लाल बनें रहें, हृदय में कुछ गाँठ-सी बंधकर पीड़ा करे, श्वास अधिक निकले उस पुरुष को वह ज्वर मार डालता है। जिस ज्वर वालेको हिचकी, श्वास, पिपासा हो और वह मूर्च्छित रहे, नेत्र इधर-उधर घुमायाकरे, निरन्तर वेग से श्वास लेता रहे और शरीर उसका बहुत क्षीण हो गया हो, अरुचि हो, सब अङ्गों से पीड़ित हो, गम्भीर और तीक्ष्ण वेग से अत्यन्तपीड़ित हो, वैद्य को चाहिए कि ऐसे ज्वर वाले को छोड़ दे, उसकी औषधि से उपचार न करें। मुख से इसी प्रकार अन्य रोगों में भी विषम लक्षण उत्पन्न होने पर व्याधियाँ असाध्य हो जाती हैं जिनका उल्लेख माधव निदान आदि ग्रन्थों में विस्तार से उपलब्ध है। कारण ज्ञात हो जाने पर व्याधियों के निवारण का मार्ग प्रशस्त होजाता है। परन्तु आवश्यक नहीं है कि सभी असाध्य व्याधियों का पूर्णरूप से समाधान किया जा सके। उपचार हेतु शास्त्रज्ञों ने औषधि, दान, जप, होम आदि का विधान किया है। जैसे कि कहा गया है—

जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते। तच्छान्तिरौषधैर्दानैर्जपहोमसुरार्चनैः॥

वीरसिंहावलोक पृ. ४।

कुछ विद्वानों ने उपचार पद्धति को तीन श्रेणियों में विभक्त किया है—

१. मणि, २. मन्त्र, ३. औषधि।

१. मणि :- ग्रहों की प्रकृति के अनुसार रत्न, धातु आदि भौतिक साधनों के प्रयोग से ग्रहों के प्रभाव का शमन करना।

२. मन्त्र :- ग्रहों के मन्त्र, व्याधिनाशक विविध मन्त्रों एवं स्तोत्रों के जप एवं पाठ तथा शिव आदि देवों के अर्चन, ग्रहों से सम्बन्धित पदार्थों के दान द्वारा समाधान।

३. औषधि :- आयुर्वेदादि विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों द्वारा व्याधियों के अनुसार निर्दिष्ट रसायनों का प्रयोग। आयुर्वेद का सिद्धान्त है कि शरीर का • नियन्त्रण वात पित्त कफ इन त्रिधातुओं से होता है। इनमें किसी भी धातु के कुपित होने पर उस धातु से सम्बन्धित व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। अतः जिन क्रियाओं अथवा रसायनों से धातुओं में समता बनी रहे वही पद्धति या कार्य

चिकित्सा है— याभिः क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातवः समाः । या चिकित्सा विकाराणां कर्म तद्भिषजां मतम् ॥ वी. सिं. ज्वरा – १२ इस प्रकार आधानकालिक अथवा जन्मकालिक ग्रह स्थिति के आधार पर व्याधियों का ज्ञान कर तथा उसकी असाध्यता का निर्णय कर समाधान का प्रयास करना चाहिए। कभी-कभी व्याधियों के नियन्त्रण में केवल चिकित्सा से सफलता नहीं मिलती है उस परिस्थिति में मणि, मन्त्र औषधि आदि विधियों का प्रयोग, विकृत होकर असाध्यता की ओर बढ़ रही व्याधियों के समाधान में सहायक होता है। शारीरिक दृष्टि एवं लोकोपयोगिता की दृष्टि से ज्योतिषशास्त्र का उपयोग सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी ज्योतिष शास्त्र की महत्वपूर्ण भूमिका अनुभव की जाती है। इसे भी दो भागों में विभक्त कर देखा जा सकता है।

१. आधानकाल - इच्छित सन्तान की प्राप्ति के लिए तथा स्वस्थ एवं बुद्धिमान सन्तति के लिए उचित काल का निर्धारण कर आधान काल का चयन करना ज्योतिष द्वारा संभव है तथा गर्भकाल के संस्कारों हेतु ज्योतिष द्वारा शुभ समयों का चयन किया जाता है, जिससे बालक का शारीरिक एवं मानसिक विकास समुचित ढंग से होता रहे।
२. प्रसवोत्तरकाल - यदि उपयुक्त काल में आधान नहीं हुआ हो तो प्रसव के अनन्तर नवजात शिशु के पालन-पोषण में ज्योतिष बहुत सहायक होता है। नवजात शिशु की शारीरिक स्थिति का ज्ञान कठिन होता है ऐसी स्थिति में शिशु को प्रारम्भिक व्याधियों से सुरक्षा हेतु ज्योतिष शास्त्र के अनुसार समुचित निर्देश लाभकारी हो सकते हैं। अतः सर्वप्रथम बालारिष्ट और उनके शमन के उपायों का चिन्तन करना चाहिए। यथा :—

‘सुतमदननवान्त्यलग्नरन्ध्रेष्वशुभयुतो मरणाय शीतरश्मिः ।

भृगुसुतशशिपुत्रदेवपूज्यैर्यदि बलिभिर्न युतोऽवलोकितो वा ॥”

लघुजातक-अरिष्टाध्याय श्लो. १० अर्थात् चन्द्रमा यदि जातक के जन्मलग्न में पाँचवें, छठे, सातवें, आठवें, नवें एवं बारहवें भाव में हो तो बालारिष्ट होता है, ऐसी स्थिति में प्रायः देखा जाता है कि नवजात शिशु दूध पीने के बाद वमन कर देता है तथा कुछ दिनों के अन्तराल पर विरेचन भी करता है। यदि चन्द्रमा के साथ राहुभी युक्त हो अथवा सम्बन्ध रखता हो तो कट में वृद्धि हो जाती है। इस अवस्था में सुधार लाने हेतु परम्परा से प्राप्त निम्नलिखित विधि प्रायः लाभप्रद सिद्ध होती है।

विधि:- गाय का दूध, गाय का घृत, मधु, पलाश की समिधा और दूर्वा (यदि श्वेत दूर्वा हो तो अति प्रशस्त) इन पाँचों वस्तुओं को एक में मिलाकर चन्द्रमा एवं राहु के वैदिक मन्त्रों से १०८-१०८ आहुति देने से तत्काल लाभ होता है, यह क्रिया अनेक बार अनुभूत है। साथ में चाँदी एवं लाजावर्त धारण कराना लाभप्रद होता है। क्रमशः बालक की आयुवृद्धि एवं विकास के साथ उनके प्रवृत्तियों को अनुशासित करने में भी ज्योतिष समुचित दिशा निर्देश देता है। कुछ बालक स्वभावतः हठी, उग्र एवं प्रतिक्रियावादी होते हैं। ऐसे शिशुओं को अनुशासित करने के लिए कभी भी बल प्रयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि बल प्रयोग करने से उनकी प्रतिक्रिया अपेक्षा के विपरीत होती है तथा हठवादिता में वृद्धि होती है। ऐसे शिशुओं को सामान्य स्थिति में लाकर प्रेमभाव से उन्हें समझाना चाहिए। इस प्रकार की प्रवृत्तियों का पूर्वज्ञान जातक के जन्मलग्न, लग्नेश एवं लग्न स्थित ग्रहों के आधार पर किया जाता है।

___जन्म राशि की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। प्रायः देखा जाता है कर्क, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ लग्न में उत्पन्न बालक सूर्य, मंगल के योग से अत्यन्त उग्र

वैयाकरण योग- अर्थसुतयोरंशाज्जीवेवैयाकरण :बलिनि गुरौ तद्धेशे रविशुक्रदृष्टे शाब्दिक : ॥अर्थात् कारकांश लग्न से द्वितीय अथवा पंचम भाव में गुरु हो तो जातकव्याकरणशास्त्र का ज्ञाता होता है। द्वितीय भाव का स्वामी यदि बृहस्पति है।• और सूर्य एवं शुक्र से दृष्ट हो तो जातक भाषाविद होता है।

गणितज्ञ योग -• अंशात्सोत्थेसुतेऽर्थेकेतुजीवौगणितज्ञः॥धनेभौमेशुभदृष्टेगणितज्ञः ॥चन्द्रारौ धने ज्ञदृष्टौ केन्द्रे बुधे वा कुंजेगणितज्ञः ॥गणितज्ञः॥

धनेशे ज्ञे स्वोच्चे गुरौ लग्नेष्टमे मन्देस्वोच्चेगुरौ लग्नेऽष्टमे मन्दे गणितज्ञः ॥जीवे केन्द्रकोणे स्वोच्चे शुक्रे ज्ञेऽर्थेशे वा धने गणितज्ञः । ।जातक तत्त्व पञ्चम विवेक ४३-४७ अर्थात् कारकांश लग्न से द्वितीय, तृतीय या पंचम भावों में बृहस्पति और केतु स्थित हों तो जातक गणित शास्त्र का ज्ञाता होता है। शुभग्रहों से दृष्टमंगल यदि द्वितीय भाव में स्थित हो तो जातक गणितशास्त्र में पटु होता है। बुध से दृष्ट चन्द्रमा और मंगल द्वितीय भागवत हों अथवा बुध या मंगलकेन्द्रस्थ हों तो जातक गणितशास्त्रज्ञ होता है। द्वितीय भाव का स्वामी बुधअपनी उच्चराशि में स्थित हो, बृहस्पति लग्न में और अष्टम भाव में शनिस्थित हो तो जातक गणितज्ञ होता है। केन्द्र या त्रिकोण में बृहस्पति, शुक्र ममें और बुध द्वितीयेश होकर धन भावगत हो तो जातक गणितज्ञ होता है।क्रोधी योग-मीनदिवा बल्यारे खेऽङ्गे क्रोधी॥ लग्ने अस्ते वा निर्बलारे शनिदृष्टे क्रोधी । ।लग्ने भौमे क्रोधी ॥ धने बलवती भौमे क्रोधी

॥ त्रिकोणेऽल्पवीर्ये राशिपे क्रोधी ॥ अन्त्याष्टमेऽङ्गेशेक्रोधी ॥ धनेशे गुलिकान्विते क्रोधी ॥ जा. त. विवेक-८६-१२ अर्थात् दिवा लग्न हो और बलवान भौम लग्न अथवा कर्मभाव में स्थित हूँ, लग्न या चतुर्थ भाव में निर्बल ग्रहस्थित हों, लग्न में भौम स्थित हो, भाव में भौम बलान्वित होकर स्थित हो, अल्पबलशाली राशीश यदि हो, लग्नेश यदि अष्टम अथवा द्वादश भावस्थ हो, धनभाव का स्वामी यदि गुलिकके साथ हो तो उक्त सभी स्थितियों में जातक क्रोधी होता है। विद्रोही योग-सोत्थे भौमे ज्ञचन्द्रे दृष्टे द्रोही ॥ लग्नेशे ज्ञे षष्ठे द्रोही ॥ लग्नेशे निर्बलेद्रोही ॥ जातक तत्व - प्रथम विवेक - १०१-१०३ अर्थात् तृतीय भावस्थ भौम यदि चन्द्रमा और बुध से दृष्ट हो, लग्नेश बुध यदि षष्ठ भावगत हो, अथवा लग्नेश बलहीन हो तो जातक द्रोही होता है। शिक्षा के अनन्तर जीविका चयन में भी ज्योतिष प्रबल भूमिका निभाता है। किसी-किसी जातक के ग्रह योग योग्यता के अनन्तर भी व्यवसाय में प्रवृत्त करने वाले होते हैं, ऐसे युवकों को निःसंकोच व्यवसाय की ओर प्रवृत्त करना चाहिए। जिनके अन्दर व्यवसाय एवं सेवा दोनों के योग हों उन्हें व्यावसायिक संस्थानों में सेवा का अवसर मिलता है। तथा जिनके केवल सेवा का योग होता है वे व्यवसाय में सफल नहीं होते। उन्हें केवल सेवा कार्य ही चुनना चाहिए। इन सब के ज्ञान के लिए होराशास्त्र के ग्रन्थों में विस्तृत विवेचन उपलब्ध है जिनका मनन-चिन्तन एवं उपयोग करने से मनुष्य अपने एक-एकक्षण का सही समय पर तथा सही दिशा में उपयोग कर सकता है। यथा—वाणिज्य योग-तुलांशे वाणिज्यवान् ॥ सौम्येऽंशे वा कर्कांशे वाणिज्यवान् ॥ ज्ञारयोगे वाणिज्यवान् ॥ अर्थात् कारकांश लग्न में यदि तुला राशि हो तो जातक वाणिज्यकर्मरत होता है। कारकांश लग्न यदि बुध से युत हो अथवा कर्क राशि कारकांशलग्न हो तो जातक व्यापारी होता है। मंगल और बुध की युति यदि जन्माङ्ग में उपस्थित हो तो जातक बाणिक् - कर्मरत होता है। व्यापार योग - राज्ये शुभदृष्ट्याधिक्ये व्यापारी ॥ खे ज्ञे व्यापारी ॥ खाङ्गेशयोगे व्यापारी । खेशे केन्द्रायकोणे शुभदृष्टे व्यापारी ॥ खेऽङ्गेशे व्यापारी ॥ खेशे स्वर्क्षे शुभयुते व्यापारी मानशीलः ॥ जातक तत्व दशमविवेक १-६ अर्थात् दशम भाव पर शुभग्रहों की दृष्ट्याधिक्य हो तो जातक व्यापारी होता है। दशमभाव में बुध की स्थिति जातक को व्यापारी बनाती है। दशमेश यदि लग्नेश से युत हो तो जातक व्यापारी होता है। दशमेश यदि केन्द्र में, एकादशभाव में अथवा त्रिकोण में स्थित होकर शुभग्रहों से दृष्ट हो तो जातक व्यापारी होता है। लग्नेश यदि दशमभावगत हो तो जातक व्यापारी होता है। दशमेश दशमभाव में शुभग्रहों से युत हो तो जातक व्यापार से आजीविकाप्राप्त करता है। राज्यकर्मचारी योग-सार्केऽंशे राज्यकार्यकर्ता। केन्द्रेऽर्के राजकार्यकर्ता केन्द्रे कोणे. चन्द्रे राजकार्यकर्ता ॥ राज्येशे लाभे केन्द्रे वा राज्यकार्यकर्ता ॥ लग्नान्मुखे

जीवे राजकार्यकर्ता ॥ अर्थात् कारकांश लग्न यदि सूर्य से युत हो तो जातक राजकर्मचारी होता है। सूर्य यदि केन्द्रस्थ हो तो जातक राजकर्मचारी होता है। चन्द्रमा यदि केन्द्र अथवा कोणगत हो तो जातक राजकर्मचारी होता है। दशमभावधिपति यदि केन्द्र में अथवा एकादशभाव में स्थित हों तो जातक राजकर्मचारी होता है। बृहस्पति यदि लग्न या चतुर्थभाव में स्थित हो तो जातक राजकर्मचारी होता है। ज्योतिषशास्त्र की सहायता से बालक की मनोवृत्ति तथा उसके विकास की सम्भावनाओं को जानकर सही दिशा एवं निर्देशन दिया जा सकता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि ज्योतिषशास्त्र मानव जीवन के लिए हर क्षेत्र में सहयोगी एवं कल्याणकारी है।

बोध प्रश्न

1. सूर्य की उत्पत्ति किससे हुई है?
क. वायु ख. अग्नि ग. भू घ. जल
2. सोम धारण करने वाला कौन ग्रह है?
क. मंगल ख. बुध ग. चन्द्रमा घ. सूर्य
3. निम्न में उपचार पद्धति नहीं है?
क. मणि ख. मन्त्र ग. औषधि घ. यन्त्र
4. अस्थि एवं केश को प्रभावित करने वाला ग्रह कौन है।
क. सूर्य ख. चन्द्र ग. मंगल घ. बुध
5. लघुजातक किसकी रचना है?
क. कमलाकर ख. वराहमिहिर ग. केशव घ. गणेश
6. बृहस्पति यदि लग्न या चतुर्थ में हो तो जातक क्या होता है।
क. ज्योतिष ख. राजकर्मचारी ग. वैज्ञानिक घ. चिकित्सक

3.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप ने जान लिया है कि व्यावहारिक ज्योतिष से तात्पर्य है – मानव जीवन के कार्य व्यवहार में आने वाला। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि ज्योतिषशास्त्र में ऐसा कुछ भी नहीं है जो मानव जीवन में अव्यावहारिक हो सकता है, अर्थात् सम्पूर्ण ज्योतिषशास्त्र ही व्यावहारिक है। अब प्रश्न उठता है कि जब सम्पूर्ण ज्योतिषशास्त्र ही व्यावहारिक है तो अलग से व्यावहारिक ज्योतिष की बात क्यों की जा रही है। तो इसका उत्तर है कि ज्योतिष शास्त्र का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि प्रत्येक मानव उसके सम्पूर्ण भाग को न तो देख सकता है और न ही समझ सकता है। इसलिए कम से कम मानव जीवन में जिसका उपयोग वह करता है उसमें कहाँ-कहाँ ज्योतिष व्यावहारिकता के धरातल पर दृष्टिगोचर होता है। गर्भाधान से लेकर अंत्येष्टि तक, पृथ्वी से लेकर अन्तरिक्ष तक, त्रुटिकाल से लेकर प्रलयकाल पर्यन्त अधिकांश व्यावहारिक ज्योतिष का ही हिस्सा है।

3.5 पारिभाषिक शब्दावली

व्यावहारिक – व्यवहार में आने वाला

अतिशयोक्ति – बढ़ाचढ़ाकर कहना

दृष्टिगोचर – दिखलाई पड़ना

भूगर्भ – पृथ्वी का गर्भ

अंत्येष्टि – मृत्यु के पश्चात् की जाने क्रिया

अधिकांश – अधिक अंश

सोम – अमृत

आधान काल – गर्भाधान का समय

3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ख
2. ग
3. घ
4. क
5. ख
6. ख

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय ज्योतिष - शंकरबालकृष्ण दीक्षित
 लघुजातक - कमलाकान्त पाण्डेय
 जातकपारिजात - वैद्यनाथ
 नारद संहिता - पं. रामजन्म मिश्र
 वेदांग ज्योतिष - मूल लेखक - महात्मा लगध

3.8 सहायक पाठ्यसामग्री

भारतीय ज्योतिष - शंकरबालकृष्ण दीक्षित
 लघुजातक - कमलाकान्त पाण्डेय
 जातकपारिजात - वैद्यनाथ
 नारद संहिता - पं. रामजन्म मिश्र
 वेदांग ज्योतिष - मूल लेखक - महात्मा लगध
 मानसागरी – टीकाकार - प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ज्योतिष शास्त्र का विस्तृत वर्णन कीजिये।
2. व्यावहारिक ज्योतिष पर प्रकाश डालिये।
3. मानव जीवन में व्यावहारिक ज्योतिष विस्तृत वर्णन कीजिये।

इकाई - 4 नवविधकालमान परिचय

इकाई की संरचना

- 4.1 प्रस्तावना
- 4.2 उद्देश्य
- 4.3 नवविधकालमान परिचय
 - 4.3.1 ब्राह्म मान
 - 4.3.2 दिव्य मान
 - 4.3.3 पैत्र्य मान
 - 4.3.4 प्राजापत्य मान
 - 4.3.5 गुरु या बार्हस्पत्य मान
 - 4.3.6 सौर
 - 4.3.7 सावन
 - 4.3.8 चान्द्र
 - 4.3.9 नाक्षत्र मान
- 4.4 सारांश
- 4.5 बोध प्रश्नों के उत्तर
- 4.6 पारिभाषिक शब्दावली
- 4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 4.8 सहायक पाठ्यसामग्री
- 4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई BAJY(N)-222 के तृतीय खण्ड की चौथी इकाई से सम्बन्धित है। काल की महिमा का वर्णन प्रायशः समस्त शास्त्रों में प्राप्त होता है। काल प्रतिपादक यह ज्योतिष शास्त्र समस्त काल के अङ्गों एवं उपाङ्गों का सम्यक् प्रकार से उपस्थापन करता है। अतएव इस काल के 9 प्रकार के मापक बताये गये हैं- 'कलसंख्याने' धातु से कर्ता अर्थ में घञ् प्रत्यय करने पर काल शब्द निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ गणना करना है। आर्ष ग्रन्थों में काल की विस्तृत चर्चा सूर्यसिद्धान्त में प्रतिपादित है। भगवान् भास्कर मय को उपदेश करते हुये काल के भेदोपभेद को बताते हैं। काल के दो रूप हैं। (1) विश्व का संहारकर्ता काल (2) गणनात्मक काल।
पुनः स्थूल काल या कलनात्मक काल के नौ भेद किये गये हैं।
यथा-

ब्राह्मं दिव्यं तथा पैत्र्यं प्राजापत्यं च गौरवम्।

सौरं च सावनं चान्द्रमार्क्षं मानानि वैर्नवा॥

(सूर्यसिद्धान्त, मानाध्याय, श्लोक सं.-01)

1. ब्राह्म 2. दिव्य 3. पैत्र्य 4. प्राजापत्य 5. गौरव 6. सौर 7. सावन 8. चान्द्र 9. एवं नाक्षत्र।

परन्तु इन नौ मानों में से चार के द्वारा ही हमारे लौकिक कार्यों की सिद्धि हो जाती है। शेष 5 कालमानों का व्यवहार ज्योतिष शास्त्र के विविध विषय प्रतिपादन में किया जाता है।

4.2 उद्देश्य

इस पाठ के निम्नलिखित उद्देश्य हैं -

- (क) कालमान के ज्ञान में दक्षता प्राप्त होगी।
- (ख) ब्राह्म-मान के औचित्य एवं वैशिष्ट्य का परिज्ञान होगा।
- (ग) देवताओं के मान का ज्ञान सरलता से होगा।
- (घ) पैत्र्य-मान परिज्ञान में कुशलता प्राप्त होगी।
- (ङ) नवविधकालमान के औचित्य के निर्धारण में दक्षता प्राप्त होगी।

4.3 नवविधकाल मान परिचय

ऋषियों द्वारा ज्योतिषशास्त्र में प्रसिद्ध नवविधकालमान बतलाये गये हैं – ब्राह्म, दिव्य, पैत्र्य, प्राजापत्य, गुरु या बार्हस्पत्य मान, सौर, सावन, चान्द्र एवं नाक्षत्र।

4.3.1 ब्राह्म मान- शब्द से स्पष्ट होता है कि ब्रह्मा से संबंधित मान को ब्राह्ममान कहते हैं। नौ प्रकार के मानों में यह काल का सबसे बड़ा मान खंड है। भगवान् भास्कर इस मान के सन्दर्भ में कहते हैं कि-

तद् द्वादशसहस्राणि चतुर्युगमुदाहृतम्।
 सूर्याब्दसंख्यया द्वित्रिसागरैर्युताहतैः॥
 सन्ध्यासन्ध्यांश-सहितं विज्ञेयं तच्चतुर्युगम्।
 कृतादीनां व्यवस्थेयं धर्मपादव्यवस्थया॥
 युगस्य दशमो भागश्चतुस्त्रिद्वयेकसंगुणः।
 क्रमात् कृतयुगादीनां षष्ठांशः सन्धयोः स्वकः॥
 युगानां सप्ततिः सैका मन्वन्तरमिहोच्यते।
 कृताब्दसंख्या तस्यान्ते सन्धिः प्रोक्तो जलप्लवः॥
 ससन्धयस्ते मनवः कल्पे ज्ञेयाश्चतुर्दशः।
 कृतप्रमाणः कल्पादौ सन्धिपंचदशः स्मृतः॥
 इत्थं युगसहस्रेण भूतसंहारकारकः।
 कल्पो ब्राह्ममहः प्रोक्तं शर्वरी तस्य तावती॥

सूर्यसिद्धान्त, मध्यमाधिकार, श्लोक सं. - 15-20

यहाँ आशय यह है कि रवि का एक भगण भोग का काल एक सौरवर्ष होता है। इसी को एक दिव्यदिन भी कहते हैं।

360 दिन = 1 वर्ष = 1 दिव्यदिन।

360 दिव्यदिन = 1 दिव्यवर्ष।

इसी कालप्रमाण से 12000 वर्ष = चतुर्युग।

12000 ग 360 = 43,20,000 सौरवर्ष।

पुनः चारों युगों का मान अलग अलग लाने के लिए-

कृतयुग में धर्मपाद = 4 त्रेता में धर्मपाद = 3

द्वापर में धर्मपाद = 2 कलियुग में धर्मपाद = 1

इनका योग = 10 धर्मपाद। इसलिए अनुपात के द्वारा

(महायुग ग 4) / 10 = कृतयुग का मान

(महायुग ग 3) / 10 = त्रेता का मान

(महायुग ग 2) / 10 = द्वापर का मान

(महायुग ग 1) / 10 = कलियुग का मान

यहाँ कहा गया है कि कृतयुगादिकों के षष्ठांश तुल्य सन्धियां होती हैं और चारों युगों का मान उनके सन्ध्या तथा संध्यांश से युक्त है।

71 महायुग = 1 मनु

एक कल्प में = 14 मनु

71 ग 14 = 994 महायुग

= 1 कल्प

कृतवर्षप्रमाणतुल्य मनु की सन्धि होती है। इसलिए मनुओं की सन्धि संख्या पन्द्रह होती है।

1 मनुसन्धि = कृतयुग 1 इसका महायुगात्मक मान लाते हैं तो

(महायुग ग 4) / 10 = कृतयुग = 1 मनुसन्धि

(महायुग ग 4 ग 15) / 10 = 15 मनुओं की सन्धि का मान।

= 6 महायुग

1 कल्प = 14 मनु \$ 15 सन्धि

= 14 ग 71 महायुग \$ 6 महायुग

= 1000 महायुग

= एक ब्राह्मदिन।

इसी प्रकार ब्रह्मा की रात्रि भी 1 कल्प की होती है। अतः अहोरात्र = 2 कल्प।

इस मान से ब्रह्मा को शतायु कहा गया है। जिन चौदह मनुओं की चर्चा यहाँ की गयी है वे-

स्वायम्भुवो मनुस्ततो मनुः स्वरोचिषस्तथा।

उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा॥

वैवस्वतश्च कौख्य साम्प्रतो मनुरुच्यते।

सावर्णि मनुस्ततो रौद्रो रौच्यस्तथैव च॥

तत्रैव मेरुसावर्णश्चत्वारो मनवः स्मृताः।

महाभारत, खि.ह.अ. 7, श्लोक सं.-4-3

अर्थात् (1) स्वायम्भुव (2) स्वरोचिष (3) उत्तमज (4) तामस (5) रैवत (6) चाक्षुष (7) वैवस्वत (8) सावर्णि (9) दक्षसावर्णि (10) ब्रह्मसावर्णि (11) धर्मसावर्णि (12) रुद्रपुत्र (13) रौच्य (14) मौत्यका

ब्रह्मदिनोपपत्ति - ब्राह्म मान के सन्दर्भ में उपपत्ति ज्योतिष के ग्रन्थों में वर्णित है जैसे आचार्य भास्कर कहते हैं कि -

यदतिदूरगतो द्रुहिणः क्षितेः सततमाप्रलयं रविमीक्षते।
भवति तावदयं शयितश्च तद्युगसहस्रयुगं द्युनिशं विधेः॥॥॥

अर्थात् -

पृथ्वी से अत्यन्त (अनन्त) दूर स्थित ब्रह्मा, आप्रलय पर्यन्त सूर्य दर्शन करता है अर्थात् ब्रह्मा का एक हजार युग का एक दिन और एक हजार युग की एक रात्रि अर्थात् 2 हजार युग प्रमाण का 1 दिन अर्थात् अहोरात्र होता है। दिनान्त के अनन्तर रात्रि शयन की तरह ब्रह्मा 1 हजार युग के दिनान्त में सारी सृष्टि का समापन कर एक कल्प तक शयन, करने के उपरान्त पुनः नवीन सृष्टि रचना और दूसरे कल्प का प्रारम्भ करता है।

आचार्य भास्कर इस विषय में कहते हैं कि-

खखाभ्रदन्तसागरैर्युगाग्नियुग्मभूगुणैः।
क्रमेण सूर्यवत्सरैः कृतादयो युगाङ्घ्रयः॥21॥
स्वसन्ध्यकातदंशकैर्निजार्कभागसंमितैः।
युताश्च तद्युतौ युगं रदाब्ध्योऽयुताहताः॥22॥
सन्ध्यः स्युर्मनूनां कृताब्दैः समा आदिमध्यावसानेषु तैर्मिश्रितैः।
स्याद्युगानां सहस्रं दिनं वेधसः सोऽपि कल्पो द्युरात्रन्तु कल्पद्वयम्॥24॥
शतायुः शतानन्द एवं प्रदिष्टस्तदायुर्महाकल्प इत्युक्तमाद्यैः।
यतोऽनादिमानेष कालस्ततोऽहं न वेद्यत्र पद्मोद्भवा ये गतास्तान्॥25॥

-सि.शि., मध्यम.

अर्थात् 4,32,000 (सौरवर्ष) को क्रम से 4, 3, 2 एवं 1 से गुणा करने पर क्रम से सत्ययुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग के मान होते हैं॥21॥

(1) $4,32,000 \times 4 = 17,28,000$ सत्ययुग

$$(2) 4,32,000 \times 3 = 12,96,000 \text{ त्रेतायुग}$$

$$(3) 4,32,000 \times 2 = 8,64,000 \text{ द्वापरयुग}$$

$$(4) 4,32,000 \times 1 = 4,32,000 \text{ कलियुग}$$

विशेष- आचार्य भास्कर ने यहाँ युग शब्द से चतुर्युग (सत्य, त्रेता, द्वापर, कलि) को ग्रहण किया है तथा पृथक्-पृथक् युगों के लिए युगचरण संज्ञा प्रदान किया है।

यहाँ धर्म के 10 चरण (लक्षण) को स्वीकार करते हुए पूर्वाचार्यों ने पृथक्-पृथक् युगों के लिए धर्म के चरणवश युग के मान का निर्धारण किया है। उससे यह परिलक्षित होता है कि युग का परम मान धर्म-चरण के आधार पर ही आधारित है। यथा सत्ययुग में धर्म के 4 चरण (पूर्ण) विद्यमान रहते हैं, अर्थात् अधर्म नहीं होता। त्रेता में 3 पाद, द्वापर में 2 पाद एवं कलियुग में केवल 1 पाद ही धर्म का विद्यमान रहता है। जिसमें शुभाशुभ धर्माधर्म के आधार पर ही 4 युगों का मान निश्चित किया गया है।

अपने-अपने युगचरण के बारहवें भाग के बराबर आद्यन्त में सन्ध्या एवं सन्ध्यांश होते हैं जिनको युगप्रमाण में जोड़ते हैं तो एक युगप्रमाण में 43,20,000 सौरवर्ष होते हैं।

विशेष- यहाँ आचार्य ने प्रत्येक युगचरण का 1/12 आदि सन्ध्या तथा 1/12 भाग अन्त सन्ध्या माना है, यह सन्ध्या और सन्ध्यांश युगमान में जुड़ा हुआ रहता है जिस प्रकार एक अहोरात्र में प्रातः और सायं दो संध्यायें होती हैं वैसे ही चतुर्युग के प्रत्येक युगादि एवं युगान्त में मिलाकर 2 सन्ध्यायें होती हैं जिसे यहाँ आदि एवं अन्त नाम से सम्बोधित किया गया है। इस प्रकार यदि सन्ध्या-सन्ध्यांश का आनयन करते हैं तो पाते हैं कि सत्ययुग = 17,28,000 सौरवर्ष,

$$\text{अतः } \frac{17,18,000}{12} = 1,44,000 \text{ आदि सन्ध्या}$$

तथा 1,44,000 सौरवर्ष अन्त में सन्ध्या होता है।

इस प्रकार सौरवर्ष प्रमाण से-

$$\text{त्रेतायुग} = 1,08,000 \text{ आदि सन्ध्या} + 1,08,000 \text{ अन्त सन्ध्या}$$

$$\text{द्वापरयुग} = 72,000 \text{ आदि सन्ध्या} + 72,000 \text{ अन्त सन्ध्या}$$

$$\text{कलियुग} = 36,000 \text{ आदि सन्ध्या} + 36,000 \text{ अन्त सन्ध्या}$$

इस प्रकार 71 युग का मनु होता है अर्थात् 71 युगप्रमाण का 1 मन्वन्तरकाल होता है। ऐसे 14 मनु के द्वारा ब्रह्मा का 1 दिन तथा तत्तुल्य अर्थात् 14 मन्वन्तर प्रमाण की ही रात्रि होती है।

मनुओं के आदि-मध्य और अन्त में सत्ययुग के बराबर (वर्ष संख्या) सन्धियाँ होती हैं। इन सन्धियों को जोड़ने पर 1 हजार युग का ब्रह्मा का दिन होता है। उसे ही कल्प कहा जाता है। ब्रह्मा का अहोरात्र (रात-दिन) दो कल्प (2 हजार युग) प्रमाण का होता है।

विशेष- आचार्य ने प्रस्तुत श्लोक के द्वारा पूर्व में बताये गये श्लोक की संगति को पूर्ण करके तथा ब्राह्म दिन प्रमाण का उल्लेख किया है।

पूर्वोक्त प्रकार से ब्रह्मा की सौ वर्ष (100) की आयु बताई गई है। इस आयु को प्राचीनाचार्यों ने महाकल्प की संज्ञा दी है। क्योंकि काल (ब्रह्म) अनादि है। अतएव कितने ब्रह्मा बीत गये और कितने वर्तमान हैं, उन्हें मैं नहीं जानता।

इस श्लोक में आचार्य भास्कर ने व्यंग्य प्रस्तुत किया है। जैसा कि सौर सिद्धान्त में बताया गया है कि 'आयुषोऽर्धगतम्' अर्थात् उस ब्रह्मा की आधी आयु व्यतीत हो गयी है। अतएव भास्कराचार्य ने इसी स्थल पर व्यंग्य प्रस्तुत किया है कि जिस काल का मान अनादि है उसके कितने वर्ष व्यतीत हो गये। इसे मैं नहीं जानता। यथा -

तथा वर्तमानस्य कस्यायुषोऽर्धं गतं सार्धवर्षाष्टकं केचिदूचुः।

भवत्वागमः कोऽपि नास्योपयोगो ग्रहा वर्तमानद्युयातात् प्रसाध्याः॥26॥

अर्थात्- वर्तमान ब्रह्मा की आधी आयु व्यतीत हो गई है, कुछ लोग 8.5 वर्ष व्यतीत मानते हैं। अस्तु,

यहाँ कोई भी आगम (प्रमाण) हो परन्तु इसका कोई विशेष उपयोग शास्त्र में नहीं देखा जाता।

ग्रहसाधन सर्वदा वर्तमान ब्रह्मदिन के गताब्द पर से ही करना चाहिए।

विशेष- यहाँ पूर्वोक्त विशेष की ही पुष्टि करते हुए आचार्य ने युक्ति बताई कि ब्रह्मा की आधी आयु बीते या 8.5 वर्ष, इससे ग्रहगणना के व्यवहार में कोई अन्तर नहीं आता है। अतः ग्रहानयन वर्तमान ब्रह्मदिन के आधार पर ही करना चाहिए।

यतः सृष्टिरेषां दिनादौ दिनान्ते लयस्तेषु सत्स्वेव तच्चारचिन्ता।

अतो युज्यते कुर्वते तां पुनर्येऽप्यसत्स्वेषु तेभ्यो महद्भ्यो नमोऽस्तु॥27॥

-सि.शि., मध्यमा.

अर्थात् यद्यपि ब्रह्मा के दिनारम्भ से सृष्टि अर्थात् जगत् की संरचना होती है तथा दिनान्त में सभी भूतों का लय होता है। अतः विद्यमान दिन से ही ग्रहचरानयन जानना चाहिए। जो लोग असत् महाकल्प से इसे जोड़कर वर्तमान ग्रहों का मान लाते हैं, वैसे महान् लोगों को मेरा नमस्कार है।

विशेष- प्रस्तुत श्लोक में भी आचार्य जी ने जो लोग महाकल्प से ग्रहानयन करते हैं, उनका उपहास किया है।

4.3.2 दिव्यमान

‘दिवि भवं दिव्यम्’ अर्थात् देवताओं से संबंधित मान को दैवमान कहते हैं। दिव्य दिन का मान एक सौरवर्ष तुल्य होता है। जैसे-

$$360 \text{ सौरदिन} = 1 \text{ सौरवर्ष}$$

$$1 \text{ सौरवर्ष} = 1 \text{ दिव्य दिन}$$

$$360 \text{ दिव्य दिन} = 1 \text{ दिव्य वर्ष}$$

सूर्यसिद्धान्तकार कहते हैं -

सुरासुराणामन्योन्यमहोरात्रं विपर्ययात्।

यत् प्रोक्तं तद् भवेद्विव्यं भानोर्भगणपूरणात्॥

सूर्यसिद्धान्त, भूगोलाध्याय, मानाध्याय, श्लोक सं.-20

देवताओं के दिन और रात्रि का मान तो तुल्य होता है किन्तु यहाँ विशेष यह है कि जब देवताओं का दिन होता है तब असुरों की रात्रि तथा जब असुरों का दिन होता है तब देवताओं की रात्रि। इसका कारण यह है कि शास्त्रानुसार देवताओं का वास सुमेरु तथा दैत्यों का वास कुमेरु पर है। सुमेरु नाडीवृत्त से उत्तर दिशा में 900 दूरी पर तथा कुमेरु नाडीवृत्त से दक्षिण दिशा से 900 दूरी पर स्थित है। दोनों स्थानों के बीच की दूरी 1800 है। और दोनों के बीच में निरक्षदेश है तथा नाडीवृत्त ही दोनों का गर्भक्षितिज है। मेषादि छः राशियों की स्थिति नाडीवृत्त से उत्तर में तथा तुलादि छः राशियों की स्थिति नाडीवृत्त से दक्षिण में हैं। अतः यदि सूर्य मेषादि छः राशियों में संचरण करता है तो असुरों के क्षितिज के नीचे होने से उनकी रात्रि तथा यदि तुलादि छः राशियों में संचरण करता है तो देवों की रात्रि तथा दैत्यों का दिन होता है। इसी प्रकार दैत्यों एवं देवों के विपर्यय क्रम से छः महीने का दिन तथा छः महीने की रात्रि होती है। इसी एक सौरवर्ष प्रमाण को दिव्य दिन की संज्ञा दी गई है। देवताओं से सम्बन्धित हैं यह मान इसलिए दिव्य कहते हैं।

4.3.3 पैत्र्यमान-

पैत्र्यमान के प्रतिपादन के प्रसंग में भगवान् सूर्य सूर्यसिद्धान्त में कहते हैं कि-

पित्र्यं मासेन भवति नाडीषष्ट्या तु मानुषम्।

तदेव किल सर्वत्र न भवेत् केन हेतुना॥

सूर्यसिद्धान्त, भूगोलध्याय, श्लोक सं.-5

अर्थात् पितृदिन एकचान्द्रमास तुल्य होता है। मयासुर के प्रश्न के उत्तर में भगवान कहते हैं कि-

पितरः शशिगः पक्षं स्वदिनं च नरा भुवि।

सूर्यसिद्धान्त, भूगोलध्याय, श्लोक सं.-74

अर्थात् पितरों के लिए पन्द्रह तिथियों का एक दिन तथा पन्द्रह तिथियों की एक रात्रि होती है। दोनों का योग करने से एक चान्द्रमास तुल्य अहोरात्र होता है। आचार्य भास्कर भी इस प्रसंग में कहते हैं कि-

विधूर्ध्वभागे पितरो वसन्तः

स्वाधः सुधादीधितिमामनन्ति

पश्यन्ति तेऽर्कं निजमस्तकोर्ध्वे

दर्शे यतोऽस्माद् द्युदलं तदैषाम्।

भार्धान्तरत्वान्न विधोरधस्थं

तस्मान्निशीथः खलु पौर्णमास्याम्।

कृष्णे रविः पक्षदलेऽभ्युदेति

शुक्लेऽस्तमेत्यर्थत एव सिद्धम्॥

सि.शि., गोलाध्य, त्रिप्रश्नवासना, श्लोक सं.-13-14

अर्थात् चन्द्रमा के ऊर्ध्व भाग में पितरों का वास होता है। अतः यदि सूर्य अमावस्या को जब चन्द्रमा के ठीक ऊपर होता है तब ये अवस्था पितरों का दिनार्ध तथा पूर्णिमा को पितरों की मध्यरात्रि होती है। इस प्रकार संक्रान्तियों के विभाजन के क्रम में 16 दिन के लिए विशेष रूप से पितृपक्ष के लिए निर्देशित किया गया है। जिसमें सभी प्रकार का किया गया दान जप अक्षय होता है जैसे -

तुलादेः षडशीत्यंशैः षडशीतिमुखं दिनम्।

भचतुष्टयमेवं स्याद् द्विस्वभावेषु राशिषु॥4॥

षड्विंशे धनुषो भागे द्वाविंशेतिमिनस्य च।

मिथुनेऽष्टादशे भागे कन्यायां च चतुर्दशे॥5॥

अर्थात् तुला संक्रान्ति से छियासी दिनों का षडशीति मुख क्रम से होता है। यह चार हैं और द्विस्वभाव

राशियों में होते हैं। धनु राशि के 26वें अंश, मीन राशि के 22वें अंश, मिथुन राशि के 18वें अंश और कन्या राशि के 14वें अंश तक।

विशेष- इन श्लोकों में दिन का अर्थ सावन दिन नहीं है, वरन् वह समय है जिसमें सूर्य एक अंश चलता है। ऐसे 360 दिनों का एक वर्ष होता है जो सावनमानानुसार 365 दिन 6 घंटे से कुछ अधिक हुआ परन्तु सूर्य की गति सदा समान नहीं होती इसलिये चारों षडशीतिमुखों के मान भी सावन दिनों में समान नहीं हैं। तुला राशि से आरंभ करके तुला और वृश्चिक राशियों के तीस-तीस अंश और धनु के 26 अंश मिलकर 86 अंश हुए इसलिये प्रथम षडशीतिमुख धनु के 26 अंश पर समाप्त होता है। दूसरा षडशीतिमुख धनु के 27वें अंश से आरम्भ होकर मीन के 22वें अंश पर समाप्त होता है। इसी प्रकार तीसरा मिथुन के 18वें अंश पर और चौथा कन्या के 14वें अंश पर समाप्त होता है। जिन चारों राशियों में षडशीति मुखों का अंत होता है वे द्विस्वभाव की बतलायी गयी हैं जिसकी चर्चा फलित ज्योतिष में आयी है।

किसी किसी ग्रन्थ में तिमिनस्य के स्थान में निमिषस्य पाठ है जो अशुद्ध जान पड़ता है क्योंकि निमिष का अर्थ मीन राशि नहीं है।

पितृपक्ष -

ततश्शेषे तु कन्याया यान्यहानि तु षोडश।

क्रतुभिस्तानि तुल्यानि पितृणां दत्तमक्षयम्॥6॥

अर्थात्- इसके उपरान्त कन्या राशि के शेष 16 दिन यज्ञकाल के समान हैं। इसमें पितरों का श्राद्धादि कर्म करने से अक्षय फल मिलता है।

विशेष- इससे प्रकट होता है कि पितरों का श्राद्ध उस समय करना चाहिये जब सूर्य कन्या राशि में 15 से 30 अंश तक हो। आजकल तो पूर्णिमान्त गणना से आश्विन कृष्ण पक्ष में और अमान्त गणना से भाद्र कृष्ण पक्ष में अर्थात् चान्द्रमान के अनुसार पितृपक्ष माना जाता है।

4.3.4 प्राजापत्यमान -

प्राजापत्यमान के सन्दर्भ में सूर्यसिद्धान्तकार कहते हैं कि मन्वन्तर व्यवस्था को ही प्राजापत्यमान कहा जाता है।

मन्वन्तरव्यवस्था च प्राजापत्यमुदाहृतम्।

न तत्र द्युनिशोर्भेदो ब्राह्मं कल्पः प्रकीर्तितम्॥

(सूर्यसिद्धान्त, मानाध्याय, श्लोक सं.-21)

अर्थात् मन्वन्तर व्यवस्था को ही प्राजापत्य मान कहा जाता है। मन्वन्तर व्यवस्था की चर्चा ब्राह्म मान में भी की गई है, ऐसी स्थिति में प्रसंगानुसार विचार करते हैं तो पाते हैं कि -

71 महायुग = 1 मन्वन्तर

1 महायुग = चतुर्युग (सत्य, त्रेता, द्वापर एवं कलि)

इस प्रकार से कुल मनुओं की संख्या 14 है जिसमें 6 मन्वन्तर का काल व्यतीत हो गया है तथा सातवें वैवस्वत-मन्वन्तर चल रहा है। इस प्रकार ही सौरवर्ष प्रमाण में इनका गणितीय स्वरूप निम्नलिखित है-

4.3.5 बार्हस्पत्य (गौरव) मान -

बृहस्पतेर्मध्यमराशिभोगात् सांवत्सरं सांहितिका वदन्ति।

ज्ञेयं विमिश्रन्तु मनुष्यमानं मानैश्चतुर्भिर्व्यवहारवृत्तेः॥

- सि. शि. मध्यमा.

अर्थात् - संहिताशास्त्र के विद्वान् बृहस्पति के मध्यम मान से एक राशि भोगकाल को बार्हस्पत्य संवत्सर कहते हैं। मनुष्य का मान व्यवहारमिश्रित जानना चाहिए, जिसमें चार मानों के द्वारा मानव व्यवहार-वृत्ति सम्पादित होती है।

विशेष - इस श्लोक में आचार्य ने संवत्सर-निर्माण-प्रक्रिया को बताते हुए नवविध काल मानों में मानव व्यवहारोपयोगी चार मानों को बताया है।

मध्यम मान से बृहस्पति जब एक राशि का भोग कर लेता है तो एक संवत्सर का काल होता है। संवत्सर 60 होते हैं, पुनः 60 के बाद इनकी आवृत्ति होती है। मानव व्यवहार हेतु केवल एक मान कोई पर्याप्त नहीं है अपितु चार मान (सौर, सावन, चान्द्र, नाक्षत्र) व्यवहार के लिए उपयोगी होते हैं।

सूर्यसिद्धान्त में बार्हस्पत्य मान के सन्दर्भ में कहा गया है कि मध्यमगति से गुरु के एकराशि भोग को एक संवत्सर की संज्ञा दी गयी है। मानाध्याय में भगवान् सूर्य कहते हैं कि -

वैशाखादिषु कृष्णे च योगात् पंचदशे तिथौ।

कार्तिकादीनि वर्षाणि गुरोरस्तोदयात् तथा॥

सूर्यसिद्धान्त, मानाध्याय, श्लोक सं.-27

अर्थात् वैशाखादि मासों से कृष्णपक्ष की 30वीं (अमावस्या) तिथि को कृत्तिकादि नक्षत्रों के संयोग से बार्हस्पत्य कार्तिकादिमास होते हैं। इस प्रकार से जिस मास में गुरु अस्त या उदय होता है उस मास से संबंधित बृहस्पति का वर्ष प्रारम्भ होता है।

जिस मास में गुरु उदय या अस्त हों उस मास के अमान्त नक्षत्र के नाम से गुरु वर्षारम्भ होता है। बृहस्पति के ये कार्तिकादि मास 60 संवत्सरों से सम्बन्धित गौरव वर्षों से भिन्न होते हैं।

जिस प्रकार चन्द्रमा के पूर्णिमान्त काल के नक्षत्रों के नाम से चान्द्रमासों के नाम पड़े हैं इसी प्रकार वैशाखादि मासों के कृष्णपक्ष की पन्द्रहवीं तिथि के योग में बृहस्पति के अस्त और उदय होने से इसके कार्तिकादि वर्षों के नाम रखे गये हैं।

वस्तुतः जिस समय बृहस्पति सूर्य के बहुत पास आ जाता है उस समय सूर्य के प्रकाश के कारण यह देखा नहीं जा सकता, इसलिये अस्त समझा जाता है। फिर जब सूर्य से इतना दूर हो जाता है कि दिखाई पड़ने लगता है तब उदय समझा जाता है। यह घटना उस समय के लगभग होती है जब सूर्य और बृहस्पति की युति होती है जो लगभग 399 दिन या 13 मास के अंतर पर हुआ करती है। इस काल को 'बार्हस्पत्य वर्ष' कहते हैं। ऐसे वर्षों का नाम उन नक्षत्रों के अनुसार रखा जाता है जिन पर बृहस्पति के उदय या अस्त होने के समय सूर्य और चन्द्रमा दोनों रहते हैं। 16वें श्लोक में बतलाया गया है कि चान्द्र मासों के नाम उन नक्षत्रों के नाम पर पड़े हैं जिन पर चन्द्रमा पूर्णिमान्त काल में रहता है, इसलिये यह सिद्ध है कि सूर्य इन मासों के पूर्णिमान्त नक्षत्रों से 14वें नक्षत्र पर होता है। जैसे वैशाख मास में पूर्णिमा विशाखा या अनुराधा नक्षत्रों पर होती है तो इस मास में सूर्य विशाखा या अनुराधा के 14वें नक्षत्र कृत्तिका या रोहिणी में रहेगा। यदि इसी समय बृहस्पति का उदय या अस्त हो तो निश्चय है कि यह भी इन्हीं नक्षत्रों पर या इसके एकाध नक्षत्र आगे पीछे रहेगा और अमावस्या भी इन्हीं नक्षत्रों पर होगी, इसलिये बृहस्पति का 'कार्तिक वर्ष' इसी समय से आरम्भ होगा। अर्थात् वैशाख मास में यदि बृहस्पति का उदय या अस्त हो तो बृहस्पति का 'कार्तिक वर्ष' लगेगा, ज्येष्ठ मास में उदय हो तो 'बार्हस्पत्य मार्गशीर्ष' वर्ष लगेगा इत्यादि। चान्द्र मासों और बार्हस्पत्य वर्षों की दुविधा मिटाने के लिये दोनों में यह अंतर भी कर दिया जाता है कि बार्हस्पत्य वर्षों के नाम के पहले 'महा' लगा देते हैं। परन्तु आजकल इन कार्तिक आदि वर्षों का प्रचार नहीं है।

ध्यान से देखने पर मालूम होगा कि सूर्य-सिद्धान्त का यह नियम बहुत लचीला होता है। बृहस्पति के अस्तकाल से उदय काल का अंतर एक मास के लगभग होता है जिसमें सूर्य दो नक्षत्र से अधिक हट जाता है। यह संभव है कि अस्तकाल के समय सूर्य स्वाती नक्षत्र में हो और उदय काल के समय अनुराधा में। ऐसी दशा में कौन सा बार्हस्पत्य वर्ष मानना चाहिये 'महा चैत्र' या 'महा वैशाख'? शायद इसी दुविधा को दूर करने के लिये आचार्य वराहमिहिर ने बृहत्संहिता में यह नियम दिया है कि उदय काल में बृहस्पति जिस नक्षत्र पर हो उसी के नाम से बृहस्पति के वर्ष का नाम रखना चाहिये।

नक्षत्रेण सहोदयमुपगच्छति येन देवपति मन्त्री।

तत्संज्ञं वक्तव्यं वर्षमासक्रमेणैव॥१॥

वर्षाणि कार्तिकादीन्याग्नेयाद्भद्रयानुयोगीनि।

क्रमशस्त्रिभं तु पंचममुपांत्यमंत्य च यद्वर्षमा॥२॥

बृहत्संहिता - गुरुचाराध्याय,

वराहमिहिर ने इन वर्षों के भिन्न-भिन्न फलों की चर्चा भी की है।

बृहस्पति का वर्ष दूसरे प्रकार का भी होता है जिसे सम्वत्सर कहते हैं। पंचांगों में इन्हीं संवत्सरों की चर्चा रहती है। संकल्प के मंत्रों में तो यह प्रतिदिन काम में आते हैं। ऐसे 60 संवत्सरों का एक चक्र होता है। इनके सिवा 5 संवत्सरों का एक चक्र और होता है जिनके नाम क्रमानुसार यह हैं- (1) संवत्सर, (2) परिवत्सर, (3) इदावत्सर, (4) अनुवत्सर, (5) इद्वत्सर। इनकी चर्चा वेदांग ज्योतिष तथा बृहत्संहिता में है जहाँ इनके फल भी बतलाये गये हैं।

4.3.6 सौरमान

सूर्य का भगणभोगकाल ही सौरवर्ष कहलाता है। अर्थात् सूर्य द्वारा द्वादश राशियों के भोग को एक सौरवर्ष कहते हैं। एक राशि का भोगकाल एक सौरमास होता है तथा एक अंश का भोगकाल एक-एक सौरदिन होता है। 360 सौर दिन = 1 सौरवर्ष। रवि के एकराशि संक्रमण काल से अपरराशि संक्रमण काल तक सौरमास होता है। सूर्य के संक्रान्ति वशात् ही अयन का निर्माण भी होता है। जैसे-

भानोर्मकरसंक्रान्तेः षण्मासा उत्तरायणम्।

कर्कादिस्तु तथैव स्यात् षण्मासा दक्षिणायनम्॥

द्विराशिनाथा ऋतवस्ततोऽपि शिशिरादयः।

मेषोदयो द्वादशैते मासास्तैरेव वत्सरः॥

सूर्यसिद्धान्त, मानाध्याय, श्लोक सं.-9-10

इस श्लोक में सौर, चान्द्र, नाक्षत्र और सावन मानों का व्यवहार होता है। आठ संवत्सरों की गणना बृहस्पति मान से होती है, शेष चार मानों का काम नित्य नहीं पड़ता।

सौरमान का प्रयोजन -

सौरैण द्युनिशोर्मानं षडशीतिमुखानि च।

अयनं विषुवच्चैव सङ्क्रान्तेः पुण्यकालता॥3॥

- सू.सि., मान.

अर्थात् दिन रात्रि का परिमाण, षडशीतिमुख, उत्तरायण और दक्षिणायन, विषुव संक्रान्ति तथा अन्य संक्रान्तियों का पुण्यकाल सौरमान से ही निश्चय किया जाता है।

सौरसंक्रान्तियों के नाम -

भचक्रनाभौ विषुवद्वितीयं समसूत्रगम्।

अयनद्वितयं चैव चतस्रः प्रथितास्तु ताः॥7॥

तदन्तरेषु सङ्क्रान्तिद्वितयं द्वितयं पुनः।

नैरन्तर्यात्तु सङ्क्रान्त्योर्ज्ञेयं विष्णुपदीद्वयम्॥8॥

अर्थात् भगोल के मध्य में एक ही व्यास पर दो विषुवत् संक्रान्तियाँ और उसी प्रकार दो अयन संक्रान्तियाँ कुल चार संक्रान्तियाँ होती हैं। इनके बीच में दो दो संक्रान्तियाँ और होती हैं जिनमें से वह संक्रान्तियाँ जो इन चारों के बाद ही आती हैं विष्णुपदी कहलाती हैं।

यदि इसका गंभीर विचार करें तो पाते हैं कि, चौथे श्लोक से आरम्भ करके आठवें श्लोक तक 12 संक्रान्तियों के नाम बतलाये गये हैं। जिस समय सूर्य किसी राशि में प्रवेश करता है उस समय संक्रान्ति होती है। राशियाँ बारह हैं जिनमें से चार राशियों को षडशीतिमुख कहते हैं। शेष में दो को विषुवत्, दो को अयन और चार को विष्णुपदी कहते हैं।

क्रम	राशि	संक्रान्ति के नाम	ऋतुओं के नाम
1.	मेष	विषुवत्	वसंत

2.	वृष	विष्णुपदी	ग्रीष्म
3.	मिथुन	षडशीतिमुख	ग्रीष्म
4.	कर्क	अयन	वर्षा
5.	सिंह	विष्णुपदी	वर्षा
6.	कन्या	षडशीतिमुख	शरद
7.	तुला	विषुवत्	शरद
8.	वृश्चिक	विष्णुपदी	हेमन्त
9.	धनु	षडशीतिमुख	हेमन्त
10.	मकर	अयन	शिशिर
11.	कुम्भ	विष्णुपदी	शिशिर
12.	मीन	षडशीतिमुख	वसंत

सौरमान से उत्तरायण, दक्षिणायन और ऋतु -

भानोर्मकरसङ्क्रान्तेः षण्मासेषूत्तरायणम्।

कर्कादेस्तु तथैव स्यात् षण्मासा दक्षिणायनम्॥

द्विराशिमानादृतवः षडुक्ताशिशिरादयः।

मेषादयो द्वादशैते मासास्तैरेव वत्सरः॥

(सू.सि. माना. 9-10)

अर्थात् सूर्य जिस समय मकर राशि में प्रवेश करता है उस समय से 6 महीने तक उत्तरायण और जिस समय कर्क राशि में प्रवेश करता है उस समय से 6 महीने तक दक्षिणायन होता है। ऋतु दो दो राशियों को भोग करता है; मकर संक्रान्ति से शिशिर आदि ऋतु-चक्र का आरम्भ होता है; मेष संक्रान्ति से 12 सौर मासों का आरम्भ होता है जिनका एक वर्ष भी होता है।

प्रस्तुत प्रसङ्ग में राशियों, संक्रान्तियों और ऋतुओं का परस्पर सम्बन्ध दिखलाया गया है। राशियाँ स्थिर मानी गयी हैं और इनका आरम्भ सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार अश्विनी के आदि बिन्दु से होता है जिसके अनुसार चित्रा तारे का भोगांश 180 है परन्तु ऋतुओं का क्रम विषुवत्-सम्पात के अनुसार चलता है जो चल है इसलिये राशि, अयन और ऋतुओं का सम्बन्ध धीरे धीरे छूट रहा है। एक समय था जब उत्तरायण का आरम्भ मकर राशि में उसी समय होता था जब सूर्य की गति भी उत्तर दिशा में

आरम्भ होती थी और 6 महीने तक बराबर उत्तर की ओर बढ़ती जाती थी। इसी प्रकार दक्षिणायन का आरम्भ कर्क राशि में उस समय होता था जब सूर्य की गति दक्षिण की ओर हो जाती थी। परन्तु अब यह दोनों घटनाएँ एकसाथ नहीं होतीं, सूर्य की उत्तर की गति मकर संक्रान्ति से 23 दिन पहले ही आरम्भ हो जाती है। पाँच सौ वर्ष में यह अन्तर एक महीने के लगभग हो जायेगा। इस विषय पर त्रिप्रश्नाधिकार में विशेष चर्चा की गयी है। सूर्य-सिद्धान्त का यह मत अवश्य है कि विषुव सम्पात अश्विनी के 27 अंश इधर उधर ही रहता है, इससे अधिक अन्तर नहीं होता परन्तु यह न तो आजकल के विज्ञान से सिद्ध होता है और न भास्कराचार्य आदि ने ही इसे माना था। इसके विरुद्ध ब्राह्मण ग्रन्थों में बतलाये गये कृत्तिका आदि नक्षत्रों की स्थितियों से सिद्ध होता है कि सूर्य सिद्धान्त का मत ठीक नहीं है।

कुछ विद्वानों का यह भी मत है जिसका समर्थन ब्राह्मण ग्रन्थों के ही आधार पर अच्छी तरह होता है कि उत्तरायण का आरम्भ पहले उस समय से नहीं माना जाता था जब सूर्य की प्रवृत्ति उत्तर की ओर होती है वरन् उस समय से माना जाता था जब सूर्य विषुवत रेखा से उत्तर होकर उत्तर गोल में आ जाता है। इससे देवताओं के दिन और रात का भी समाधान अच्छी तरह हो जाता है क्योंकि देवता उत्तर ध्रुव के निवासी समझे जाते हैं और उत्तर ध्रुव पर दिन का आरम्भ अथवा सूर्योदय उसी समय होता है जब सूर्य विषुवत रेखा से उत्तर होने लगता है, इसीलिये उत्तरायण देवताओं का दिन और दक्षिणायन उनकी रात समझी जाती है। यह युक्तियुक्त भी है। यदि भास्कराचार्य जी इस बात पर विचार करते तो उनको उत्तरायण के सम्बन्ध में यह कल्पना न करनी पड़ती।

दिनं सुराणामयनं यदुत्तरं निशेतरत् सांहितिकैः प्रकीर्तितम्।

दिनोन्मुखेऽर्के दिनमेव तन्मतं निशा तथा तत् फल कीर्तनाय तत्॥

(सिद्धान्तशिरोमणि, गोलाध्याय त्रिप्रश्नवासना)

संक्रान्ति का पुण्यकाल -

अर्कमानकला षष्ट्या गुणिता भुक्तिभाजिताः।

तदर्धनाड्यस्सङ्क्रान्तेरर्वाक पुण्यास्तथापरः॥११॥

अर्थात् सूर्य के बिम्ब मान की कलाओं को साठ से गुणा करके उसकी दैनिक गति से भाग देने पर जो आवे उसकी आधी घड़ियाँ पहले और पीछे संक्रान्ति का पुण्यकाल होता है।

विशेष विचार करते हैं तो पाते हैं कि, संक्रान्ति उस समय होता है जिस समय सूर्य बिम्ब का केन्द्र राशि में प्रवेश करता है परन्तु सूर्य बिम्ब का मान 32 कला के लगभग है इसलिये संक्रान्ति का

पुण्यकाल उस समय आरंभ होता है जब सूर्य के बिम्ब का पूर्वी किनारा राशि को प्रवेश करते समय स्पर्श करता है और उस समय तक रहता है जब तक बिम्ब का पश्चिमी किनारा राशि के आदि बिन्दु को पार नहीं कर जाता। यह समय मोटे हिसाब से 32 घड़ी के लगभग होता है जिसका आधा 16 घड़ी है। इस लिये संक्राति से लगभग 16 घड़ी पहले पुण्यकाल का आरंभ होता है और 16 घड़ी बाद तक रहता है। सूक्ष्म गणना के लिये श्लोकों में बतलाये हुये अनुपात से काम लेना चाहिये। संक्रान्ति काल में सूर्य की जो दैनिक गति हो उतनी गति 60 घड़ी में होती है तो सूर्य बिम्ब के समान गति कितनी घड़ियों में होगी। अर्थात्

पुण्यकाल = सूर्य बिम्ब का मान $\times$ 60 घड़ी सूर्य की दैनिक गति

इससे जो फल आवे उसका आधा संक्रान्तिकाल से घटाने पर पुण्यकाल का आरम्भ जाना जाता है और जोड़ने पर उसकी पुण्यकाल की समाप्ति का समय निकल आता है।

4.3.7 सावनमान -

एक सूर्योदय से अपर सूर्योदय के मध्य के अन्तर्वर्ती काल को सावन दिन कहते हैं। स्पष्टतया यह सूर्य

सावन दिन है। भगवान् सूर्य स्वयं मानाध्याय में कहते हैं कि-

उदयादुदयं भानोः सावनं तत् प्रकीर्तितम्।

सावनानि स्युरेतेन यज्ञकालविधिस्तु तैः॥

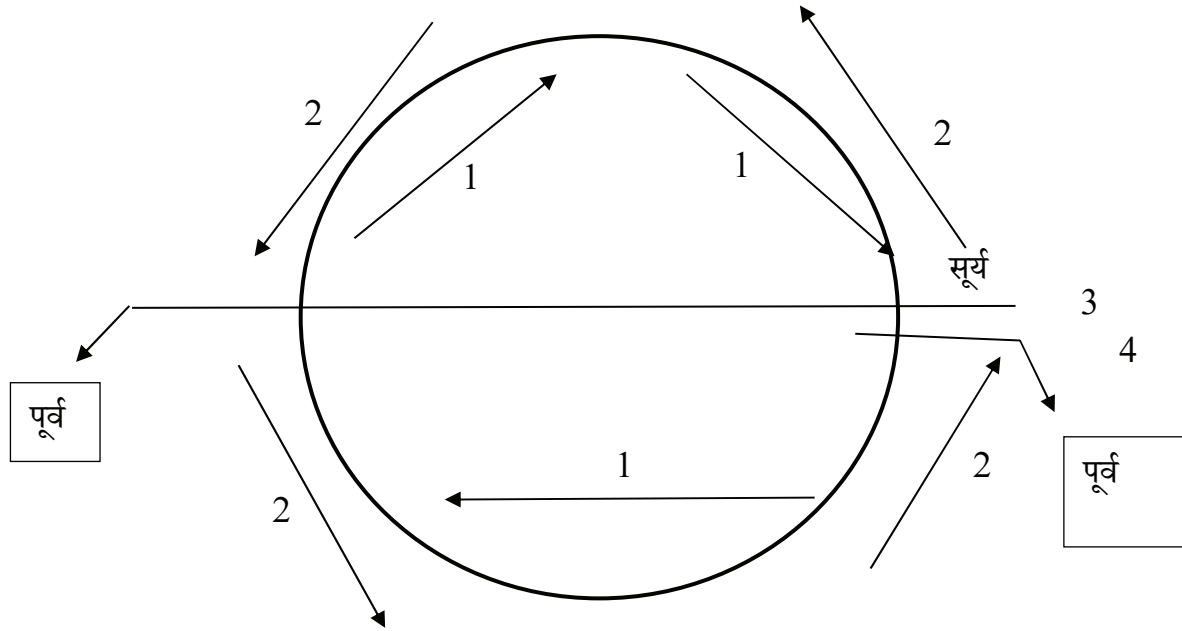
सूतकादिपरिच्छेदो दिनमासाब्दपास्तथा।

मध्यमा ग्रहभुक्तिस्तु सावनेनैव गृह्यते॥

(सूर्यसिद्धान्त, मानाध्याय, श्लोक सं.-18-19)

उपर्युक्त श्लोक में सावनदिन प्रमाण का उल्लेख करते हुए ग्रन्थकार ने सावन दिन के प्रयोजन का विधिवत वर्णन किया है कि किस-किस कार्य में इस सावन मान का प्रयोग करना चाहिए। प्रस्तुत प्रसंग में मतान्तर द्वारा भी सावन की परिभाषा यही बताई गई है कि, सूर्य के उदय काल से दूसरे उदय काल तक के बीच की अवधि को सावन दिन कहा जाता है।

यथा चित्र में –



क्षेत्र परिचय -

1. सूर्य की पूर्वाभिमुख गति (स्वगति) पूर्व
2. सूर्य की गति (प्रवहवायुप्रेरित) पश्चिम
3. क्षितिजवृत्त
4. क्रान्तिवृत्त (रवि का गमन वृत्त)

प्रायः हम यही प्रतिदिन देखते हैं कि सूर्य पश्चिम के तरफ गमन करता है परन्तु वह प्रवह वायु की गति है न कि सूर्य की स्वगति ।

प्रयोजन - सूतक, दिनेश, मासेश, वर्षेश एवं ग्रहों के मध्यमा गति का आनयन इसी मान के द्वारा किया जाता है।

4.3.8 चान्द्रमान -

सूर्य एवं चन्द्रमा की युति अमावस्या संज्ञिका होती है। एक अमावस्या से दूसरे अमावस्या के मध्यवर्तिकाल को चान्द्रमास कहते हैं। यथा-

रवीन्द्रोर्युतिः संयुतिर्यावदन्या

विधोर्मास एतच्च पैत्र्यं द्युरात्रम्।

सि.शि., म.अ., श्लोक सं.-19

तिथियों की संख्या तीस है तथा एक वृत्त में 3600 अंश है। अतः $(3600 \times 1) / 30 = 120 = 1$ तिथिमाना। अर्थात् जब सूर्य एवं चन्द्र का अन्तर 120 के बराबर होता है तो 1 तिथि निष्पन्न होती है। इस प्रकार तिथियों का उद्भव होता है। सूर्यसिद्धान्त में कहा गया है कि -

अर्काद् विनिस्सृतः प्राची यद्यात्यहरहः शशी।

तच्चान्द्रमानमंशैस्तु ज्ञेया द्वादशभिस्तिथिः॥

(सू.सि. - माना.)

प्रयोजन प्रसंग में आचार्य कहते हैं कि, तिथि, करण, विवाह, क्षौर, कर्म तथा जातकर्म, व्रत, उपवास व यात्रा आदि कार्य चान्द्र मान से ही ग्रहण होते हैं। अर्थात् इन कार्यों का निष्पादन चान्द्रप्रमाण के आधार पर ही करना चाहिए। यथा-

तिथिः करणमुद्राहः क्षौरं सर्वक्रियास्तथा।

व्रतोपवासयात्राणां क्रिया चान्द्रेण सिद्ध्यति॥

(सूर्यसिद्धान्त, मानाध्याय, श्लोक सं.-13)

यथा आलेख द्वारा चान्द्रमान के अंशादि एवं तिथि प्रदर्शित किये गये हैं -

तिथि	चन्द्रसूर्यान्तर	तिथि स्वामी	विशेष संज्ञा
१	१२°	अग्नि	नन्दा (शुक्लपक्षारम्भ)
२	२४°	ब्रह्मा	भद्रा
३	३६°	गौरी	जया
४	४८°	गणेश	रिक्ता

५	६०°	सर्प	पूर्णा
६	७२°	गुह्य	नन्दा
७	८४°	रवि	भद्रा
८	९६°	शिव	जया
९	१०८°	दुर्गा	रिक्ता
१०	१२०°	यम	पूर्णा
११	१३२°	विश्वदेव	नन्दा
१२	१४४°	हरि	भद्रा
१३	१५६°	कामदेव	जया
१४	१६८°	शिव	रिक्ता
१५	१८०°	शशि	पूर्णा (पूर्णिमा)
१६	१९२°	अग्नि	नन्दा (कृष्णपक्षारम्भ)
१७	२०४°	ब्रह्मा	भद्रा
१८	२१६°	गौरी	जया
१९	२२८°	गणेश	रिक्ता
२०	२४०°	सर्प	पूर्णा
२१	२५२°	कार्तिकेय	नन्दा
२२	२६४°	सूर्य	भद्रा
२३	२७६°	शिव	जया
२४	२८८°	दुर्गा	रिक्ता

२५	३००°	यमराज	पूर्णा
२६	३१२°	विश्वदेव	नन्दा
२७	३२४°	विष्णु	भद्रा
२८	३३६°	कामदेव	जया
२९	३४८°	शिव	रिक्ता
३०	३६०°	पितर/चन्द्रमा	पूर्णा (अमावस्या)

4.3.9 नाक्षत्रमान -

नाक्षत्र मान प्रसङ्ग में आचार्य कहते हैं कि,

भचक्रभ्रमणं नित्यं नाक्षत्रं दिनमुच्यते।

नक्षत्रनाम्ना मासास्तु ज्ञेयाः पर्वान्तयोगतः॥

कार्तिकादिषु संयोगे कृत्तिकादि द्वयं द्वयम्।

अन्त्योपान्त्यो पंचमश्च त्रिधा मासत्रयं स्मृतम्॥

(सूर्यसिद्धान्त, मानाध्याय, श्लोक सं.-15-16)

अर्थात् प्रवहवायु के द्वारा प्रेरित होकर यह भचक्र सतत् भ्रमण होता है। भचक्र के एक भ्रमण काल को नाक्षत्रदिन कहते हैं।

पूर्णिमा तिथि से जिस नक्षत्र का योग होता है उसी नक्षत्र से उस मास का नाम होता है। कृत्तिका से दो-दो नक्षत्रों के योग से कार्तिकादि मास, अन्तिम-उपान्तिम और पंचम मास तीन-तीन नक्षत्रों के योग से निष्पन्न होते हैं। जैसे - चक्र में

पूर्णिमा तिथि के नक्षत्र

मास

कृत्तिका-रोहिणी

कार्तिक

मृगशीर्ष-आर्द्रा	मार्गशीर्ष
पुनर्वसु-पुष्य	पौष
आश्लेषा-मघा	माघ
पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, हस्त	चैत्र
विशाखा-अनुराधा	वैशाख
ज्येष्ठा-मूल	ज्येष्ठ
पूर्वाषाढा-उत्तराषाढा	आषाढ
श्रवण-घनिष्ठा	श्रावण
शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा	भाद्रपद
रेवती, अश्विनी, भरणी	आश्विन

अर्थात् जितने समय में नक्षत्र चक्र का एक भ्रमण पूरा होता है उसे नाक्षत्र दिन कहते हैं। पूर्णिमा के अन्त में चन्द्रमा जिस नक्षत्र में होता है उसी के नाम पर मासों के नाम पड़े हैं। उदाहरणार्थ कुछ वर्षों की वर्तमान स्थिति -

मास	पूर्णिमा के नक्षत्र क्रम संख्या सहित	पूर्णिमान्त काल में नक्षत्रों की वास्तविक स्थिति				
		१९९१	१९९२	१९९३	१९९४	१९९५ विक्रमी
चैत्र	१४-चित्रा १५-स्वाती	हस्त +	चित्रा	चित्रा	स्वाती	चित्रा
वैशाख	१६-विशाखा १७-अनुराधा	विशाखा अनुराधा	विशाखा	विशाखा	अनुराधा	विशाखा
ज्येष्ठ	१८-ज्येष्ठा १९-मूल	मूल	मूल	ज्येष्ठा	मूल	ज्येष्ठा

आषाढ़	२०-पू०षा० २१-उ०षा०	उ०षा०	उ०षा०	पू०षा०	उ०षा०	पू०षा०
श्रावण	२२-श्रवण २३-धनिष्ठा	शतभिषा	धनिष्ठा	श्रवण	धनिष्ठा	धनिष्ठा
भाद्रपद	२४-शतभिषा	उ०भा०	पू०भा०	शत० उ०भा०	उ०भा०	पू०भा०

मास	पूर्णिमा के नक्षत्र क्रम संख्या सहित	पूर्णिमान्त काल में नक्षत्रों की वास्तविक स्थिति				
		१९९१	१९९२	१९९३	१९९४	१९९५ विक्रमी
आश्विन	२६- उ०भा० २७- रेवती १-अश्विनी २-भरणी	अश्विनी	रेवती	भरणी	अश्विनी	रेवती
कार्तिक	३-कृत्तिका ४-रोहिणी	कृत्तिका	भरणी+	रोहिणी	कृत्तिका	भरणी+
मार्गशीर्ष	५-मृग० ६-आर्द्रा	मृगशिरा	मृगशिरा	आर्द्रा	मृगशिरा	रोहिणी
पौष	७-पुनर्वसु ८-पुष्य	पुष्य	पुनर्वसु	पुष्य	पुनर्वसु	पुनर्वसु
माघ	९-आश्लेषा १०-मघा	मघा	आश्लेषा	पू०फा०+	मघा	आश्लेषा
फाल्गुन	११-पू०फा० १२-उ०फा० १३-हस्त	उ०फा०	पू०फा०	हस्त	उ०फा०	पू०फा०

कृत्तिका आदि मासों का संयोग कृत्तिकादि नक्षत्रों से दो दो के साथ होता है, केवल अन्तिम मास और उससे ठीक पहले का मास तथा पांचवें मासों का संयोग तीन तीन नक्षत्रों से होता है।

चान्द्र मासों के नाम उन नक्षत्रों के नाम पर रखे गये हैं जिन पर चंद्रमा पूर्णिमा के दिन रहता है। इस युक्ति से तिथि, मास और नक्षत्रों का जो गठबंधन कर दिया गया है वह संसार के ज्योतिष के इतिहास में अनुपम है। इससे यह अच्छी तरह सिद्ध हो जाता है कि प्राचीन काल में हिन्दू ज्योतिषी कितने प्रतिभावान थे और उन पर दूसरे देशों के ज्योतिष शास्त्र के नकल करने का जो अभियोग लगाया जाता है वह कितना निस्सार और पक्षपात पूर्ण है। अब सूक्ष्म गणना से यह अवश्य सिद्ध होता है कि नक्षत्रों और मासों का यह परस्पर सम्बन्ध कभी-कभी छूट जाता है परन्तु यहाँ यह भी विचार करना होगा कि जो नियम तीन हजार वर्ष से अधिक समय से चला आ रहा है उसका कहीं कहीं ढीला पड़ जाना अचम्भे की बात नहीं है और न नियम बनानेवालों की ही अनभिज्ञता का प्रमाण है। सारणी से यह सहज ही जाना जा सकता है कि इस समय कितना अंतर पड़ गया है।

इस सारिणी में 1994-95 वि. के नीचे के नक्षत्र बंगला के विशुद्ध सिद्धान्त-पंजिका से लिखे गये हैं जो आधुनिक ज्योतिषशास्त्र के आधार पर बनायी जाती है, जिसमें वर्षमान् 365 दिन 6 घंटा 9 मिनट 9-504 सेकंड का होता है और चित्रा तारे का भोग ठीक 180 अंश माना गया है। शेष तीन वर्षों के नक्षत्र लखनऊ और काशी के साधारण पंचांगों से लिये गये हैं। जिन नक्षत्रों पर धन के चिह्न बने हुए हैं वही उपर्युक्त नियम से कुछ भिन्न हो गये हैं। जहाँ दो नक्षत्र एक साथ दिये हैं वे अधिमासों के सूचक हैं। इससे प्रकट है कि अब भी यह नियम अच्छी तरह काम दे रहा है।

विशेष –

नाक्षत्र मान के अन्तर्गत परिगणना करने पर यह परिज्ञान होता है कि, सभी ग्रहों के मान की परिगणना नाक्षत्र मान के आधार पर किया जाता है। प्रति दैवसिक पंचांगस्थ चान्द्र नक्षत्रों का सर्वाधिक व्यवहार लोक में किया जाता है। जिससे विविध वर्ग में विभाजित करके देखा जा सकता है।

(क) पंचांगस्थ चान्द्रनक्षत्र - प्रतिदिन 1-1 नक्षत्रों का भोग चन्द्रमा करता है और लोक में इस नक्षत्र का सभी कार्यों में सर्वाधिक व्यवहार किया जाता है। जब भी ग्रह का भोगांश 30-20 कला होता है यानी 800 कला तो 1 नक्षत्र का खण्ड होता है। ऐसी परिस्थिति में नक्षत्र ज्ञान हेतु ग्रह के कलात्मक भोग में 800 का भाग देकर 1-1 नक्षत्र का मान जानते हैं।

यथा चन्द्रस्पष्ट - $0-20^{\circ}-20'-10''$,

कला बनाने पर $20 \times 60 = 1200+20$

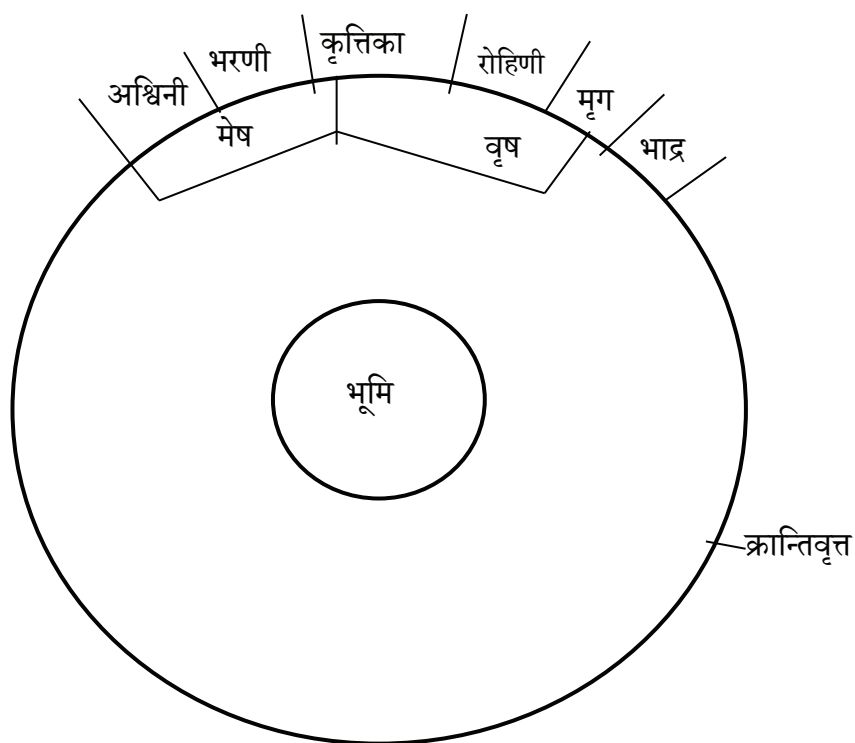
= 1220 कला

$1220/800 =$ भागफल 1 शेष 420

अर्थात् चन्द्रमा का अश्विनी नक्षत्र गत हो गया है तथा भरणी वर्तमान नक्षत्र है जिसका भोग 420 है। इस प्रकार इस भोगांश भुक्तांश से भोग्य एवं भुक्त घटी का आनयन भी किया जा सकता है।

(ख) नाक्षत्रदिन - प्रवहवायु के द्वारा 60 घटी में भचक्रभ्रमण द्वारा नाक्षत्रोदय द्वारा नाक्षत्रदिन की उत्पत्ति होती है। 23 घंटे 56 मिनट 4 सेकेण्ड के आसन्न यह काल होता है।

वस्तुतः क्रान्तिवृत्तीय खण्ड में 27 नक्षत्रों एवं 12 राशियों के विभागात्मक विभाजन के आधार पर नामांकित किया गया है। जिसमें छोटे खण्ड का नाम नक्षत्र एवं बड़े खण्ड का नाम राशि होता है जैसे-



यहाँ नक्षत्रों की आकृति तथा तारें -

क्र.सं.	नक्षत्रम्	स्वस्पर्म्	तारासंख्या
1.	अश्विनी	अश्वमुखम्	3
2.	भरणी	योनिदृशम्	3
3.	कृत्ति	क्षुरः	6
4.	रोहिणी	शकटाकारम्	5
5.	मृगशीर्षः	मृगास्यम्	3
6.	आर्द्रा	मणिसृदशम्	1
7.	पुनर्वसुः	गृहाकारम्	4
8.	पुष्यः	शरः	3
9.	श्लेषा	चक्राकारम्	5
10.	मघा	भवनसदृशम्	5
11.	पु.फा.	मंचकाकारम्	2
12.	उ.फा.	शय्यासदृशम्	2
13.	हस्त	हस्ताकारम्	5
14.	चित्रा	मौक्तिकरूपम्	1
15.	स्वाती	प्रवालसदृशम्	1
16.	विशाखा	तोरणाकारम्	4
17.	अनुराधा	बलिसदृशम्	4
18.	ज्येष्ठा	कुंडलाकारम्	3
19.	मूलम्	सिंहपुच्छसदृशम्	11
20.	पू.षा.	गजदंतसदृशम्	2
21.	उ.षा.	मंचकाकारम्	2
22.	अभिजित्	×	×
23.	श्रवणम्	वामनरूपम्	3
24.	घनिष्ठा	मृदंगाकारम्	4
25.	शतभिषक्	वृत्ताकारम्	100

26.	पू.भा.	मंचाकारम्	2
27.	उ.भा.	यमलम्	2
28.	रेवती	मृदंगानुरूपम्	32

इस प्रकार से नवविधकालमान बताये गये हैं।

अभ्यास प्रश्न –

1. ज्योतिष शास्त्र में प्रसिद्ध कालमान कितने हैं।
2. ब्रह्मा का एक अहोरात्र कितने के बराबर होता है।
3. 1000 महायुग में कितने कल्प होते हैं।
4. कलियुग में धर्म का पाद कितना है।
5. सूर्यसिद्धान्त की रचना कब हुई थी।

4.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि ज्योतिषशास्त्र में प्रसिद्ध नवविधकालमान बतलाये गये हैं। उन कालमानों में चार कालमान – सौर, सावन, चान्द्र एवं नाक्षत्र को व्यवहार काल मान के रूप में जानते हैं। शेष 5 काल मान व्यापक होने के कारण उसकी गणना तो की जा सकती है, किन्तु उनका सामान्य व्यवहार में प्रयोग नहीं हो पाता है। काल अनन्त एवं असीमित है। काल सूक्ष्म और स्थूल तथा मूर्तामूर्त रूप में विभक्त होकर सृष्टि संचालन में सहायक होता है।

4.5 पारिभाषिक शब्दावली

ब्राह्म मान – ब्रह्मा से सम्बन्धित नवविधकालमानों में एक काल मान

दिव्य – देवताओं से सम्बन्धित काल मान

पैत्र्य मान – पितरों से संबंधित काल मान

गुरु मान – वृहस्पति से संबंधित काल मान

सौर मान – सूर्य से संबंधित व्यावहारिक काल मान

सावन मान – दो सूर्योदय के बीच का काल मान

नाक्षत्र मान – एक नक्षत्र से अपन नक्षत्र उदय पर्यन्त का काल मान

चान्द्र मान – अमान्ताद अमान्त यावत्

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 9
2. 2 कल्प
3. एक
4. एक
5. कृतयुगान्त में

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सूर्यसिद्धान्त – कपिलेश्वर शास्त्री, प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

सिद्धान्तशिरोमणि – प्रोफेसर शत्रुघ्न त्रिपाठी, पं. सत्यदेव शर्मा

सिद्धान्ततत्त्वविवेक – पं. सत्यदेव शर्मा, चौखम्भा प्रकाशन

ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त – ब्रह्मगुप्त

4.8 सहायक पाठ्यसामग्री

सूर्यसिद्धान्त – कपिलेश्वर शास्त्री, प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

सिद्धान्तशिरोमणि – पं. सत्यदेव शर्मा

सिद्धान्ततत्त्वविवेक – पं. सत्यदेव शर्मा, चौखम्भा प्रकाशन

ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नवविधकाल मान से क्या तात्पर्य है? वर्णन कीजिये।

2. ब्राह्म मान का विस्तृत वर्णन कीजिये।
3. प्राजापत्य मान से आप क्या समझते हैं? स्पष्ट कीजिये।
4. प्रस्तुत इकाई के अनुसार सौर, सावन तथा चान्द्र मान का वर्णन अपने शब्दों में कीजिये।
5. कालमान पर निबन्ध लिखिये।